दीपावली पर विशेष

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन

सारिका

कहानियों और कथाजगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : २६; अंक : ४१५; नवंबर, १९८६; मूल्य : छह रुपये

मैक्सिम गोर्की विशेषांक

सारिका
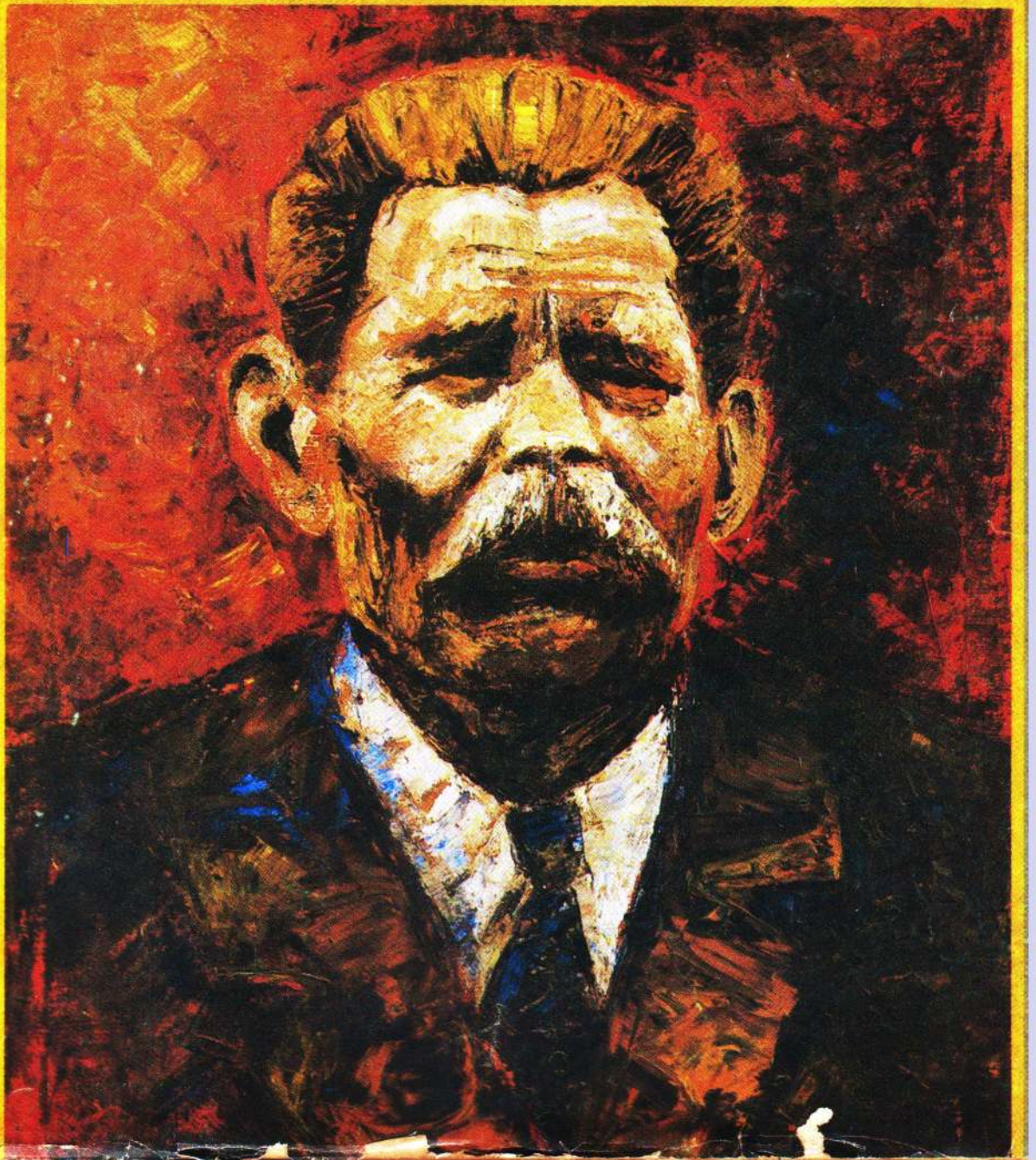
कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 26, अंक : 415, नवंबर, 1986

मैक्सिम गोर्की विशेषांक

आवरण तैलचित्र एवं भीतरी पृष्ठों के रेखाचित्र: हरिपाल त्यागी

आवरण सज्जा : हरिप्रकाश त्यागी

संपादक

अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक

सुरेश उनियाल महेश दर्पण वीरेंद्र जैन

विभागीय सहयोगी

बिमला रानी ज्ञानसिंह

संपादकीय कार्यालय :
10 दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

विज्ञापन व प्रसार
7, बहादुरशाह जफर मार्ग
नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.
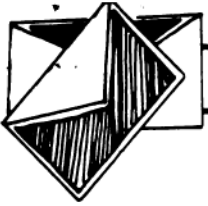
आपकी बात
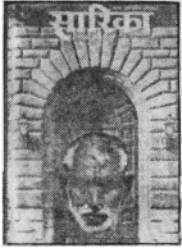
अगस्त (द्वितीय) 1986

व्यंग्य से व्यक्ति खारिज नहीं होता

भाई **योगेश गुप्त** का अगस्त एक का दुखड़ा अगस्त दो में देखा, दुख भी हुआ हंसी भी आयी.

किसी व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य लिखना उचित तो नहीं है पर सवाल उठता है व्यंग्य है क्या? व्यंग्य कब बनता है? तो उत्तर मिलता है व्यंग्य का मुख्य आधार व्यक्ति विशेष ही है. वह...जो चेहरे से, बातचीत से व अपने कृत्य से हास्य व विवादास्पद है और यह गुण विरले लोगों में ही होता है, इस पर भाई योगेशजी को क्लेश नहीं होना चाहिए, उन्हें तो खुश होना चाहिए कि वे कमसकम इतने महान हैं कि कोई उन पर कुछ लिखें, बस.

■ **फूलचंद जायसवाल, बस्ती (उ.प्र.)**

व्यंग्य व्यक्ति सापेक्ष होता है

व्यक्ति ही समाज की इकाई है अतः कुछ भी लिखने के लिए उसे नकारना असंभव है. कहानी, उपन्यास, खंडकाव्य, महाकाव्य और नाटक आदि समस्त विधाओं का सृजन व्यक्ति या व्यक्तियों के बिना संभव नहीं. अब इन समस्त विधाओं का पात्र कोई न कोई व्यक्ति ही तो होगा—आदमी न भी हो तो पशु-पक्षी होगा, वह भी व्यक्ति ही है. स्पष्ट है कि ऐसा व्यक्ति साधारण न होकर व्यक्ति विशेष होगा और साधारण भी हो तो लिखे जाने के बाद विशेष हो जायेगा. अब जब अन्य विधाएं व्यक्ति विशेष पर हो सकती हैं तो व्यंग्य क्यों नहीं? मान भी लिया जाये कि व्यक्ति विशेष पर न लिखा जाये तो किस पर लिखा जाये? समूह, जाति, काल, देश आदि-आदि किस पर? फिर ये सब क्या विशेष नहीं हो जायेंगे?

यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि व्यंग्य भी किसी दम-खम वाले व्यक्तित्व पर लिखा जाता है और उससे उस व्यक्ति की गरिमा कम नहीं होती. यदि व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य न लिखा जाये तो व्यक्ति विशेष का कार्टून भी क्यों बनाया जाये? क्या कार्टून व्यंग्य नहीं है? यदि किसी की छवि व्यंग्य लिखने से बिगड़ती है तो क्या कार्टूनों से उभरती है? जब व्यक्ति विशेष की आरती लिखी जा सकती है, स्तुति, स्वागतगान, अभिनंदन ग्रंथ आदि लिखे जा सकते हैं तो व्यंग्य क्यों नहीं लिखा जा सकता? जब व्यंग्य का केंद्र बिंदु राजनैतिक व्यक्ति हो सकता है तो लेखक, कवि, साहित्यकार भी हो सकता है.

व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य कोई नयी परंपरा नहीं है अपितु जब से भाषा का जन्म हुआ है (चाहे सांकेतिक ही क्यों न हो) लोग व्यंग्य करते आ रहे हैं और उनमें अधिकांश व्यक्ति विशेष पर ही हुए हैं. साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण सरलता से खोजे जा सकते हैं. प्राचीन कवियों ने तो अपने आश्रयदाता-राजाओं तक को नहीं बख्शा. इस संदर्भ में बिहारी और भूषण जैसे कवियों का नाम बेझिझक लिया जा सकता है. यह बात मात्र हिंदी पर ही लागू नहीं होती, अन्य भाषाओं पर भी लागू होती है.

श्री **योगेश गुप्त** के पत्र की पंक्तियां—''मथुरादास दरअसल मुद्राराक्षस ही हैं.... राजधानी से प्रकाशित होनेवाली एक और पत्रिका में भी वह लकड़ी की तलवार जमकर भांज रहे हैं और उनका यह शौ देखते ही बनता है. खासतौर से उनका स्वरूप देखते हुये...'' क्या व्यंग्य नहीं है? व्यंग्य वास्तव में समीक्षा की सर्वोत्तम शैली है. अतः व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य लिखना सर्वथा उचित है. व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य किये बिना तो हम में से कोई नहीं रह सकता, फिर लिखने में ही क्या हर्ज है?

■ **महेश सांख्यधर, मंडावर, बिजनौर (उ.प्र.)**

व्यंग्य विशिष्ट पर होना चाहिए

बहुत अरसे बाद **योगेश गुप्त** ने **सारिका** के माध्यम से एक सवाल उठाया है—वह भी इसलिए कि **मथुरादास** ने अपने व्यंग्य लेख में उन्हें उठा दिया है. प्रश्न तो बहुत साधारण है कि व्यक्ति विशेष को ध्यान में रखकर व्यंग्य लेखन लिखना उचित है? किंतु जवाब अवश्य ही तह तक जाने के लिए समुचित मार्ग टटोलने लगता है. मेरी समझ से व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य लिखना उचित है बशर्ते व्यक्ति व्यक्ति न होकर विशेष हो जाये. अर्थात् वह व्यक्ति उस क्षेत्र का प्रतिनिधि सदृश्य हो जाये जिस क्षेत्र में वह कार्यरत है और उस पर हुए व्यंग्य को लक्षणा शक्ति के माध्यम से पाठक समझें.

■ **अतुल मोहन प्रसाद, देवघर (बिहार)**

यह तो बताइए जनाब!

योगेश गुप्त का पत्र और उस पर **सारिका** की टिप्पणी भी, पढ़कर एक सवाल तैरकर सामने आता है—

परसाईजी अश्कजी पर, मुद्राजी (या मथुराजी) योगेशजी पर, गंगाजी सरिताजी पर या हंसजी कौवेजी पर व्यंग्य लिखें या न लिखें. अर्थात् व्यंग्य विधा का खोल लपेटकर अपने किसी 'किल-किल कांटिया' को निचोड़ दिया जाये और अपना नाम-पता दुबका लिया जाये कि नहीं?

वैसे इसमें कोई हर्ज तो नहीं होना चाहिए (मथुरादासजी), लेकिन यह पैंतरे तभी कारगर हो सकते हैं जब कि एक शुद्ध साहित्यिक और लोकप्रिय पत्रिका के दो चार सफों पर पैर फैलाकर सोना हो. तो इन बातों का जवाब तो पाठक भी चाहेंगे ही (बेचारे जेब से 5 रुपया पंद्रह दिन का खलाते हैं न?).

यह तो ठीक है कि साहित्य में जो आ गया, जो छप लिया, जो सार्वजनिक हो गया उसके बारे में, उसकी हरकतों-हथकंडों के बारे में जग को बताना-चेताना बुरा नहीं है, इस बिना पर मथुरादासजी अपनी डायरी लिखें, खूब लिखें, कहें और खूब कहें लेकिन यदि कलमकारों की पूंछ खींचें तो कम से कम ये तो बता दें कि वह बेचारे खिसियाकर किसे नौंचें (मतलब मथुरादासजी का पता-ठिकाना तो कुछ हो), सो भैया अपनी खाल में दुबककर, अपने हाथ-पांव छिपाकर दूसरे की मुर्गी मारना तो बहादुरी नहीं ही कहलाएगी.

दूसरी बात ये कि नागरजी पर मुद्राजी लिखें, राजेंद्रजी पर कमलेश्वरजी लिखें, और जैनेंद्रजी पर योगेशजी कहें (और ऐसे कहने पर उतारू हों) तो भैया, ये सौगात तो पाठकों में मुफ्त बंटनी चाहिए, पर्चों-पोस्टरों की शक्ल में, सारिका तो पढ़ने ही के लिए खरीदते हैं लोग. उन्हें साहित्य चाहिए, साहित्यकारों की जूतम-पैजार का क्यों मोल देने लगे वे बेचारे? सारिका उपन्यासों, कहानियों, लेखों, लघुकथाओं, गजलों का पाक्षिक त्यौहार ही बना रहे तो अच्छा है. कलम बहादुरों की आपसी मुंह-नुचाई को 'व्यंग्य' कोई नहीं कहता, कहेगा भी नहीं.

प्रसंगवश दो शब्द प्रगतिशील लेखक संघ स्वर्ण जयंती की '**हलचल**' के अंतर्गत **बीरराजा** की लिखी रिपोर्ट पर कहे बिना रह नहीं पा रहा. सारिका से ऐसी रिपोर्ट की उम्मीद नहीं थी. क्या हुआ, कैसे हुआ, क्यों हुआ यह तो कुछ समझ

में आया नहीं बल्कि ये भी अबूझ पहली बना हुआ है कि बीर राजा ने ये क्यों लिखा, सारिका ने ये क्यों छापा? चार पेजों की सारी इबारत चाटकर कुल जमा ये बात समझ में आयी कि लखनऊ में कोई लोग गिल्ली-डंडा खेलने जमा हुए थे कबड्डी खेलकर लौट लिये.

■ **प्रबोधकुमार गोविल, नयी दिल्ली**

किसी को तो छोड़िए

मथुरादास की लेखनी पर **योगेशजी** की टिप्पणी काफी सटीक है. मथुरादास ने इस बार (अगस्त-दो) व्यंग्य अच्छा लिखा. किंतु अंत में बेवजह उन्होंने 'दिनकरजी' को घसीट दिया. योगेशजी के आधार पर ही "कहीं स्वयं को यादगार साबित करने के लिए यह मथुरादास का कोई नया 'स्टंट' तो नहीं है?" 'दिनकर' जैसे महाकवि पर, मथुरादास का व्यंग्य ठीक नहीं जंचता.

■ **पूनम कतरियार, हजारीबाग (बिहार)**

परिधि के भीतर परिधि के बाहर

इस बार पत्रिका के आरंभ में ही **योगेश गुप्त** का पत्र **मथुरादास** के लिए पढ़ा. सचमुच इन पत्रों को पढ़ने से यह लगता है कि व्यंग्य अपनी परिधि से बाहर निकल आया है—अभी कुछ दिनों पहले ही ऐसा एक पत्र मैंने उपेंद्रनाथ अश्क का 'रविवार' में पढ़ा था. ध्वंसात्मक लेखन को **सारिका** प्रश्रय दे यह बात समझ में नहीं आती. आखिर इससे साहित्य का कितना फायदा होगा—**रवींद्रनाथ त्यागी** को पढ़कर लगा कि अब वह भी पुरान हो रहे हैं. उनकी व्यंग्य की कलम दिन प्रति दिन (भोथरी) मोटी होती जा रही है—मथुरादास और त्यागीजी को अगर व्यक्तिगत लेखन करना है तो पत्रिका का दामन क्यों पकड़े हुए हैं वो काम तो अपूर्ण और पूर्ण कथाओं के जरिए भी हो सकता है.

शिवप्रसाद सिंह को इस अंक में पढ़कर कुछ नया नहीं लगा, यही स्थिति, उनकी सदा की रही है. '**धरोहर**' (**रवींद्रनाथ टैगोर**), '**मिनखखोरी**' (**यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'**), **नागरजी** का संस्मरण **श्रीकांत गोयलीय** और **रमेश उपाध्याय** को पढ़कर अच्छा लगा.

इस अंक का **साक्षात्कार** भी अच्छा लगा—**परिचर्चा** के बारे में कहना ही क्या...

■ **शैलेंद्र कुमार त्रिपाठी, प्रयाग (उ.प्र.)**

यही है बंबई

सारिका की नियमित पाठक हूं, किंतु पत्र लिखने का अवसर पहली बार मिला है. सारिका हिंदी कहानियों की अग्रणी पत्रिका है. इस अंक में **नागरजी** ने कहानी के जन्म के बारे में बहुत रोचक बातें बतायीं. **मुज्तबा हुसैन** का व्यंग्य '**खुदा की कुदरत**' गुदगुदानेवाला था.

तेजेंद्र शर्मा की कहानी '**ईटों का जंगल**' बहुत ही मर्मस्पर्शी बन पायी है. कहानी में साथ बहा ले जाने की शक्ति है, बंबई के बिल्डरों और दलालों की सही तस्वीर लेखक ने खींच कर रख दी, भाषा भी उत्तम है. ऐसी कहानी छापने के लिये सारिका बधाई की पात्र है.

■ **किरण चावला, फरीदाबाद**

और वे नक्सली कहलाते हैं

रवींद्रनाथ टैगोर की अनेक वर्षों पूर्व रचित रचना '**धरोहर**' पढ़कर उनकी लेखनी, विचारों की भव्यता, दूर दृष्टि तथा महान लेखकों में विद्यमान दूरगामी, चिंतन-मनन की तीव्रता से आज पूर्ण रूपेण परिचित तथा प्रभावित हो गया.

शिवप्रसाद सिंह की कहानी '**श्रृंखला**' उन लोगों के मानसिक चिंतन-मनन, हालात तथा उस भावना को दर्शाती है जिसके वशीभूत होकर वह तथाकथित तथा शायद अपेक्षित भी परिणाम को अंतिम रूप प्रदान कर देते हैं तथा चंद परंपरावादियों, सामंतवादियों द्वारा वे नक्सली नाम से भी पुकारे जाते हैं. इस उपेक्षित वर्ग का आम जनता से साक्षात्कार कराने के लिये धन्यवाद.

पीढ़ियों के अंतर, टकराव रूपी एक ज्वलंत तथा भावना प्रधान समस्या का समाधान समाज के समक्ष प्रस्तुत करती है **बाला दुबे** की कहानी '**बिनका सिंहासन**'. इसके अलावा **कांति वेद** की '**एक कोनयक और**', **हर्षनाथ** की '**साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में**' तथा **रामलाल** की '**सूरज जैसी रात**' इत्यादि भी प्रगतिशील तथा जागरूक चिंतन प्रकट कर बधाई की हकदार बन जाती हैं.

आधुनिक मंदिरों के दर्शन कराने तथा इलाहाबाद की गरिमामय तथा व्यंग्यपूर्ण झांकी दिखाने के लिए क्रमशः **मथुरादास** व **रवींद्रनाथ त्यागी** को बधाई.

■ **पीयूषनाथ सुकुल 'सुधा', धारीवाल (पं.)**

पिछले अंक में 'समकालीनों की दृष्टि में प्रेमचंद' और 'प्रेमचंद ने कहा था' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित सामग्री हमें डा. कमलकिशोर गोयनका के सौजन्य से प्राप्त हुई थी तथा इस अंक में गोर्की संबंधी सभी चित्र हमें सोवियत सूचना केंद्र नयी दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं. इस सहयोग के लिए हम आभारी हैं.

■ रमेश बतरा

■ बलराम

■ सुमीता चक्रवर्ती

■ दिनेश त्यागी

■ चंद्र भूषण मिश्र

शुभकामनाएं

सारिका की मूल प्रकाशन अवधि मासिक ही थी. जब इसे प्रयोगात्मक रूप में पाक्षिक किया गया तब सहयोगियों की संख्या बढ़ानी पड़ी. अब सारिका फिर से अपने मूल रूप में आ रही है अतः सहयोगियों की संख्या भी मूल संख्या के बराबर की जा रही है. हालांकि हमें अपने पुराने साथियों से अलग होने का दुख है लेकिन हम उनके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त भी हैं. इस परिवर्तन के मूलक्रम के साथ ही पिछले दस वर्षों से सारिका में उपसंपादक रहे श्री रमेश बतरा और पिछले सात वर्षों से उपसंपादक रहे श्री बलराम अब नवभारत टाइम्स में स्थानांतरित हो गये हैं. इनके साथ ही आपकी रचनाओं के टंकक श्री दिनेश त्यागी और सारिका कार्यालय में आने वाले तमाम लेखकों-पाठकों के स्वागत-सत्कार में तत्पर रहने वाले पंडित चंद्रभूषण मिश्र भी अन्यान्य विभागों में स्थानांतरित हो गये हैं. आप सब की प्रिय सज्जाकार सुश्री सुमीता चक्रवर्ती ने भी हमारे संस्थान से विदा ले ली है. सारिका परिवार अपने इन सहयोगियों के उज्जवल भविष्य की कामना के साथ ही इनकी चिरस्मरणीय सेवाओं के प्रति आभारी है.

अपनी बात

रोशनी की तलाश का सबसे बड़ा सर्जक
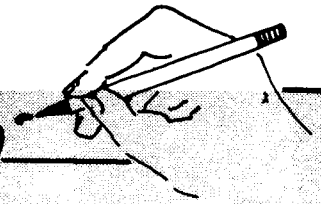
एक आदमी होश संभालते ही सड़क पर निकल आया हो मात्र अनिश्चित रोजी-रोटी की तलाश में भटकने के लिए, उसकी जिंदगी में कितनी कटुता, घृणा और कड़वाहट आ जायेगी, इसका अंदाज लगाया जा सकता है. लेकिन एलेक्सी मैक्सिमोविच पेश्कोव ने अपनी जिंदगी और विचार में उस कटुता, घृणा और कड़वाहट को नहीं आने दिया. उसने जिंदा रहने के लिए लड़ी गयी अपनी लड़ाई को एक महत्वपूर्ण यादगार के रूप में बनाये रखने के लिए मात्र अपने नाम को कड़वाहट का अर्थ दिया. उसी पेश्कोव का अपने जन्म के 24 वें वर्ष में रूसी साहित्य में दुबारा जन्म हुआ और तब उसने अपना नाम 'मैक्सिम गोर्की' रखा जिसका अर्थ कड़वाहट होता है. गोर्की अभी पांच ही वर्ष के थे. जब वे पितृविहीन हो गये, मां ने दूसरी शादी कर ली और गोर्की को अपने नाना की शरण में जाना पड़ा. लेकिन नौवां वर्ष लगते-लगते रोटी की तलाश उन्हें सड़क पर भटकाने के लिए ले आयी. तभी से सड़कें और श्रम की दुनिया उनकी सबसे बड़ी पाठशाला या उनके विश्वविद्यालय बन गये. श्रम के महत्व को गोर्की ने देखा, समझा, परखा-पहचाना और उसे अपनी जिंदगी का सबसे बड़ा हिस्सा बना लिया. वे जिंदगी भर इस बात को मानते रहे कि 'छोटे से छोटा काम भी निरर्थक और महत्वहीन नहीं होता.' काम और श्रम की सार्थकता और महत्व ने गोर्की को मानवीय संवेदना समझदारी और दयालुता से संपन्न कर दिया था. शायद यही कारण था कि उस समय के महानतम लेखक लियो ताल्स्तोय को लिखना पड़ा था कि 'खास तौर पर मैं गोर्की को प्रतिभाशाली और यूरोप के प्रतिष्ठित लेखक के रूप में ही नहीं बल्कि समझदार,दयालु और प्रिय व्यक्ति के रूप में जानता और प्यार करता हूं.'

विचारधारा के स्तर पर गोर्की का विरोध करने वाले लेखक भी गोर्की की प्रतिभा के कायल थे और उन्हें प्यार करते थे. गोर्की का कोई भी समकालीन, चाहे वह दुनिया के किसी भी हिस्से में रहता हो, किसी भी भाषा में लिखता हो, या किसी भी विचारधारा को मानता हो, वह गोर्की के अनुभव-सत्य को झुठला नहीं सकता. शायद इसीलिए अनातोले फ्रांस और स्टीफन ज्विग को बार-बार कहना पड़ा था : 'गोर्की जैसा व्यक्ति सारी दुनिया की धरोहर है.' 'गोर्की के ढंग की प्रतिभा के लिए केवल एक ही नाम हो सकता है—सचाई.'

यदि मानवीय उत्पीड़न और मानवीय शोषण को आधार माना जाये तो उस समय भारत और रूस एक से ही दौर से गुजर रहे थे. शायद यही कारण था कि गोर्की भारतीय लेखन, भारतीय आदमी और भारतीय संस्कृति को बेहतर प्यार करने लगे थे. शायद यही प्यार उनके मुंह से कहलवा सका कि : 'संसार के अन्य सभी देशों की तुलना में भारत के लोगों ने ही सबसे पहले आदर्श की खोज शुरू की थी' और 'मानवसंस्कृति का इतिहास यूनान और रोम से नहीं भारत और चीन से आरंभ करना चाहिए.' सही अर्थों में गोर्की का सारा लेखन आदमी की आत्मा की तलाश का लेखन है. यही तलाश मानवीय करुणा, मानवीय संवेदना और दर्द के गहरे एहसास के रूप में हमेशा गोर्की की आंखों में समायी रही. यही कारण है कि दुनिया का कोई भी चित्रकार गोर्की की आंखों को नहीं भूल सकता.

गोर्की विशेषांक का दीपावली के अवसर पर संयोजन लोगों को विचित्र लग सकता है लेकिन अगर हम यह बात अपने आपसे पूछें कि आखिर दीपावली है क्या? तो हमें अनेक स्थितियों के और अनेक प्रकारों के अनेक उत्तर मिलेंगे. लेकिन उन सभी उत्तरों में कहीं न कहीं एकसूत्रता अवश्य दिखाई देगी. वह एकसूत्रता परंपरा से हटने और उजाले का आह्वान करने की है, लोकोक्ति के ढंग पर दीवाली से एक दिन पहले यम चतुर्दशी होती है. लेकिन उससे एक दिन पहले धन्वंतरि के अमृत कलश का दिन होता है. जिसे हम धनतेरस कहने लगे हैं. ये दोनों दिन मृत्यु के अंधेरे में जीवन की अमरता के प्रकाश का संकेत करते हैं. ठीक दीवाली वाला दिन अंधेरे पर रोशनी की विजय का दिन है और उसके बाद गोवर्धनपूजा के रूप में इंद्रपूजा की परंपरा का, त्याग और जीवन से सीधे जुड़े हुए और जीवन के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी चीजों की पूजा का प्रारंभ भी नयी रोशनी की ओर चलने का ही संकेत करता है. रूस और भारत में उसी रोशनी की तलाश जिसे हम मुक्ति की रोशनी की तलाश भी कह सकते हैं, शुरू हो चुकी थी. और गोर्की उस रोशनी की तलाश के बहुत बड़े पक्षधर, चिंतक और सर्जक थे. यही सोचकर हमने उनकी 50 वीं पुण्यतिथि के वर्ष में ठीक दीपावली के अवसर पर इस विशेषांक की योजना की और हम युगों से चली आयी रोशनी की उसी शाश्वत तलाश को यह विशेषांक समर्पित कर रहे हैं.

इस अंक के साथ सारिका पुनः मासिक पत्रिका के रूप में आपके सामने आ रही है. हमें बड़ी तकलीफ के साथ मात्र आठ पृष्ठ बढ़ाकर इसका मूल्य छह रुपये करना पड़ा है. हमें पूरा विश्वास है कि हमारे पाठक हमारी तकलीफ को समझेंगे और अपना सहृदय सहयोग देते रहेंगे. जनवरी से हम कुछ नये और महत्वपूर्ण स्तंभ शुरू करने जा रहे हैं जिससे सारिका के स्वरूप को नयापन और नयी अर्थवत्ता दी जा सके. उस नये रूप की घोषणा हम दिसंबर अंक में करेंगे.

देखते-देखते हालात कितनी तेजी से बदल जाते हैं...जब इंसान को अपने वजूद और उसकी उपयोगिता का एहसास हो जाता है....? सारी उम्र पति की गालियां और मार खाकर जीने वाली औरत की जिंदगी में आशा की वह कौन-सी किरण फूटी कि वह पूरे समाज के अधिकारों के लिए लड़ने को तैयार हो गयी?

जार के रूस में एक पददलित औरत की धीरे-धीरे विकसित होती सामाजिक चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले विश्वप्रसिद्ध उपन्यास 'मां' का संक्षिप्त रूपांतर—
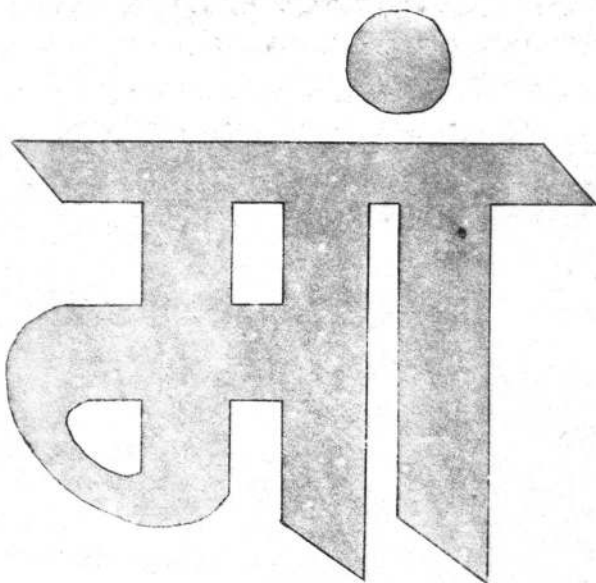
मजदूरों की बस्ती की धुंआरी और गदी हवा में हर सुबह फैक्टरी के भोंपू का कांपता कर्कश स्वर गूंज उठता और उसके आह्वान पर छोटे-छोटे घरों से उदास लोग ठिठुरते झुटपुटे में कच्ची सड़क पर चल पड़ते. गंदगी, बदबू, मच्छर और बीमारियां फैलाने वाले दलदल के पास बनी फैक्टरी की ऊंची-सी पत्थर की इमारत निर्मम तथा निश्चिंत भाव से उनकी प्रतीक्षा करती रहती थी. हर सुबह वह उन लोगों को निगल लेती थी और दिन भर उनका जीवन-रस निचोड़ कर शाम को उगल देती थी.

वे फिर सड़क पर चल पड़ते. भोजन और विश्राम की आशा से कुछ उल्लसित. लेकिन बरसों की संचित थकान से उनकी भूख मर जाती थी, इसलिए वे शराब पीकर अपनी भूख चमकाते. वे तेज वोदका से अपने पेट की आग को भड़काते, लेकिन उसके साथ ही उनका दबा-घुटा गुस्सा भी भड़कता, जो बाहर उनकी आपसी लड़ाइयों में व्यक्त होता और घरों में उनकी पत्नियों तथा बच्चों पर उतरता.

मिखाइल व्लासोव भी इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करता था. लेकिन उसका बेटा पावेल कुछ और ही ढंग का लड़का निकला. जब वह चौदह बरस का था, पिता ने एक बार उसे हमेशा की तरह पीटना चाहा, मगर पावेल ने एक भारी-सा हथौड़ा उठाकर कहा, "बस, बहुत हो चुका. अब मैं और बरदाश्त नहीं करूंगा."

पिता ने उसे घूर कर देखा और विद्रूप से हंसकर बोला, "अच्छी बात है, कुतिया के पिल्ले! अच्छी बात है!" फिर उसने अपनी घरवाली से कहा, "अब मुझसे कभी पैसे न मांगना. पावेल ही तेरा पेट पालेगा."

पावेल की मां अक्सर ही पति की गालियां और मार खाती थी, इसलिए हमेशा भयभीत रहती थी. फिर भी उसने उस दिन पूछने का साहस किया, "पावेल मेरा पेट पालेगा? और तुम अपनी सारी कमाई शराब में उड़ाओगे?"

"तुझे इससे क्या मतलब है, कुतिया! कोई रखैल रख लूंगा."

रखैल तो उसने नहीं रखी, पर लगभग दो वर्ष, अपने मरने के दिन तक, उसने बेटे की ओर न तो कभी ध्यान दिया और न कभी उससे बात ही की.

पावेल फैक्टरी में काम करने लगा था. वह अपना काम बड़ी मेहनत से करता था. कभी कामचोरी नहीं करता था और न कभी उस पर जुरमाना हुआ था. वह बहुत कम बोलता था और मां की तरह उसकी बड़ी-बड़ी नीली आंखों में एक असंतोष भरा रहता था. वह कहीं से किताबें लेकर आता, उन्हें चोरी-चोरी पढ़ता और पढ़ने के बाद हमेशा छिपा देता. कभी-कभी वह किताब का कोई अंश नकल करता और उस कागज को छिपा देता.

एक रात जब वह पढ़ रहा था, मां सहमती-सी उसके पास आयी और बड़ी हिचकिचाहट के साथ बोली, "पावेल, तुम हर वक्त यह क्या पढ़ते रहते हो?"

पावेल ने किताब बंद कर दी. मां को बैठ जाने के लिए कहा और बोला: "मां, मैं गैरकानूनी किताबें पढ़ता हूं. ये गैरकानूनी इसलिए हैं कि इनमें मजदूरों के बारे में सच्ची बातें लिखी हैं. लेकिन जारशाही ने सच्चाई को जानना जुर्म बना रखा है, इसलिए ये चोरी से छापी जाती हैं और अगर मेरे पास पकड़ी गयीं तो मुझे जेल भेज दिया जायेगा."

मां डर गयी और रोने लगी. पावेल ने कोमल और प्यार भरे स्वर में कहा, "रोओ नहीं, मां जरा सोचो तो. कैसा जीवन है हम लोगों का! तुम चालीस बरस की हुई, पर कोई सुख देखा है तुमने अपने जीवन में."

मां बड़ी उत्सुकता के साथ किंतु धड़कते दिल से उसकी बातें सुन रही थी. पावेल ने उसे गैरकानूनी किताबों के साथ-साथ गैरकानूनी लोगों के बारे में बताया, जो जनता की भलाई के लिए उसमें सच्चाई के बीज बोते थे और इसी कारण जीवन के शत्रु हिंसक पशुओं की तरह उनके पीछे पड़ जाते थे, उन्हें जेलों में ठूंस देते थे, निर्वासित कर देते थे...

"मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, मां!" पावेल ने कहा, "वे धरती के सच्चे

लाल हैं!"

मां ऐसे लोगों के विचार से ही कांप गयी, लेकिन कुछ दिन बाद जब ऐसे लोगों की एक बैठक उसके घर में हुई, तो मां ने उनका स्नेहिल स्वभाव और बुद्धिमत्तापूर्ण मानवीय व्यवहार देखकर स्वयं ही कहा, "क्या यही गैरकानूनी...खतरनाक लोग हैं? मैं नहीं मानती. पावेल भी अभी तक कैसा नादान बच्चा है!"

फिर तो हर शनिवार को पावेल के घर पर बैठक होने लगी. बैठक में आने वालों की संख्या बढ़ती गयी और व्लासोव परिवार का वह छोटा-सा कमरा खचाखच भरा रहने लगा. मां को वे सब पावेल की ही नहीं, अपनी भी मां समझते और मां भी उन्हें अपने बच्चों की तरह प्यार करने लगी.

उनमें से कुछ लोग तो बस्ती के ही थे, जिन्हें मां पहले से जानती थी, और कुछ शहर से आया करते थे. अंद्रेई नाखोदकर नामक एक उक्रइनी कुछ ही दिन पहले बस्ती में आकर रहने लगा था और पावेल के साथ फैक्टरी में काम करता था. मां को जब यह मालूम हुआ कि वह बिन मां-बाप का अकेला लड़का है और पावेल के साथ उसकी गहरी दोस्ती है, तो उसने अंद्रेई को अपने ही घर में जगह दे दी. अंद्रेई उम्र में पावेल से बड़ा था और बड़े भाई की तरह ही पावेल को प्यार करता था.

शहर से आने वालों में साशा और नताशा नामक दो नौजवान लड़कियां भी थीं, जिन्हें देखकर मां को बड़ा आश्चर्य होता था, क्योंकि उनमें से एक का पिता काफी बड़ा जमींदार था और दूसरी का पिता बड़ा सरकारी अफसर, लेकिन वे छोटी-मोटी नौकरियां करती हुई आत्मनिर्भर रहती थीं और बर्फीले तूफानी मौसम में भी रात के समय शहर से अकेली पैदल आ-जा सकती थीं. लेकिन जल्दी ही मां समझने लगी कि ये सारे 'बच्चे' जनता की भलाई के लिए उसमें सच्चाई का बीज बोने वाले ऐसे लोग हैं, जो अपने काम के सामने अपने निजी सुख-दुख की जरा भी परवाह नहीं करते.

जल्दी ही बस्ती में समाजवादियों की चर्चा होने लगी, जो नीली स्याही में छपे हुए परचे बांटते थे. इन परचों में फैक्टरी के व्यवस्थापकों की कड़ी आलोचना की जाती थी व मजदूरों को अपने हितों की रक्षा और एकता कायम करने के लिए ललकारा जाता था. इन परचों ने हलचल पैदा कर दी और एक रात पुलिस पावेल के घर की तलाशी लेने आ पहुंची. हालांकि वहां परचों का कोई सुराग पुलिस को नहीं मिला, फिर भी वह अंद्रेई को गिरफ्तार कर ले गयी. गिरफ्तारी के समय ही मां को मालूम हुआ कि अंद्रेई क्रांतिकारी है और पहले भी राजनीतिक कैदी रह चुका है—एक बार रोस्तोव में, दूसरी बार सरातोव में.

जल्दी ही पावेल की भी बारी आयी.

हुआ यह कि फैक्टरी के मालिकों ने फैक्टरी के आसपास ही दलदली जमीन से फायदा उठाने के लिए उस दलदल को सुखाने का फैसला किया. लेकिन मजदूरों को गंदगी और बीमारियों से बचाने का दिखावा करके दलदल सुखाने में आने वाले खर्च का भार मजदूरों पर डाल दिया. उन्होंने आदेश दिया कि दलदल सुखाने के लिए प्रत्येक की मजदूरी में से प्रति रूबल एक कोपेक काट लिया जाये. मजदूरों को यह कटौती बड़ी अनुचित और अन्यायपूर्ण मालूम हुई. तब तक पावेल की गिनती बस्ती के सबसे समझदार लोगों में होने लगी थी. उसके नेतृत्व में मजदूरों ने फैक्टरी के डायरेक्टर से बात की और कोपेक-कटौती का विरोध किया, लेकिन नतीजा कुछ न निकला. उस दिन पावेल ने मजदूरों के सामने एक जोरदार भाषण दिया

"डायरेक्टर से बातचीत करके हमने देख लिया. उसने अपना आदेश वापस लेने के बजाय उल्टे हम पर जुरमाना कर देने की धमकी दी है. अब मेरा विचार तो यह है कि जब तक वह कोपेक-कटौती बंद करने का वादा न कर ले, तब तक हममें से कोई काम पर वापस न जाये."

इसका मतलब था हड़ताल. उसे रोकने के लिए फैक्टरी के मालिक तुरंत सक्रिय हुए और उसी रात पुलिस बस्ती में आ धमकी. पावेल के अलावा दूसरे

भी लगभग पचास मजदूर गिरफ्तार कर लिये गये.

पावेल की गिरफ्तारी से मां को बड़ा दुख हुआ. दो दिन वह अपने घर में अकेली पड़ी चुपचाप रोती रही. न चूल्हा जलाया, न खाना पकाया. कोई उससे मिलने भी नहीं आया. आता कौन? पावेल के सारे साथी पकड़ लिये गये थे और बाकी लोगों में दहशत फैली हुई थी. तीसरे दिन शहर से पावेल के दो साथी येगोर और समोईलोव किसी तरह छिपते-छिपाते आये. उन्होंने मां को धीरज बंधाया और अपनी एक चिंता मां के सामने रखी :

"मां, तुम्हें मालूम है, यहां के हमारे लगभग सभी साथी पकड़े जा चुके हैं. यहां काम करने वाला इस समय कोई नहीं है, इसलिए फैक्टरी में परचे बंटने बंद हो गये हैं. पुलिसवाले इसका मतलब यह लगायेंगे कि परचे पावेल और उसके साथी ही बांटते थे, जो इस समय जेल में हैं. उन लोगों को सजा देने के लिए यह बात सबूत बन जायेगी."

"मैं समझ रही हूं." मां ने उदास स्वर में कहा, "मगर बेटा, हम कर ही क्या सकते हैं?"

"हमारे पास बहुत-सा बढ़िया मसाला छपा रखा है." येगोर ने कहा, "मगर उसे फैक्टरी में कैसे पहुंचाया जाये, बस यही समझ में नहीं आता."

"अब वे फाटक पर हर एक तलाशी लेने लग हैं," समोईलोव ने कहा.

मां ताड़ गयी कि वे उससे कुछ आशा कर रहे हैं. उसने कुछ सोचा और फिर सहसा मानो किसी प्रेरणावश कहा, "तुम मुझे दे दो! मैं सब ठीक कर दूंगी! मैं कोई तरकीब निकाल लूंगी! वे लोग भी देखें कि पावेल के हाथ जेल से बाहर भी पहुंच सकते हैं!"

मां अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न थी. साथ ही उसके हृदय में यह शांत चेतना जाग्रत हुई, जिस जिंदगी के लिए पावेल और उसके साथी संघर्ष कर रहे हैं, उसके लिए उसका भी महत्व है. पहले वह समझती थी कि किसी को उसकी जरूरत नहीं है. पर अब वह स्पष्ट देखने लगी कि अनेक लोगों को उसकी जरूरत थी...

तीनों के चेहरे चमक उठे. येगोर ने कहा, "तब ठीक है. कल हम परचे लाकर तुम्हें दे जायेंगे." समोईलोव ने मां से हाथ मिलाते हुए कहा, "मां, तुम बहुत अच्छी हो. मैं अपनी मां से कभी यह काम करने के लिए नहीं कह सकता था."

"एक न एक दिन सब मांएं इस बात को समझ जायेंगी." मां ने उसका उत्साह बढ़ाने के लिए कहा.

अगले दिन वह मजदूरों के खाने-पीने की चीजों का खोमचा लिये फैक्टरी के अहाते में बैठी थी. मजदूर उससे पूछते, "अरे, पेलागेया निलोवना, तुम?" और वह उत्तर देती, "पावेल के जेल चले जाने से आमदनी का कोई जरिया नहीं रह गया है. पेट भरने के लिए कुछ तो करना ही पड़ेगा." लेकिन पावेल के कुछ साथियों को येगोर और समोईलोव ने पहले ही सचेत कर दिया था कि पेलागेया निलोवना खोमचेवाली बन कर फैक्टरी में परचे लायेगी. उन्होंने संतरियों और सिपाहियों की आंख बचा कर परचे ले लिये और मजदूरों में बांट दिये. खुफिया पुलिस के लोग भी पता नहीं लगा पाये कि परचे फैक्टरी के अंदर कैसे पहुंचे.

उन परचों का असर यह हुआ मजदूरों की दहशत दूर हो गयी, उनमें एक होकर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की भावना पैदा हुई और फैक्टरी के मालिकों को दलदल सुखाने के लिए की जाने वाली कोपेक-कटौती का आदेश वापस लेना पड़ा. उधर पकड़े गये लोगों के खिलाफ कोई सबूत नही मिल पाया और उन्हें छोड़ा जाने लगा.

पहले अंद्रेई जेल से छटा. मां उसे देखकर रोने लगी तो उसने मां को अपनी बांहों में भर लिया और बड़े प्यार से कहा, "रोओ नहीं, अम्मा, वे पावेल को भी जल्दी ही छोड़ देंगे. वे हमारे खिलाफ कुछ भी साबित नहीं कर सके. पावेल ने सलाम कहा है. वह बिल्कुल अच्छा है और खुश है. तुमने हमारे परचे फैक्टरी में पहुंचाये, यह कोई मामूली बात नहीं."

मां अपनी सफलता पर बहुत प्रसन्न थी. साथ ही उसके हृदय में यह शांत चेतना जाग्रत हुई—जिस नयी जिंदगी के लिए पावेल और उसके साथी संघर्ष कर रहे हैं, उसके लिए उसका भी महत्व है. पहले वह समझती थी कि किसी को उसकी जरूरत नहीं है, पर अब वह स्पष्ट देखने लगी कि अनेक लोगों को उसकी जरूरत थी. यह एक नया और सुखद अहसास था. एक ऐसा अहसास, जिसकी बदौलत वह अपना मस्तक गर्व से ऊंचा करके चल सकती थी.

मां की जिंदगी अब पहले जैसी नीरस और यातनापूर्ण नहीं रही. अब उसमें प्रेम था, नित नयी घटनाओं का आकर्षण था. पावेल को जल्दी नहीं छोड़ा गया और वह समय-समय पर जेल में मिलने जाती रही.

पावेल जेल में था, लेकिन अंद्रेई तथा कुछ अन्य लोगों के छूट आने से मां के घर में पहले जैसी बैठकें फिर से होने लगी थीं. वे लोग चाय बहुत पीते थे और मां उन्हें चाय बना-बना कर देती रहती. वे जो बातें और बहसें करते, उन्हें भी वह ध्यान से सुनने की कोशिश करती. लेकिन उनकी सब बातें उसकी समझ में न आतीं और उसे खेद होता कि वह पढ़ी-लिखी नहीं है. बचपन का अक्षर-ज्ञान भी कठोर जीवन के लंबे वर्षों में भुला दिया था, जिससे वह उन परचों तक को पढ़ने में असमर्थ थी, जिन्हें उसने खुद मजदूरों तक पहुंचाया था.

"लोगों को अफसोस है कि वे अनपढ़ हैं." एक दिन उसने अंद्रेई से कहा, "वे उन परचों को पढ़ना चाहते हैं, पर पढ़ नहीं पाते. मैं भी लड़कपन में पढ़ना जानती थी, अब भूल गयी."

"सीख क्यों नहीं लेतीं?" उक्राइनी ने सुझाव दिया.

"इस उमर में? अपनी हंसी उड़वाने के लिए?" मां ने हंसकर बात टाल दी, लेकिन उसी दिन से वह एकांत में चुपके-चुपके पढ़ने का प्रयास करने लगी. धीरे-धीरे भूले हुए अक्षर उसकी पहचान में आने लगे और एक दिन उसने कहा, "अंद्रेई मेरी आंखें कमजोर होती जा रही हैं..." अंद्रेई ने बात समझकर हंसते हुए कहा, "इतवार को मैं तुम्हें लेकर डाक्टर के पास शहर चलूंगा, वहां ऐनक ले देंगे."

मां के पड़ोस में मिखाइलो रीबिन नामक एक आदमी रहता था. वह भी फैक्टरी में काम करता था. लेकिन मूलतः किसान था और मजदूर होते हुए भी बिल्कुल किसानों की तरह सोचता था. उसने समाजवादियों के सारे परचे पढ़ रखे थे, पावेल, अंद्रेई और उनके दूसरे साथियों से महीनों विचार-विमर्श किया था, और उस नये ज्ञान की रोशनी में अपने जीवन को देखकर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जब तक किसानों को जागृत करके संगठित नहीं किया जाता तब तक हालत बदलने वाली नहीं है. उसे जारशाही व्यवस्था से ही नहीं, धर्म और धर्मगुरुओं की पाखंडपूर्ण व्यवस्था से भी नफरत हो गयी थी और अपने नास्तिकतावादी विचारों की अभिव्यक्ति वह खुलेआम करने लगा था.

मां को रीबिन की बातें बड़ी भयानक लगती थीं. उनसे मां के धार्मिक संस्कारों को ठेस पहुंचती थी, लेकिन जब उसने देखा कि ईश्वर की संतान कहलाने वाले मनुष्यों में अमीर-गरीब का भेद है और धार्मिक लोग खाई को पाटने के बजाय बनाये रखने में ही मददगार होते हैं, तो उसे भी चर्च और पादरियों से नफरत होने लगी. रीबिन के विचार अब उसे उतने भयानक न लगते और वह उससे आराम से बातें करती रहती. कुछ दिन बाद रीबिन किसानों में जागृति फैलाने के विचार से फैक्टरी का काम और बस्ती छोड़ कर चला गया. जाने से पहले वह मां से मिलने आया और अपना नया पता-ठिकाना बता गया. मां का हृदय उसे विदा करते समय बी करुणा से भर आया, जैसे वह अधेड़ आदमी भी उसका बच्चा ही हो.

आखिर पावेल भी जेल से छूट आया. आते ही उसने अंद्रेई तथा अन्य साथियों के साथ मई दिवस मनाने की तैयारियां शुरू कर दीं. सब लोगों का निश्चय था कि इस अंतरराष्ट्रीय मजदूर दिवस के अवसर पर अपनी पार्टी का झंडा लेकर एक शानदार जुलूस निकाला जाये और सब लोगों पर यह

जाहिर कर दिया जाये कि हम कौन हैं और क्या चाहते हैं. मजदूरों को सचेत और संगठित करने के लिए ऐसा करना जरूरी था.

बस्ती में मई दिवस मनाने की तैयारियां होती देख फैक्टरी के मालिकों के कान खड़े हुए. पुलिस सतर्क हो गयी. जासूस अपना काम करने लगे. पुलिस के कुछ भेदिये बस्ती के लोगों में भी थे. फैक्टरी के टाइमकीपर ईसाई को तो हर कोई जानता था कि वह भेदिया है. वह क्रांतिकारियों की गतिविधियों पर नजर रखता था और उनकी सूचनाएं पुलिस तक पहुंचाता था. इसके अलावा वह मजदूरों को उनके क्रांतिकारी साथियों के खिलाफ उकसा कर कानून और व्यवस्था का साथ देने की बातें भी करता था.

एक दिन सुनने में आया, किसी ने ईसाई की हत्या कर दी. यह पावेल के साथियों में से ही एक का काम था. मां को बड़ा धक्का लगा. बस्ती के अन्य लोगों की तरह वह भी ईसाई की लाश देखने गयी. लौटकर उसने पावेल और अंद्रेई से कहा, "उसके मरने का किसी को दुख नहीं है..."

"लेकिन मुझे दुख है." पावेल ने कहा, "देखती हो, लोगों को किस तरह एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया गया है. मरजी न होते हुए भी लोग किसी को मार देते हैं. और जिसे मारते हैं, वह कौन होता है? कोई बेचारा मजबूर, जिसे खुद भी हमसे ज्यादा अधिकार नहीं होते. लेकिन वह हमसे भी ज्यादा अभागा होता है, क्योंकि वह बेवकूफ भी होता है. पुलिस और जासूस सब हमारे दुश्मन हैं और उन्हें मारकर खत्म करना कभी-कभी बिल्कुल जरूरी हो जाता है—जिंदगी ऐसी ही है—लेकिन वे सब हमारे ही जैसे लोग हैं, जिनका खून हमारी ही तरह चूस लिया जाता है. हम सब एक जैसे हैं, पर हमारे मालिकों ने हमें एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया है. उन्होंने लोगों को बंदूक, डंडा और पत्थर बना दिया है, और कहते हैं—यही राज्य सत्ता है!....मां, अगर तुम इस चीज को अनुभव कर पातीं कि यह सब कितना नीच और अपमानजनक है, तो तुम समझ जातीं कि हमारा सत्य कितना अच्छा और महान है, जिसके लिए हम लड़ रहे हैं! हम मनुष्य के बीच स्थायी शांति, मैत्री और प्रेम के लिए लड़ रहे हैं."

बेटे के शब्द मां के हृदय में एक ज्वाला-सी धधकाने लगे. उसने धीमे स्वर में कहा, "मैं समझ रहीं हूं, बेटा, मैं समझ रही हूं."

न जाने क्यों टाइमकीपर की हत्या की बात दबा दी गयी. दो दिन तक स्थानीय पुलिस ने तहकीकात की, लेकिन फिर मामले को टाल दिया. लोगों ने कहा, "कातिल का पता कैसे चलेगा? उस दिन कम से कम सौ लोग इसाई से मिले होंगे और उनमें से कम से कम नव्वे ऐसे रहे होंगे, जिन्हें उसे मारकर बहुत खुशी होती. सात बरस से वह लोगों को इसके लिए उकसा रहा था..."

अंद्रेई ने इस बाबत मां से कहा, "वे इंसानों की तो परवाह ही नहीं करते.. उन लोगों की भी नहीं, जिन्हें वे हमारे खिलाफ इस्तेमाल करते हैं. उन्हें अपने भाड़े के टट्टुओं के मर जाने का कोई अफसोस भी नहीं होता..."

आखिरकार पहली मई का वह दिन भी आ गया, जिसकी इतने दिनों से प्रतीक्षा थी. तय था कि पावेल, अंद्रेई और उनके दूसरे साथी आज अवश्य गिरफ्तार कर लिये जायेंगे. पार्टी का लाल झंडा लेकर सबसे आगे चलने का सम्मान पावेल को दिया गया था. यह सुनकर साशा शहर से आयी और उसने पावेल से इस फैसले पर पुनर्विचार करने के लिए कहा. उसके अनुरोध में कुछ ऐसी बात थी कि मां को मालूम हो गया, साशा और पावेल एक-दूसरे को प्यार करते हैं. लेकिन अंद्रेई से मालूम हुआ कि वे दोनों प्यार करने के बावजद शादी नहीं कर सकते, क्योंकि जो काम वे कर रहे हैं, उसमें कुछ पता नहीं कि कब किसे जेल जाना पड़े या निर्वासित होना पड़े. खुद अंद्रेई नताशा से मन ही मन प्यार करता था, लेकिन उसे व्यक्त भी न कर सका. मा को यह जान कर दुख हुआ, लेकिन उसे अपने 'बच्चों' के प्रति एक सम्मान और गर्व की भावना का भी अनुभव हुआ.

ऐसी ही भावना का अनुभव उसे उस समय हुआ जब मई दिवस का जुलूस निकला और उसका बेटा सबसे आगे झंडा लेकर चला. मां उस समय पावेल के पास ही खड़ी थी, जब उसने कहा, "साथियो, हमने फैसला किया है कि आज हम खुले आम बता दें कि हम कौन हैं और अपना झंडा ऊंचा करें, जो हक, इंसाफ और आजादी का झंडा है!"

पावेल ने अपना हाथ उठाया और झंडा हिलने लगा. दर्जनों हाथों ने लपककर झंडे के चिकने सफेद बांस को थाम लिया. उनमें मां का हाथ भी था.

''मजदूर वर्ग जिंदाबाद!'' पावेल ने नारा लगाया, ''सामाजिक-जनवादी मजदूरी पार्टी जिंदाबाद! साथियो, यह हमारी पार्टी है, हमारे विचार इसी की देन हैं.''

सैकड़ों लोगों का कंठ-निनाद नारों को दोहराने लगा और जुलूस आगे बढ़ने लगा. वे मजदूरों का अंतरराष्ट्रीय 'इंटरनेशनल' गाते हुए चल रहे थे– 'उठ जाग ओ भूखे बंदी, अब खैंचो लाल तलवार...'

लेकिन तभी बंदूकधारी सिपाहियों की एक टुकड़ी आ पहुंची, जिसका नेतृत्व खुद उस इलाके का गवर्नर कर रहा था. उसने मजदूरों को तितर-बितर हो जाने का आदेश दिया, लेकिन जुलूस आगे बढ़ता रहा. मगर जब उसने सिपाहियों को बंदूकें तान लेने का आदेश दिया, तो पिछले हिस्से में भगदड़ मच गयी. केवल अगला हिस्सा, जिसमें पावेल और उसके साथी चल रहे थे, चमचमाती संगीनों और बंदूकों की परवाह न कर आगे बढ़ता रहा. गवर्नर ने उन लोगों को गिरफ्तार करने का आदेश दिया.

कई सिपाही आगे बढ़े. एक ने अपनी बंदूक का कुंदा घुमाया. झंडा कांप कर आगे गिरा और सिपाहियों के भूरे रंग के समूह में खो गया.

''हाय मेरा लाल!'' मां घायल पशु की तरह चिल्ला उठी. उसके उत्तर में सिपाहियों के बीच से पावेल का स्पष्ट स्वर सुनायी दिया, ''विदा मां, विदा, मेरी प्यारी मां...''

मां का कलेजा फटा जा रहा था, लेकिन उसने भीड़ के बीच गिरे हुए झंडे को उठा लिया और हाथ फैला कर लोगों से कहा, ''सुनो, भगवान के लिए मेरी बात सुनो! तुम सब भले लोग हो, मुझे बहुत प्यारे हो...आज जो कुछ हुआ उससे डरो नहीं. सबके लिए इंसाफ की खातिर हमारे बच्चे, हमारे कलेजे के टुकड़े मैदान में निकल आये हैं! उन्होंने तुम सबके जीवन को सुखी बनाने के लिए यह झंडा उठाया है. वे एक नया जीवन चाहते हैं–सत्य और न्याय का जीवन...वे सब लोगों की भलाई चाहते हैं...उनका साथ न छोड़ो. उन पर भरोसा रखो!''

फिर उसका गला रुंध गया और वह लड़खड़ा गयी. किसी ने बढ़कर उसे थाम लिया.

मई-दिवस की उन गिरफ्तारियों के बाद मां का एक नया जीवन शुरू हुआ. आशंका थी कि पुलिस उसे भी पकड़ ले जायेगी, इसलिए पावेल के साथियों ने तै किया कि उसे अब बस्ती में नहीं रहना चाहिए. उन्होंने शहर में निकोलाई इवानोविच नामक साथी के घर में उसके रहने का इंतजाम कर दिया, जो सरकारी नौकरी करते हुए भी अपनी बड़ी विधवा बहन सोफिया के साथ गुप्त रूप से क्रांतिकारी कार्य करता था. मां को उसका घर बिल्कुल अपने घर जैसा लगा, क्योंकि वहां भी गुप्त बैठकें हुआ करती थीं और वे लोग भी मां को अपने ही बच्चों की तरह प्यारे लगते थे. लेकिन पावेल की चिंता उसे हर समय लगी रहती थी, क्योंकि इस बार तै था कि पावेल और उसके साथियों पर मुकदमा चलेगा और उन्हें कोई कठोर सजा सुनायी जायेगी.

शहर में आकर मां को एक विचित्र-सा खालीपन भी महसूस हुआ. बस्ती में रहते समय वह अनायास ही पावेल और उसके साथियों के काम में हाथ बटाने लगी थी, पर यहां उसके लिए कोई काम नहीं था. वह दिन-रात व्यस्त रहने की कोशिश करती. घर की सफाई करती, खाना बनाती, बैठकें होतीं तो सबको चाय बना-बना कर देती रहती, अकेले में किताबें पढ़ने की कोशिश करती, सोफिया फुरसत में होती तो उससे संगीत सुनती, लेकिन इन कामों से उसे संतोष नहीं होता था.

एक दिन मां की उपस्थिति में ही निकोलाई ने सोफिया से कहा, ''सोफिया, मैंने तुम्हें बताया कि हम लोगों ने किसानों के लिए एक अखबार निकालने का जिम्मा लिया था. अखबार हमने छाप लिया था, लेकिन तभी मई दिवस वाली गिरफ्तारियां हो गयीं और बहुत-से साथी पकड़े गये. अब समस्या यह है कि गांवों में अखबार कैसे पहुंचे...''

मां तुरंत बोल उठी, ''मैं एक आदमी को जानती हूं. रीबिन है उसका नाम. मुझे मालूम है, वह कहां रहता है. अखबार मुझे दे दो, मैं ले जाऊंगी.''

पहली बार मां सोफिया के साथ गयी, लेकिन उसके बाद उसने गुप्त परचे और अखबार लोगों तक पहुंचाने का काम अकेले ही करना शुरू कर दिया.

''इस तरह घूमने-फिरने से बहुत फायदा होता है.'' वह निकोलाई से अक्सर कहा करती, ''इससे आदमी जिंदगी को समझता है. आम लोगों को धकेल कर जिंदगी की बाहरी सीमा पर पहुंचा दिया गया है, जहां वे अंधेरे में सड़ते हैं और पूछते हैं कि आखिर ऐसा क्यों है? उन्हें क्यों इस तरह दुतकार दिया जाता है? जब खाने को इतना मौजूद है, तो वे भूखे क्यों रहते हैं?''

''लोगों को जबरदस्ती बेरहम बना दिया जाता है,'' निकोलाई उदास भाव से कहता.

निकोलाई ज्यों-ज्यों मां को जानता गया, त्यों-त्यों वह उसे अधिक प्यार करने लगा. उसके यहां आने वाले दूसरे साथी भी मां को प्यार करते थे. इधर मां का भी हृदय इतना विशाल हो चुका था कि सत्य और न्याय के लिए लड़ने वाले तमाम लोग अपनी दाढ़ियों और प्रौढ़ चेहरों के बावजूद उसे अपने ही बच्चे लगते थे. जब वे मां को 'कामरेड' कहकर पुकारते, वह प्रसन्न हो जाती और मुस्कराने लगती.

वे ऐसे लोग थे, जिन्होंने अपने आपको लोभ और ईर्ष्या से मुक्त कर लिया था. वे अपने सुख-दुख की चिंता न करके अपने काम में लगे रहते थे और अपने लक्ष्य के लिए प्राण तक दे डालने की भावना से ओतप्रोत रहते थे. उनमें निकोलाई इवानोविच जैसे लोग थे, जो बार-बार जेलों में डाले जाते थे, निर्वासित किये जाते थे, लेकिन फिर लौटकर उसी उत्साह से काम में जुट जाते थे. उनमें येगोर जैसे नौजवान थे, जो मुफलिसी और भूख के कारण बीमार पड़ जाने के बावजूद दिन-रात काम करते थे और हंसते-हंसते जीवन से विदा हो जाते थे. उनमें साशा और नताशा जैसी लड़कियां थीं, जो जमींदारों और सरकारी अफसरों की बेटियां होने के बावजूद क्रांतिकारी बन गयी थीं और सारे सुख त्याग कर अभावों, कष्टों तथा जेल और निर्वासन की यातनाओं से भरा जीवन बिताने के बावजूद सदा खुश और उत्साहित रह लेती थीं. उनमें रीबिन जैसे लोग थे, जो किसानों में जागृति लाने के पुरस्कारस्वरूप सरेआम पुलिसवालों की लाठियों से पिटते और लहूलुहान होते थे, पकड़े जाते थे, किंतु अंत तक अपने ध्येय के प्रति निष्ठावान बने रहते थे. उनमें सोफिया और लूदमीला जैसी औरतें थीं, जो बेहद थका देने वाले और खतरनाक कामों में दिन-रात लगी रहती थीं और एक क्षण को भी अपना कर्त्तव्य नहीं भूलती थीं...

मां इन लोगों के बीच रहती थी और यथाशक्ति उनकी सहायता के लिए काम करती थी. धीरे-धीरे ईश्वर में उसकी आस्था स्वतः ही कम होती गयी, लेकिन मनुष्यों के प्रति उसकी ममता बढ़ती गयी.

पावेल और उसके साथियों पर मुकद्दमा चला. लेकिन सभी लोग जानते थे कि मुकद्दमा सिर्फ नाटक है, उनके लिए सजाएं पहले से तै कर ली गयी हैं. मां को विश्वास नहीं होता था, लेकिन जब उसने अदालत में बैठकर खुद अपनी आंखों से वह नाटक देखा, तो उसे न्याय के नाम पर चलने वाले उस पाखंड से घोर वितृष्णा हुई और पावेल के लक्ष्य के प्रति दृढ़ विश्वास पैदा हुआ. मई दिवस के जुलूस में पकड़े गये सभी लोगों को निर्वासन का दंड दिया गया.

क्रांतिकारियों को भी मालूम था कि मुकद्दमा एक झूठा नाटक है, लेकिन वे निर्भय थे और उन्होंने अदालत में खुलकर न्याय-व्यवस्था की धज्जियां उड़ायीं. पावेल ने तो वहां ऐसा बढ़िया भाषण दिया कि मां पुलकित हो उठी. बाकी साथियों का यह विचार था कि भाषण बहुत बढ़िया है और उसे छपवा कर ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचाना चाहिए.

''यह काम मैं करूंगी!'' मां ने कहा. वह अपने पावेल के भाषण को जल्दी से जल्दी प्रसारित करने के लिए, अपने बेटे के शब्दों को सारी पृथ्वी, पर फैला देने के लिए बेचैन थी.

उस दिन भी वह हमेशा की तरह एक सूटकेस लिये स्टेशन के भीड़भरे मुसाफिरखाने में बैठी अपनी गाड़ी के आने की प्रतिक्षा कर रही थी. अचानक उसकी नजर एक आदमी पर पडी जो कई दिनों से उसका पीछा कर रहा था. मां समझ गयी कि वह आदमी जासूस है और आज वह पकड़ी गयी. उसका

नाचना ठीक ही था, क्योंकि जासूस के एक संकेत पर थोड़ी ही देर में पुलिस आ गयी.

पुलिस वालों ने अपनी तरफ आते देख मां ने बेंच पर रखा हुआ सूटकेस खोलकर उसमें से परचों की एक गड्डी निकाल ली और बेंच पर खड़ी हो गयी. "सुनो! सुनो! सब लोग सुनो!" उसने चिल्लाकर कहा और मुसाफिरखाने में भरे हुए तमाम लोग उसकी तरफ देखने लगे. मां परचों की गड्डी को अपने सिर के ऊपर हिला रही थी और कह रही थी. "कल राजनीतिक कैदियों पर एक मुकद्दमा चलाया गया था और उनमें मेरा बेटा पावेल भी था. उसने अदालत में भाषण दिया था. यह वही भाषण है. मैं इसे सब लोगों तक पहुंचाना चाहती हूं, ताकि वे इसे पढ़कर सच्चाई का पता लगा सकें..."

यह कहते हुए मां ने परचों की वह गड्डी हवा में उछाल दी और उसने देखा कि लोग झटपट परचे ले लेते हैं और अपने कपड़ों में छिपा लेते हैं. यह देखकर उसमें नयी शक्ति आ गयी. वह अधिक शांत भाव से और ज्यादा जोश के साथ बोलने लगी. बोलते समय वह सूटकेस में से परचे निकालकर दाहिने-बायें उछालती जा रही थी और लोगों में उन परचों को लेने और सबसे पहले पढ़ने की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी. मां कह रही थी :

"जानते हो, मेरे बेटे और उसके साथियों पर मुकद्दमा क्यों चलाया गया? सिर्फ इसलिए कि वे लोगों को सच बातें बताते थे! ...मेरे बेटे ने अदालत में भी लोगों को सच्चाई ही बतायी. मेरे बेटे के शब्द एक ऐसे ईमानदार मजदूर के शब्द हैं, जिसने अपनी आत्मा बेची नहीं है, ईमानदारी के शब्दों को तुम उनकी निर्भीकता से पहचान सकते हो..."

"ए बुढ़िया, नीचे उतर और अपनी जबान बंद कर!" एक पुलिसवाले ने कहा और उसके सीने पर घूंसा मार कर उसे नीचे गिरा दिया. दूसरे ने उसकी गरदन पकड़कर जोर से झंझोड़ा और कहा, "चल यहां से!"

वे दोनों मां को घसीटते हुए ले जाने लगे और बाकी पुलिसवालों ने मुसाफिरखाने में भरी हुई भीड़ को तितर-बितर करना शुरू कर दिया. मां छुटकारे का प्रयास करती घिसटती जा रही थी और कहती जा रही थी, "लोगो, किसी बात से डरना नहीं! तुम्हारी जिंदगी जैसी अब है, उससे बदतर और क्या हो सकती है..."

"चुप रह, कुतिया!" एक पुलिसवाले ने कहा और मां के सिर पर प्रहार किया.

फिर तो कई पुलिसवाले मां को घसीटने लगे. वे मां की पीठ पर और गरदन पर घूंसे बरसा रहे थे, उसके कंधे पर और सिर पर मार रहे थे. हर चीख-पुकार क्रंदन और सीटियों की आवाजों का एक झंझावात बनकर मां की आंखों के सामने नाच रही थी और बिजली की तरह कौंध रही थी. उसका शरीर बोझिल हो गया था और वह निढाल होने लगी थी, लेकिन उसकी आंखें बाकी सब लोगों की आंखों को देख रही थीं, उन सब आंखों में उसी साहसमय ज्योति की आग्नेय चमक थी, जिसे वह भली भांति जानती थी और जिसे वह बहुत प्यार करती थी.

पुलिसवालों ने उसे एक दरवाजे के अंदर धकेल दिया. उसने झटका देकर अपनी बांह छुड़ा ली और चौखट को पकड़कर चिल्लायी, "सच्चाई को तो खून की नदियों में भी नहीं डुबोया जा सकता..."

पुलिसवालों ने उसके हाथ पर जोर से प्रहार किया

"अरे बेवकूफो, तुम जितना अत्याचार करोगे, हमारी नफरत उतनी ही बढ़ेगी! और देखना, एक दिन यह सब तुम्हारे सिर पर पहाड़ बनकर टूट पड़ेगी!"

एक पुलिसवाला उसकी गरदन पकड़कर जोर से उसका गला घोंटने लगा.

"कमबख्तो..." मां ने सांस लेने का प्रयत्न करते हुए कहा.

किसी ने जोर से सिसकी भरी. □

■ संक्षिप्त रूपांतर : रनेश उपाध्याय

छोटे से छोटा सार्वजनिक काम भी निरर्थक नहीं हो सकता
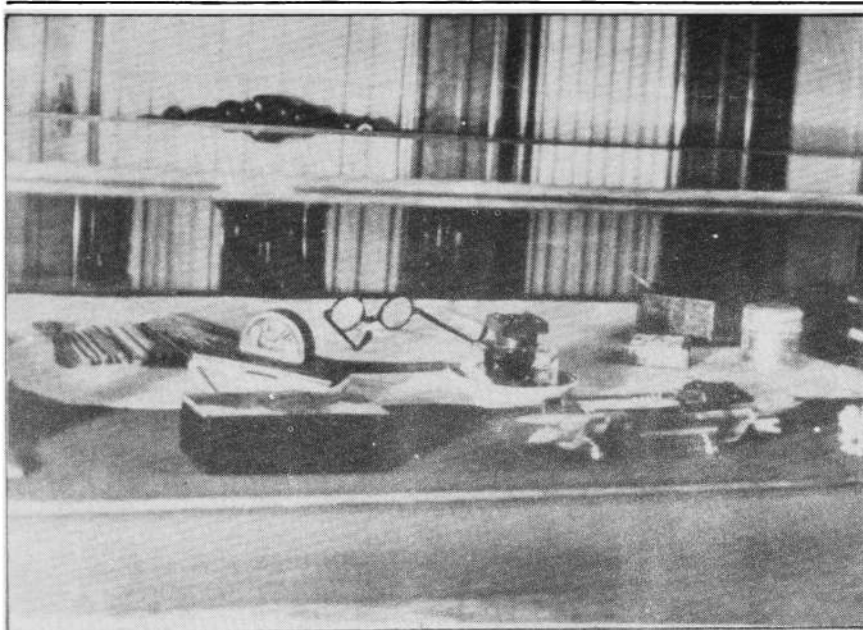
मास्को स्थित गोर्की संग्रहालय में गोर्की की लिखने की मेज व अन्य सामग्री

मैं जिस बात का वर्णन करना चाहता हूं, वह हमारे समय से तीस वर्ष पहले की है, इसलिए संभव है कि सब कुछ वैसे ही न हुआ हो, जैसे मैं बयान करूंगा.

किशोर अवस्था से ही मैं देखा करता था कि नीज्नी नोवगोरोद में 'बुद्धुओं', 'सिरफिरों' तथा 'दिव्य मूर्खों' की कमी नहीं है. 'सामान्य' लोग यानी मध्यम श्रेणी के लोग इन 'असामान्य' लोगों के प्रति दो तरह का रवैया रखा करते थे. वे इन 'सिरफिरों' की हंसी उड़ाते मगर उनसे जरा सहमे भी रहते थे, मानो उन्हें संदेह हो कि उनके पागलपन के पीछे कोई विशेष बुद्धिमत्ता छिपी है जिससे 'सामान्य' लोगों का विवेक वंचित होता है. उनके संदेह उचित थे.

चौदह वर्ष की आयु में मूजा मुश्चिना को 'बुद्धू' मान लिया गया और दो या तीन साल के बाद मध्यम श्रेणी के सभी नागरिक 'दिव्यद्रष्टा' के रूप में उसका सम्मान करने लगे थे जिसमें भविष्यवाणी करने की क्षमता है. सैकड़ों आदमी पैदल या सवारी से ग्रेबेशोक सड़क के उसके छोटे से मकान पर आते, जहां वह महीन गाने की-सी आवाज में कुछ टोने-टोटके बुदबुदाया करती और इस सेवा के लिए पच्चीस कोपेक वसूलती थी.

जब वह इक्कीस वर्ष की हुई तो उसने अपनी मां से मिलनेवाली विरासत को चुराने और बर्बाद करने के लिए अपने मामा और अभिभावक के विरुद्ध मुकद्दमा चलाकर पूरे शहर को आश्चर्यचकित कर दिया. पता यह चला कि मूजा अपनी अलौकिक सेवा की पचीस कोपेक की फीस बचाकर रखती जाती थी और 'कानूनी मामलों के एक स्वतंत्र सलाहकार' की सहायता से वह चुपचाप और बड़ी चतुराई से अपने मामा के विरुद्ध प्रमाण इकट्ठे कर रही थी. ये प्रमाण इतने जोरदार थे कि मामा को कैद की सजा हो गयी.

शहर में और भी कई 'बुद्धू' थे और इसे संयोग ही कहना चाहिए कि वे सब सुखी-संपन्न या धनी घराने के लड़के थे. इस बात की ओर मेरा विशेष रूप से ध्यान गया था. मीशा त्युलेनेव ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया.

अगर वह किसी महिला को अपनी ओर आते देखता तो पत्थर से धमकाता, गुर्राता और होंठो से अजीब आवाजें निकालकर बुदबुदाता. उसे देखने से घृणा होती थी, सामान्य लोग उसको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और अगर दिन को वह शहर की बड़ी सड़क पर निकल आता तो पुलिस उसे कुत्ते की तरह भगा देती.

यह तो सभी कहते थे कि त्युलेनेव और उसके जैसे अन्य 'सिरफिरे' पैदाइशी ऐसे नहीं थे मगर मुझे कभी पता नहीं चल सका कि उनके मानसिक रोग का कारण क्या था, यद्यपि मैंने बहुत से बुजुर्गों से इस बारे में पूछताछ की.

मुझे 'सामान्य' लोगों से ये मूर्ख ज्यादा दिलचस्प मालूम पड़े. यह बिल्कुल स्वाभाविक था, क्योंकि मैंने देखा कि सामान्य लोग खाने पीने, बच्चे पैदा करने और साने की मल प्रक्रिया में ही अपना सारा जीवन बिताते हैं.

इस प्रकार यहां मैंने अपने तरुण मन पर पड़े प्रभावों की एक श्रेणी के अंतर्गत बुद्धुओं, दिव्य मूर्खों और साधारणतया पागल माने जाने वाले लोगों का उल्लेख किया है. परंतु इस श्रेणी के साथ-साथ एक और श्रेणी के प्रभाव भी सामने आये, जो सर्वथा भिन्न थे.

नीज्नी नोवगोरोद व्यापारियों का नगर था. इस शहर के बारे में एक कहावत थी कि 'इसके घर पत्थर के बने हैं और लोग लोहे के.'

घटिया कूपमंडूक जीवन की नीरस पृष्ठभूमि में जिसे 'सामान्य' माना जाता था, ये 'लौह पुरुष' मुझे कमोबेश 'असामान्य' लगते थे और वास्तव में वे थे भी. गोर्देई चेर्नोव की कहानी मुझे विशेषकर उल्लेखनीय लगी.

चेर्नोव जिस काम में हाथ लगाता, उसे उसी में सफलता प्राप्त होती, जो बाधाएं सामने आतीं, वे उसकी अपनी लायी हुई होतीं. एक बार उसने इतना बड़ा बजरा बनाया जिसमें अभूतपूर्व मात्रा में सामान लादा जा सकता था. लोगों ने कहा कि पानी बाढ़ के स्तर पर पहुंच जाये तब भी वह नहीं चल सकता.

"चलेगा, जब हम इसे खींचकर ले चलेंगे," उसने उत्तर दिया था. मगर वह गलती पर था. उस बजरे को कभी चलाया नहीं जा सका.

और फिर एक दिन ऐसा आया जब वह आदमी जो अपने कारोबार में इतना सफल, बलवान और सुंदर था तथा रंगरेलियां मनाता था, अपना कारोबार छोड़कर अपने बेटे और बेटी से एक शब्द कहे बिना लापता हो गया.

'रचना शिल्प की बात' गोर्की का एक लंबा निबंध है जिसमें उन्होंने अपने समय के लोगों, उनकी प्रवृत्तियों और जीवन शैली से बात शुरू करते हुए लेखन के उद्देश्यों का आकलन करने का प्रयास किया है. अगर ध्यान से देखें तो हम पायेंगे कि आज का हमारा समाज भी लगभग इन्हीं स्थितियों से गुजर रहा है और इस प्रकार यह निबंध आज के भारतीय युवा रचनाकारों के लिए एक संबोधन है. प्रस्तुत है इसी निबंध का संक्षिप्त रूपांतर

1896 में नीज्नी नोवगोरोद में अखिल रूसी प्रदर्शनी के समय गोर्देई चेर्नोव फिर से नमूदार हुआ. वह ईसाई भिक्षु बन गया था और पुराने एथन मठ से 'अपने शहर का उत्सव देखने' आया था. और उसने खूब देखा. पुराने मित्रों के साथ जी भरकर शराब के कई दौर पीने के बाद वह अपने ईसाई मठ में वापस चला गया जहां 1900 में उसका देहांत हुआ.

मारीया कपितोनोवना काशिना जो एक बड़ी वोल्गा जहाज कंपनी की मालकिन और बड़ी होशियार औरत थी, चाय पीते समय फलसफा बघारने लगती थी. ''हमने ढेरों रुपया कमाया है, हमने निर्माण तो किया बहुतेरा, मगर जीवन है ऊब भरा. काश कि हम इसे फिर से शुरू कर सकते, जंगली अवस्था से, क्यों? यह अच्छा रहेगा. तब शायद यह कुछ दूसरा ही रूप ले सके.''

वास्तविक जीवन के प्रति इस प्रकार के नकारात्मक रवैये की अभिव्यंजना मुझे और भी कई बार सुनने को मिली. 'लौह' माताएं और पिता यद्यपि इस तरह की बातें किया करते थे, तथापि उनमें से अधिकांश खूब डटकर 'सामान्य' भद्र जनों का जीवन व्यतीत करते थे. मुझे इस बात की खासी-अच्छी जानकारी थी कि शहर के लगभग सभी प्रमुख व्यापारी परिवारों के लोग कैसा जीवन बिताते हैं और यह भी जानता था कि चेर्नोव अकेला व्यक्ति नहीं था जिसने उस प्रकार के 'सामान्य' भद्र जीवन से मुंह मोड़ लिया था. और बहुतों ने यही किया था और उस जीवन पद्धति से नाता तोड़ लिया था जिसकी रचना अनेक दशकों में की गयी थी.

जब मैं बीस या बाईस वर्ष का हुआ तो मैं लोगों को निम्नलिखित रोशनी में देखने लगा: अधिकांश लोग कूपमंडूक हैं, अभागे 'सामान्यों' के अंतर्गत आते हैं. इन्हीं में से 'लौह पुरुष' उत्पन्न होते हैं जो नगरपाल और गिरजाघरों के निरीक्षक बनते हैं. अपनी बग्घियों में निकलते और चर्च के जुलूसों में पादरियों के ठीक पीछे चलते हैं. कभी-कभी कोई 'लौहपुरुष' 'सामान्य जीवन' का घेरा तोड़कर बाहर निकल जाता है.

नवें दशक के अंत और दसवें के प्रारंभ में 'लौह पुरुषों' की संतान 'जीवन से शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा पाने' की प्रवृत्ति का परिचय देने लगी. ये शब्द एक पत्र के उद्धरण हैं जो कज़ान के एक विद्यार्थी मेद्वेदेव ने आत्महत्या के पहले लिखा था. मेरा खयाल है कि 1888 में, कज़ान में कुल मिलाकर ग्यारह विद्यार्थियों ने आत्महत्या की, जिनमें दो लड़कियां थीं. बाद में एक स्कूली लड़के ने, जिसका बाप नीज्नी नोवगोरोद का एक धनी मिल मालिक था, अपने को गोली मार ली. और भी कई आत्महत्याएं हुईं.

वास्तव में मैं व्यापारी वर्ग के अनेक युवकों से मिला और मुझे विदेशी भाषाओं के उनके ज्ञान तथा यूरोपीय साहित्य को मूल भाषा में पढ़ने की उनकी क्षमता से ईर्ष्या हुई. इसके सिवा उनमें और कुछ नहीं था. वे मंजी हुई, मगर अस्पष्ट भाषा में बोलते. शब्द तो समझदारी के होते, मगर सतह के नीचे रूई और बुरादे के सिवा कुछ नहीं होता था. रूकावीश्निकोव की तरह ये लोग भी शराब पीकर ही जीवन को सही रोशनी में देख पाते थे, वो पो. बोदलेर और दोस्तोयेव्स्की की कृतियों के 'भयानक स्थलों' की चर्चा करते परंतु यह सोचते कि वे स्वयं अपने भीतर की भयानकता की चर्चा कर रहे हैं

जब कोई नवयुवक साधारण कविता या घटिया कहानियों की एक पतली-सी पुस्तक लिखता और अपनी इस 'उपज' को 'सृजन' का नाम देता है, तो यह एक ऐसे देश में बचकाना और हास्यास्पद लगता है जहां मजदूर वर्ग न केवल विशाल कारखानों का निर्माण कर रहा है, बल्कि धरती के रूप-रंग को बिल्कुल बदल रहा है, देहात में भूतत्वीय उथल-पुथल जैसे महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रहा है, और साधारणतः अथक रूप से विश्वव्यापी महत्व का विशाल कार्य पूरा कर रहा है और वह भी ऐसी स्थिति में जो उसकी सारी शक्ति निचोड़ लेती है.

रही मेरी बात, तो मैंने कभी अपने को 'केवल लेखक' अनुभव नहीं किया. किसी न किसी रूप में मैं जीवन भर सार्वजनिक सरगर्मियों में भाग लेता रहा हूं और आज भी इस प्रकार की बातों के लिए मेरा उत्साह कम नहीं हुआ. नवयुवक लेखक अक्सर शिकायत करते हैं कि 'छोटे-छोटे सार्वजनिक कामों में बहुत समय लग जाता है और सृजनात्मक चिंतन में बाधा पड़ती है' इत्यादि. मैं ऐसी शिकायतों को निराधार मानता हूं. छोटे से छोटा सार्वजनिक काम भी निरर्थक नहीं हो सकता. अगर आप आंगन में झाड़ू देंगे तो हानिप्रद धूल से बच्चों के फेफड़ों को बचायेंगे.

एक रूसी कहावत है कि 'सिपाही की ताकत है बंदूक और बनिये की रूबल' और ये 'सामान्य' लोग दसियों और सैकड़ों मन रूबल की थैलियां अपने गले में लटकाये फिरते हैं लेकिन एक सूती कपड़े के मिल मालिक बकाल्दिन ने, जो अत्यंत 'सामान्य' व्यक्ति था, साठ वर्ष का होने पर चेर्निशेव्स्की पढ़ना शुरू किया. पढ़ते-पढ़ते जब कोई बात उसकी समझ में आयी तो वह हैरान होकर बोल उठा:

''मेरे जैसे सम्मानित व्यक्ति को मूर्ख बना कर रख दिया. जरा सोचिये तो, चालीस साल तक रुपया बनाने और कितनों को तबाह करने और दुश्मन बनाने के बाद मुझे आज ही यह मालूम हुआ कि सारी बुराई की जड़ रुपया है.''

केवल धनी और शक्तिशाली लोगों से ही मुझे इस तरह की बातें सुनने को नहीं मिलती थीं. नगर के पददलित लोग—कारीगर, फैक्टरी मजदूर और नौकर-चाकर भी अक्सर इस प्रकार की बातें किया करते थे. ये लोग मालिक के अधिकार को न्यायोचित मानते थे, उन पर चर्च का प्रभाव था और धर्म की शिक्षा यह थी कि 'धनी लोग भगवान के सम्मुख उत्तरदायी हैं' और 'महिमा और सम्मान धनी लोगों के लिए है' इत्यादि.

नीत्शे के सामाजिक दर्शन का आधारभूत विचार बहुत सीधा-सादा है: ''जीवन का असल उद्देश्य ऊंची किस्म के लोगों-अतिमानवों का निर्माण करना है जिसके साथ दासता भी अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है. प्राचीन यूनानी जगत विकास के अभूतपूर्व स्तर पर इसीलिए जा पहुंचा कि वह दास प्रथा पर आधारित था, परंतु इसके बाद से ईसाई जनवाद के प्रभाव के अंतर्गत मानवजाति का सांस्कृतिक विकास पतनोन्मुख रहा है. यह मानना होगा कि लोग हमेशा बंटे रहे हैं: एक ओर ऐसे अल्पसंख्यक शक्तिशाली लोग हैं—जो मनमानी कर सकते हैं और दूसरी ओर बहुसंख्यक कमजोर हैं—जो इसीलिए होते हैं कि चुपचाप पहलेवालों की आज्ञा का पालन करें.''

यह दर्शन, जिसका स्रष्टा अंत में पागल हो गया, वास्तव में 'मालिकों' का और उनके लिए था. परंतु इसमें कोई मौलिकता नहीं थी. इसकी बुनियाद अफलातून ने ही डाल दी थी. सामान्यतः यह बहुत प्राचीन दर्शन है जिसका उद्देश्य 'मालिकों' के शासन को उचित सिद्ध करना है और वे उसे कभी नहीं भूलते. यह बिल्कुल संभव है कि नीत्शे में इसका अंकुर जर्मनी में सामाजिक जनवाद के विकास के कारण फूटा हो, हमारे काल में यह फासिस्टों का प्रिय आध्यात्मिक आहार है.

हमारे आलोचकों की शिकायत है कि हमारा साहित्य हमारे काल के नायकों को 'संपूर्ण' तथा जीते-जागते व्यक्तियों के रूप में नहीं, बल्कि रुखे-सूखे और काठ के आदमी बनाकर पेश करता है. कुछ आलोचक तो यहां तक कह जाते हैं कि 'यथार्थवाद' नायक का सजीव और संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में असमर्थ है. आलोचक के पेशे की विशेषता ही उसे कमोबेश संशयवादी बना देती है. इससे मैं यह सोचने को मजबूर होता हूं कि क्या हमारे आलोचक 'मालिकों की नैतिकता' से मुक्त हैं या नहीं, और कहीं उन्हें स्वयं अपने गुणों का अभियान तो नहीं है?

श्रम संसार क्रांति की आवश्यकता की चेतना तक पहुंच गया है. साहित्य का कर्तव्य उसकी सहायता करना है जिसने विद्रोह का झंडा उठाया है. जितनी मुस्तैदी से यह सहायता दी जायेगी उतनी ही जल्दी 'डगमगाती व्यवस्था' का सदा के लिए पतन हो जायेगा.

जीवन की करवट के बारे में मेरे 'विचारों' का निरूपण धीरे-धीरे और कठिनाई के साथ हुआ. इसका कारण शायद मेरी खानाबदोश जिंदगी, मुझ पर पड़े प्रभावों की प्रचुरता, नियमित शिक्षा का अभाव और स्वशिक्षा के लिए समय की कमी रहा हो. 'आर्थिक प्रगति' में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी बल्कि वह सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति की मेरी धारणा के विरुद्ध थी.

यह समझना कठिन था कि लेखकगण बुद्धिजीवियों को ढुलमुल या संकल्पहीन लोगों के रूप में क्यों पेश करते थे, यद्यपि सैकड़ों बुद्धिजीवी 'जनता में जाते थे' और उनमें से बहुतेरे अंत में कारावास या निर्वासन में भेज दिये गये. क्या कारण था कि साहित्य ऐसे लोगों को 'प्रतिबिंबित' करने में असमर्थ था जिन पर '193 का मुकद्दमा' चलाया गया था, जो फैक्टरियों में प्रचार किया करते और 'नरोदनाया वोल्या' आंदोलन में काम करते थे? ऐसे लोगों को ढुलमुल या संकल्पहीन नहीं कहा जा सकता था. प्रभाव यह पड़ता था कि साहित्य जीवन के साथ अन्याय कर रहा है, उसे बेरंग बनाकर पेश कर रहा है.

सातवें और आठवें दशक के पूरे साहित्य को मैंने एक बार फिर बहुत ध्यान से पढ़ा. मेरी दृष्टि में वह दो श्रेणियों में बंटा हुआ था. प्रथम श्रेणी में थे कटु और उजड्ड 'प्रकृतिवादी' निकोलाई उस्पेंस्की, उदासी में डूबे रेशेत्निकोव जिनके उपन्यासों से मुझे चिढ़ होती थी.

दूसरे दल में ये लोग थे: ज्लातोव्रात्स्की, जिनको ओर्लोव, जो नेचायेव के भक्तों में से थे, 'मधुर धोखेबाज' कहा करते थे, प्रारंभ के करोनिन-पेत्रोपाब्लोव्स्की, ऊब भरे जसोदीम्स्की, बाजिन, मिखाईल, मिखाइलोव, मामिन सिबिर्याक और ग. दानिलेव्स्की भी जिन्होंने कई घटिया उपन्यास लिखे थे, और अन्य लेखकों का क्या कहना जिनके नाम मेरे अलावा और बहुत से लोग भी भूल गये हैं.

साहित्य चर्च के हानिकारक तथा रूढ़िवादी प्रभाव को सक्रिय तथा आलोचनात्मक ढंग से प्रतिबिंबित करने में केवल असमर्थ ही नहीं था बल्कि वह ऐसा चाहता भी नहीं था.

आज जो लोग लिखने के काम में लगे हुए हैं, वे यह शिकायत नहीं कर सकते कि परायों के लिए लिख रहे हैं. वे कह सकते हैं कि 'हमारी दिलचस्पियां जनसाधारण के लिए परायी हैं.' बशर्ते कि ये लेखक जनता के क्रांतिकारी उद्देश्यों और कार्यों को नहीं समझते और वे उन्हें अपने दिल नहीं दे बैठे हैं. मजदूर वर्ग के वीरतापूर्ण श्रम द्वारा वास्तविकता में परिणत होकर इन लक्ष्यों और उद्देश्यों ने जीवन को आंदोलित तथा अनवरत सृजनात्मकता का चरित्र प्रदान किया है और अनगिनत संख्या में नये तथ्यों और नये विषयों को जन्म दिया है.

हम ऐसे युग में रह रहे हैं जब सर्वहारा सामंजस्यपूर्ण चिंतन की वास्तविक निर्णायक तथा पूर्ण स्वतंत्रतावाला व्यक्तित्व बनता जा रहा है. केवल सर्वहारा ही 'संसार की उक्त शक्तियों' को जीतने की क्षमता रखता है और वही विजय-प्राप्ति के बाद सामंजस्य पूर्ण व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिये सभी आवश्यक स्थितियां पैदा करेगा. □

एक पाठक

यदि रचनाकार का स्तर भी वही है, जो आम लोगों का है.....और वह ऐसी आदर्श रचना नहीं दे सकता जो जीवन में मौजूद न होते हुए भी उसे सुधारने के लिए जरूरी है......तब फिर रचना करना क्या बेमानी नहीं हो जाता! लेखन की सामाजिक सार्थकता के प्रश्न को गहराई से रेखांकित करती यह कहानी गोर्की के कथा-लेखन की एक नायाब मिसाल है—

रात काफी हो गयी थी जब मैं उस घर से विदा हुआ जहां मित्रों की एक गोष्ठी में अपनी प्रकाशित कहानियों में से एक का मैंने अभी पाठ किया था. उन्होंने तारीफ के पुल बांधने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी और मैं धीरे-धीरे मगन भाव से सड़क पर चल रहा था. मेरा हृदय आनंद से छलक रहा था और जीवन के एक ऐसे सुख का अनुभव मैं कर रहा था जैसा पहले कभी नहीं किया था.

फरवरी का महीना था, रात साफ थी और खूब तारों से जड़ा मेघरहित आकाश धरती पर स्फूर्तिदायक शीतलता का संचार कर रहा था, जो नयी गिरी बर्फ से सोलहों सिंगार किये हुए थी.

'इस धरती पर लोगों की नजरों में कुछ होना अच्छा लगता है!' मैंने सोचा और मेरे भविष्य के चित्र में उजले रंग भरने में मेरी कल्पना ने कोई कोताही नहीं की.

''हां, तुमने एक बहुत ही प्यारी-सी चीज लिखी है, इसमें कोई शक नहीं.'' मेरे पीछे सहसा कोई गुनगुना उठा.

मैं अचरज से चौंका और घूमकर देखने लगा.

काले कपड़े पहने एक छोटे कद का आदमी आगे बढ़कर निकट आ गया और पैनी लघु मुस्कान के साथ मेरे चेहरे पर उसने अपनी आंखें जमा दीं. उसकी हर चीज पैनी मालूम होती थी—उसकी नजर, उसके गालों की हड्डियां, उसकी दाढ़ी जो बकरे की दाढ़ी की तरह नोकदार थी, उसका समूचा छोटा और मुरझाया-सा ढांचा, जो कुछ इतना विचित्र नोक-नुकीलापन लिये था कि आंखों में चुभता था. उसकी चाल हल्की और निःशब्द थी. ऐसा मालूम होता था जैसे वह बर्फ पर फिसल रहा हो. गोष्ठी में

जो लोग मौजूद थे, उनमें वह मुझे नजर नहीं आया था और इसीलिए उसकी टिप्पणी ने मुझे चकित कर दिया था. वह कौन था? और कहां से आया था?

"क्या आपने...मतलब...मेरी कहानी सुनी थी?" मैंने पूछा.

"हां, मुझे उसे सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ."

उसकी आवाज तेज थी. उसके पतले होंठ और छोटी काली मूंछें थीं जो उसकी मुस्कान को नहीं छिपा पाती थीं. मुस्कान उसके होंठों से विदा होने का नाम ही नहीं लेती थी और यह मुझे बड़ा अटपटा मालूम हो रहा था.

"अपने आपको अन्य सबसे अनोखा अनुभव करना बड़ा सुखद मालूम होता है. क्यों, ठीक है न?" मेरे साथी ने पूछा.

मुझे इस प्रश्न में ऐसी कोई बात नहीं लगी जो असाधारण हो. सो मुझे सहमति प्रकट करने में देर नहीं लगी.

"हो-हो-हो!" पतली उंगलियों से अपने छोटे हाथों को मलते हुए वह तीखी हंसी हंसा. उसकी हंसी मुझे अपमानित करने वाली थी.

"तुम बड़े हंसमुख जीव मालूम होते हो." मैंने रूखी आवाज में कहा.

"अरे हां, बहुत!" मुस्कराते और सिर हिलाते हुए उसने ताईद की, "साथ ही मैं बाल की खाल निकालने वाला भी हूं, क्योंकि मैं हमेशा चीजों को जानना चाहता हूं—हर चीज को जानना चाहता हूं."

वह फिर अपनी तीखी हंसी हंसा और वेध देने वाली अपनी काली आंखों से मेरी ओर देखता रहा. मैंने अपने कद की ऊंचाई से एक नजर उस पर डाली और ठंडी आवाज में पूछा, "माफ करना, लेकिन क्या मैं जान सकता हूं कि मुझे किससे बातें करने का सौभाग्य..."

"मैं कौन हूं? क्या तुम अनुमान नहीं लगा सकते? जो हो, मैं फिलहाल तुम्हें नहीं बताऊंगा. क्या तुम्हें आदमी का नाम उस बात से ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम होता है जो कि वह कहने जा रहा है?"

"निश्चय ही नहीं, लेकिन यह कुछ....बहुत ही अजीब है." मैंने जवाब दिया.

उसने मेरी आस्तीन पकड़ कर उसे एक हल्का-सा झटका दिया और शांत हंसी के साथ कहा, "होने दो अजीब. आदमी कभी तो जीवन की साधारण और घिसी-पिटी सीमाओं को लांघना चाहता ही है. अगर एतराज न हो तो आओ, जरा खुलकर बातें करें. समझ लो कि मैं तुम्हारा एक पाठक हूं—एक विचित्र प्रकार का पाठक, जो यह जानना चाहता है कि कोई पुस्तक—मिसाल के लिए तुम्हारी अपनी लिखी हुई पुस्तक—कैसे और किस उद्देश्य के लिए लिखी गयी है. बोलो, इस तरह की बातचीत पसंद करोगे?"

"ओह, जरूर!" मैंने कहा, "मुझे खुशी होगी. ऐसे आदमी से बात करने का अवसर रोज-रोज नहीं मिलता." लेकिन मैंने यह झूठ कहा था, क्योंकि मुझे यह सब बेहद नागवार मालूम हो रहा था. फिर भी मैं उसके साथ चलता रहा—धीमे कदमों से, शिष्टाचार की ऐसी मुद्रा बनाये, मानो मैं उसकी बात ध्यान से सुन रहा हूं.

मेरा साथी क्षण भर के लिए चुप हो गया और फिर बड़े विश्वासपूर्ण स्वर में उसने कहा, "मानवीय व्यवहार में निहित उद्देश्यों और इरादों से ज्यादा विचित्र और महत्वपूर्ण चीज इस दुनिया में और कोई नहीं है. तुम यह मानते हो न?"

मैंने सिर हिलाकर हामी भरी.

"ठीक. तब आओ, जरा खुल कर बातें करें. सुनो, तुम जब तक जवान हो तब तक खुलकर बात करने का एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए."

'अजीब आदमी है!' मैंने सोचा, लेकिन उसके शब्दों ने मुझे उलझा लिया था.

"सो तो ठीक है," मैंने मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन हम बातें किस चीज के बारे में करेंगे?"

पुराने परिचित की भांति उसने घनिष्ठता से मेरी आंखों में देखा और कहा, "साहित्य के उद्देश्यों के बारे में. क्यों, ठीक है न?"

"हां, मगर...देर काफी हो गयी है..."

"ओह, तुम अभी नौजवान हो, तुम्हारे लिए अभी देर नहीं हुई."

मैं ठिठक गया, उसके शब्दों ने मुझे स्तब्ध कर दिया था. किसी और ही अर्थ में उसने इन शब्दों का उच्चारण किया था और इतनी गंभीरता से किया था कि वे भविष्य का उद्घोष मालूम होते थे. मैं ठिठक गया था, लेकिन उसने मेरी बांह पकड़ी और चुपचाप किंतु दृढ़ता के साथ आगे बढ़ चला.

"रुको नहीं. मेरे साथ तुम सही रास्ते पर हो." उसने कहा, "बात शुरू करो. तुम मुझे यह बताओ कि साहित्य का उद्देश्य क्या है?"

मेरा अचरज बढ़ता जा रहा था और आत्मसंतुलन घटता जा रहा था. आखिर यह आदमी मुझसे चाहता क्या है? और यह है कौन? निस्संदेह वह एक दिलचस्प आदमी था, लेकिन मैं उससे खीज उठा था. उससे पिंड छुड़ाने की एक और कोशिश करते हुए मैं जरा तेजी से आगे की ओर लपका. लेकिन वह भी पीछे न रहा. साथ चलते हुए शांत भाव से बोला, "मैं तुम्हारी दिक्कत समझ सकता हूं. एकाएक साहित्य के उद्देश्य की व्याख्या करना तुम्हारे लिए कठिन है. कहो तो मैं कोशिश करूं?"

उसने मुस्कराते हुए मेरी ओर देखा, लेकिन मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कहने लगा, "शायद बात से तुम सहमत होगे अगर मैं कहूं कि साहित्य का उद्देश्य है—खुद अपने को जानने में इंसान की मदद करना, उसके आत्मविश्वास को दृढ़ बनाना और उसके सत्यान्वेषण को सहारा देना, लोगों की अच्छाइयों का उद्घाटन करना और बुराइयों का उन्मूलन करना, लोगों के हृदय में हयादारी, गुस्सा और साहस पैदा करना, ऊंचे उद्देश्यों के लिए शक्ति जुटाने में उनकी मदद करना और सौंदर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ बनाना. क्यों, इतना तो मानते हो?"

"हां." मैंने कहा, "कमोबेश यह सही है. यह तो सभी मानते हैं कि साहित्य का उद्देश्य लोगों को और अच्छा बनाना है."

"तब देखो न, लेखक के रूप में तुम कितने ऊंचे उद्देश्य के लिए काम करते हो!" मेरे साथी ने गंभीरता के साथ अपनी बात पर जोर देते हुए कहा और फिर अपनी वही तीखी हंसी हंसने लगा, "हो-हो-हो!"

यह मुझे बड़ा अपमानजनक लगा. मैं दुख और खीज से चीख उठा, "आखिर तुम मुझसे क्या चाहते हो?"

"आओ, थोड़ी देर बाग में चल कर बैठते हैं." उसने फिर एक हल्की हंसी हंसते हुए और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे खींचते हुए कहा.

उस समय हम नगर-बाग की एक वीथिका में थे. चारों ओर बबूल और लिलक की नंगी टहनियां दिखायी दे रही थीं, जिन पर बर्फ की परत चढ़ी हुई थी. वे चांद की रोशनी में चमचमाती मेरे सिर के ऊपर भी छायी हुई थीं और ऐसा मालूम होता था जैसे बर्फ का कवच पहने ये सख्त टहनियां मेरे सीने को बेध कर सीधे मेरे हृदय तक पहुंच गयी हों.

मैंने बिना एक शब्द कहे अपने साथी की ओर देखा. उसके व्यवहार ने मुझे चक्कर में डाल दिया था. 'इसके दिमाग का कोई पुर्जा ढीला मालूम होता है.' मैंने सोचा और उसके व्यवहार की इस व्याख्या से अपने मन को संतोष देने की कोशिश की.

"शायद तुम्हारा खयाल है कि मेरा दिमाग कुछ चल गया है." उसने जैसे मेरे भावों को ताड़ते हुए कहा, "लेकिन ऐसे खयाल को अपने दिमाग से निकाल दो, यह तुम्हारे लिए नुकसानदेह और अशोभन है... बजाय इसके कि हम उस आदमी को समझने की कोशिश करें, जो हमसे भिन्न है, इस बहाने की ओट लेकर हम उसे समझने के झंझट से छुट्टी पा जाना चाहते हैं. मनुष्य के प्रति मनुष्य की दुखद उदासीनता का यह एक बहुत ही पुष्ट प्रमाण है."

"ओह ठीक है," मैंने कहा. मेरी खीज बराबर बढ़ती ही जा रही थी, "लेकिन माफ करना, मैं अब चलूंगा. काफी समय हो गया."

"जाओ." अपने कंधों को बिचकाते हुए उसने कहा, "जाओ, लेकिन यह जान लो कि तुम खुद अपने से भाग रहे हो." उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और मैं वहां से चल दिया.

वह बाग में ही टीले पर रुक गया. वहां से वोल्गा नजर आती थी जो अब बर्फ की चादर ताने थी और ऐसा मालूम होता था जैसे बर्फ की उस चादर पर सड़कों के काले फीते टंके हों. सामने दूर तट के निस्तब्ध और उदासी में डूबे

विस्तृत मैदान फैले थे. वह वहीं पड़ी हुई एक बेंच पर बैठ गया और सूने मैदानों की ओर ताकता हुआ सीटी की आवाज में एक परिचित गीत की धुन गुनगुनाने लगा.

वो क्या दिखायेंगे राह हमको
जिन्हें खुद अपनी खबर नहीं

मैंने घूमकर उसकी ओर देखा. अपनी कुहनी को घुटने पर और ठोड़ी को हथेली पर टिकाये, मुंह से सीटी बजाता, वह मेरी ही ओर नजर जमाये हुए था और चांदनी से चमकते उसके चेहरे पर उसकी नन्हीं काली मूंछें फड़क रही थीं. यह समझकर कि यही विधि का विधान है, मैंने उसके पास लौटने का निश्चय कर लिया. तेज कदमों से मैं वहां पहुंचा और उसके बराबर में बैठ गया.

''देखो, अगर हमें बात करनी है तो सीधे-सादे ढंग से करनी चाहिए.'' मैंने आवेशपूर्वक लेकिन स्वयं को संयत रखते हुए कहा.

''लोगों को हमेशा ही सीधे-सादे ढंग से बात करनी चाहिए.'' उसने सिर हिलाते हुए स्वीकार किया, ''लेकिन यह तुम्हें भी मानना पड़ेगा कि अपने उस ढंग से काम लिये बिना मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित नहीं कर सकता था. आजकल सीधी-सादी और साफ बातों को नीरस और रूखी कहकर नजरअंदाज कर दिया जाता है, लेकिन असल बात यह है कि हम खुद ठंडे और कठोर हो गये हैं और इसीलिए हम किसी भी चीज में जोश या कोमलता लाने में असमर्थ रहते हैं. हम तुच्छ कल्पनाओं और दिवास्वप्नों में रमना तथा अपने आपको कुछ विचित्र और अनोखा जताना चाहते हैं, क्योंकि जिस जीवन की हमने रचना की है, वह नीरस, बेरंग और उबाऊ है. जिस जीवन को हम कभी इतनी लगन और आवेश के साथ बदलने चले थे, उसने हमें कुचल और तोड़ डाला है.'' एक पल चुप रह कर उसने पूछा, ''क्यों, मैं ठीक कहता हूं न?''

''हां,'' मैंने कहा, ''तुम्हारा कहना ठीक है.''

''तुम बड़ी जल्दी घुटने टेक देते हो!'' तीखी हंसी हंसते हुए मेरे प्रतिवादी ने मेरा मखौल उड़ाया. मैं पस्त हो गया. उसने अपनी पैनी नजर मुझ पर जमा दी और मुस्कराता हुआ बोला, ''तुम लेखक हो, और तुम जो लिखते हो उसे हजारों लोग पढ़ते हैं. तुम किस चीज का प्रचार करते हो? और क्या तुमने कभी अपने से यह पूछा है कि दूसरों को सीख देने का तुम्हें क्या अधिकार है?''

जीवन में पहली बार मैंने अपनी आत्मा को टटोला, उसे जांचा-परखा. हां, तो मैं किस चीज का प्रचार करता हूं? लोगों से कहने के लिए मेरे पास क्या है? क्या वे ही सब चीजें, जिन्हें हमेशा कहा-सुना जाता है, लेकिन जो आदमी को बदल कर बेहतर नहीं बनातीं? और उन विचारों तथा नीतिवचनों का प्रचार करने का मुझे क्या हक है, जिनमें न तो मैं यकीन करता हूं और न जिन्हें मैं अमल में लाता हूं? जब मैंने खुद उनके खिलाफ आचरण किया, तब क्या यह सिद्ध नहीं होता कि उनकी सच्चाई में मेरा विश्वास नहीं है? इस आदमी को मैं क्या जवाब दूं जो मेरी बगल में बैठा है?

लेकिन उसने, मेरे जवाब की प्रतीक्षा से ऊब कर, फिर बोलना शुरू कर दिया, ''एक समय था जब यह धरती लेखन-कला-विशारदों, जीवन और मानव-हृदय के अध्येताओं और ऐसे लोगों से आबाद थी जो दुनिया को अच्छा बनाने की सर्वप्रबल आकांक्षा एवं मानव-प्रकृति में गहरे विश्वास से अनुप्राणित थे. उन्होंने ऐसी पुस्तकें लिखीं जो कभी विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं होंगी. कारण, वे अमर सच्चाइयों को अंकित करती हैं और उनके पन्नों से कभी मलिन न होने वाला सौंदर्य प्रस्फुटित होता है. उनमें चित्रित पात्र जीवन के सच्चे पात्र हैं, क्योंकि प्रेरणा ने उनमें जान फूंकी है. उन पुस्तकों में साहस है, दहकता हुआ गुस्सा और उन्मुक्त सच्चा प्रेम है, और उनमें एक भी शब्द भरती का नहीं है.

''तुमने, मैं जानता हूं, ऐसी ही पुस्तकों से अपनी आत्मा के लिए पोषण ग्रहण किया है. फिर भी तुम्हारी आत्मा उसे पचा नहीं सकी. सत्य और प्रेम के बारे में तुम जो लिखते हो, वह झूठा और अनुभूतिशून्य प्रतीत होता है. लगता है, जैसे शब्द जबरदस्ती मुंह से निकाले जा रहे हों. चंद्रमा की तरह तुम दूसरे की रोशनी से चमकते हो, और यह रोशनी भी बुरी तरह मलिन है—वह परछाइयां खूब डालती है, लेकिन आलोक कम देती है और गरमी तो उसमें जरा भी नहीं है.

''असल में तुम खुद गरीब हो, इतने गरीब कि दूसरों को ऐसी कोई चीज नहीं दे सकते जो वस्तुतः मूल्यवान हो. और जब देते भी हो तो सर्वोच्च संतोष की इस सजग अनुभूति के साथ नहीं कि तुमने सुंदर विचारों और शब्दों की निधि में वृद्धि करके जीवन को संपन्न बनाया है. तुम केवल इसलिए देते हो कि जीवन से और लोगों से अधिकाधिक ले सको. तुम इतने दरिद्र हो कि उपहार नहीं दे सकते. या तुम सूदखोर हो और अनुभव के टुकड़ों का लेन-देन करते हो, ताकि तुम ख्याति के रूप में सूद बटोर सको.

''तुम्हारी लेखनी चीजों की सतह को ही खरोंचती है. जीवन की तुच्छ परिस्थितियों को ही तुम निरर्थक ढंग से कोंचते-कुरेदते रहते हो. तुम साधारण लोगों के साधारण भावों का वर्णन करते रहते हो. हो सकता है, इससे तुम उन्हें अनेक साधारण—महत्वहीन—सच्चाइयां सिखाते हो, लेकिन क्या तुम कोई ऐसी रचना भी कर सकते हो जो मनुष्य की आत्मा को ऊंचा उठाने की क्षमता रखती हो? नहीं! तो क्या तुम सचमुच इसे इतना महत्वपूर्ण समझते हो कि हर जगह पड़े हुए कूड़े के ढेरों को कुरेदा जाये और यह सिद्ध किया जाये कि मनुष्य बुरा है, मूर्ख है, आत्मसम्मान की भावना से बेखबर है, परिस्थितियों का गुलाम है, पूर्णतया और हमेशा के लिए कमजोर, दयनीय और अकेला है?

''अगर तुम मुझसे पूछो तो मनुष्य के बारे में ऐसा घृणित प्रचार मानवता के शत्रु करते हैं—और दुख की बात यह है कि वे मनुष्य के हृदय में यह विश्वास जमाने में सफल भी हो चुके हैं. तुम ही देखो, मानव-मस्तिष्क आज कितना ठस हो गया है और उसकी आत्मा के तार कितने बेआवाज हो गये हैं. यह

■ गोर्की के संस्मरण

उस आत्मा को नमन

ईस्ट में कहीं मेरे गांव के तथा सोरोमोवो के मजदूर मितिया पावलोफ का हाल ही में टाइफाइड से निधन हो गया.

1905 में मास्को के झगड़े में वह पीटर्सबर्ग से एक बड़ा बाक्स भरकर नाइट्रोग्लिसरीन की छड़ें और एक बिकफोर्ड फ्यूज का पंद्रह मीटर लंबा तार (जिसे उसने अपनी छाती से बांध रखा था) ले आया. तार उसके सांस लेने से कस गया था. खैर मेरे कमरे में घुसते ही मितिया फर्श पर लुढ़क गया. उसका चेहरा नीला पड़ गया और आंखें फटी थीं, जैसे कि वह दम घुटने के कारण मरनेवाला है.

''तुम निरे पागल हो मितिया. क्या तुम्हें महसूस नहीं हो रहा है कि तुम रास्ते में गिर सकते थे. तुम्हें अनुमान है कि तब तुम्हारा क्या होता?''

सांस खींचते हुए अपराधी भाव से वह बोला, ''हां, तब हम यह फ्यूज और नाइट्रोग्लिसिरीन गंवा बैठते.''

एम.एम. तिखानिस्की ने भी तेजी से उसके दिल को मलते हुए खूब डांटा. जबकि मितिया ने अधमुंदी आंखों से पूछा, ''इसमें कितने बम बन जायेंगे. क्या हम हार जायेंगे-प्रिसनिया (मास्को का कस्बा) अभी भी हमारे कब्जे में है?''

थोड़ी देर बाद सोफे पर लेटे-लेटे उसने तिखानिस्की को देखा. वह विस्फोटक पदार्थ का निरीक्षण कर रहे थे. उसने धीरे से मुझसे पूछा, ''क्या वह बम बनाता है. प्रोफेसर है. पहले वह मजदूर था. तुम बताओ न!''

फिर अचानक चिंतित होता हुआ बोला, ''कहीं वह तुम्हें तो नहीं उड़ा देगा.''

न अपने बारे में न अपने खतरे के बारे में जिससे वह अभी-अभी बचा था, उसने एक शब्द भी नहीं पूछा.

प्रस्तुति : क्षमा

कोई अचरज की बात नहीं है. वह अपने आपको उसी रूप में देखता है जैसा कि वह पुस्तकों में दिखाया जाता है...

"और पुस्तकें—खास तौर से प्रतिभा का भ्रम पैदा करने वाली वाक्-चपलता से लिखी गयी पुस्तकें-पाठकों को हतबुद्धि करके एक हद तक उन्हें अपने वश में कर लेती हैं. अगर उनमें मनुष्य को कमजोर, दयनीय, अकेला दिखाया गया है तो पाठक उनमें अपने को देखते समय अपना भोंडापन तो देखता है, लेकिन उसे यह नजर नहीं आता कि उसके सुधार की भी कोई संभावना हो सकती है. क्या तुममें इस संभावना को उभारकर रखने की क्षमता है? लेकिन यह तुम कैसे कर सकते हो, जबकि तुम खुद ही...जाने दो, मैं तुम्हारी भावनाओं को चोट नहीं पहुंचाऊंगा, क्योंकि मेरी बात काटने या अपने को सही ठहराने की कोशिश किये बिना तुम मेरी बात सुन रहे हो.

"तुम अपने आपको मसीहा के रूप में देखते हो. समझते हो कि बुराइयों को खोल कर रखने के लिए खुद ईश्वर ने तुम्हें इस दुनिया में भेजा है, ताकि अच्छाइयों की विजय हो. लेकिन बुराइयों को अच्छाइयों से छांटते समय क्या तुमने यह नहीं देखा कि ये दोनों एक-दूसरे से गुंथी हुई हैं और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता? मुझे तो इसमें भी भारी संदेह है कि खुदा ने तुम्हें अपना मसीहा बना कर भेजा है. अगर वह भेजता तो तुमसे ज्यादा मजबूत इंसानों को इस काम के लिए चुनता. उनके हृदयों में जीवन, सत्य और लोगों के प्रति गहरे प्रेम की जोत जगाता ताकि वे अंधकार में उसके गौरव और शक्ति का उद्घोष करने वाली मशालों की भांति आलोक फैलायें.तुम लोग तो शैतान की मोहर दागने वाली छड़ की तरह धुआं देते हो, और यह धुआं लोगों को आत्मविश्वासहीनता के भावों से भर देता है.

"इसलिए तुमने और तुम्हारी जाति के अन्य लोगों ने जो कुछ भी लिखा है, उस सबका एक सचेत पाठक, मैं तुमसे पूछता हूं—तुम क्यों लिखते हो? तुम्हारी कृतियां कुछ नहीं सिखातीं और पाठक सिवा तुम्हारे किसी चीज पर लज्जा अनुभव नहीं करता. उनकी हर चीज आम-साधारण है, आम-साधारण लोग, आम-साधारण विचार, आम-साधारण घटनाएं! आत्मा के विद्रोह और आत्मा के पुनर्जागरण के बारे में तुम लोग कब बोलना शुरू करोगे? तुम्हारे लेखन में रचनात्मक जीवन की वह ललकार कहां है, वीरत्व के दृष्टांत और प्रोत्साहन के वे शब्द कहां हैं, जिन्हें सुनकर आत्मा आकाश की ऊंचाइयों को छूती है?

"शायद तुम कहो—'जो कुछ हम पेश करते हैं, उसके सिवा जीवन में अन्य नमूने मिलते कहां है?' न, ऐसी बात मुंह से न निकालना. यह लज्जा और अपमान की बात है कि वह, जिसे भगवान ने लिखने की शक्ति प्रदान की है, जीवन के सम्मुख अपनी पंगुता और उससे ऊपर उठने में अपनी असमर्थता को स्वीकार करे. अगर तुम्हारा स्तर भी वही है, जो आम जीवन का, अगर तुम्हारी कल्पना ऐसे नमूनों की रचना नहीं कर सकती जो जीवन में मौजूद न रहते हुए भी उसे सुधारने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं, तब तुम्हारा कृतित्व किस मर्ज की दवा है? तब तुम्हारे धंधे की क्या सार्थकता रह जाती है?

"लोगों के दिमागों को उनके घटनाविहीन जीवन के फोटोग्राफिक चित्रों का गोदाम बनाते समय अपने हृदय पर हाथ रख कर पूछो कि ऐसा करके क्या तुम नुकसान नहीं पहुंचा रहे हो? कारण—और तुम्हें अब यह तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिए—कि तुम जीवन का ऐसा चित्र पेश करने का ढंग नहीं जानते जो लज्जा की एक प्रतिशोधपूर्ण चेतना को जन्म दे, जीवन के नये रूपों की रचना करने की प्रज्ज्वलित आकांक्षा को उजागर करे. क्या तुम जीवन के स्पंदन को तीव्र और उसमें स्फूर्ति का संचार करना चाहते हो, जैसा कि अन्य लोग कर चुके हैं?"

मेरा विचित्र साथी रुक गया और मैं, बिना कुछ बोले, उसके शब्दों पर सोचता रहा. थोड़ी देर बाद उसने फिर कहा, "एक बात और. क्या तुम ऐसी आह्लादपूर्ण हास्य-रचना कर सकते हो, जो आत्मा का सारा मैल धो डाले? देखो न, लोग एकदम भूल गये हैं कि ठीक ढंग से कैसे हंसा जाता है! वे कुत्सा से हंसते हैं, वे कमीनेपन से हसते हैं, वे अक्सर अपने आंसुओं को बेध कर

हंसते हैं. वे हृदय के उस समूचे उल्लास से कभी नहीं हंसते जिससे वयस्कों के पेट में बल पड़ जाते हैं, पसलियां बोलने लगती हैं. अच्छी हंसी एक स्वास्थ्यप्रद चीज है. यह अत्यंत आवश्यक है कि लोग हंसें. आखिर हंसने की क्षमता उन गिनी-चुनी चीजों में से एक है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती हैं. क्या तुम निंदा की हंसी के अलावा अन्य किसी प्रकार की हंसी को भी जन्म दे सकते हो? निंदा की हंसी तो बाजारू हंसी है, जो मानव जीवधारियों को केवल हंसी का पात्र बनाती है कि उनकी स्थिति दयनीय है.

"तुम्हें अपने हृदय में मनुष्य की कमजोरियों के लिए महान घृणा का और मनुष्य के लिए महान प्रेम का पोषण करना चाहिए. तभी तुम लोगों को सीख देने के अधिकारी बन सकोगे. अगर तुम घृणा और प्रेम, दोनों में से किसी का अनुभव नहीं कर सकते, तो सिर नीचा रखो और कुछ कहने से पहले सौ बार सोचो."

सुबह की सफेदी अब फूट चली थी. लेकिन मेरे हृदय में अंधेरा गहरा रहा था. यह आदमी, जो मेरे अंतर के सभी भेदों से वाकिफ था, अब भी बोल रहा था.

"सब कुछ के बावजूद जीवन पहले से अधिक प्रशस्त और अधिक गहरा होता जा रहा है, लेकिन यह बहुत धीमी गति से हो रहा है, क्योंकि तुम्हारे पास इस गति को तेज बनाने के लायक न तो शक्ति है, न ज्ञान. जीवन आगे बढ़ रहा है और लोग दिन पर दिन अधिक और अधिक जानना चाहते हैं. उनके सवालों के जवाब कौन दे? यह तुम्हारा काम है. लेकिन क्या तुम जीवन में इतने गहरे पैठे हो कि उसे दूसरों के सामने खोल कर रख सको? क्या तुम जानते हो कि समय की मांग क्या है? क्या तुम्हें भविष्य की जानकारी है और क्या तुम अपने शब्दों से उस आदमी में नयी जान फूंक सकते हो जिसे जीवन की नीचता ने भ्रष्ट और निराश कर दिया है?"

यह कहकर वह चुप हो गया. मैंने उसकी ओर नहीं देखा. याद नहीं, कौन-सा भाव मेरे हृदय में छाया हुआ था—शर्म का अथवा डर का. मैं कुछ बोल भी नहीं सका.

"तुम कुछ जवाब नहीं देते?" उसी ने फिर कहा, "खैर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता. मैं तुम्हारे मन की हालत समझ सकता हूं. अच्छा, तो अब मैं चला."

"इतनी जल्दी?" मैंने धीमी आवाज में कहा. कारण, मैं उससे चाहे जितना भयभीत रहा होऊं, लेकिन उससे भी अधिक मैं अपने आपसे डर रहा था.

"हां, मैं जा रहा हूं. लेकिन मैं फिर आऊंगा.मेरी प्रतीक्षा करना."

और वह चला गया. लेकिन क्या वह सचमुच चला गया? मैंने उसे जाते हुए नहीं देखा. वह इतनी तेजी से और खामोशी से गायब हो गया जैसे छाया. मैं वहीं बाग में बैठा रहा—जाने कितनी देर तक—और न मुझे ठंड का पता था, न इस बात का कि सूरज उग आया है और पेड़ों की बर्फ से ढंकी टहनियों पर चमक रहा है. □

रूपांतर : सुधा उपाध्याय

■ गोर्की के पत्र

हमें बच्चों के दिलों में विश्वास और आदर की स्थापना करनी है

लगभग दस वर्ष हुए, गोर्की के बारे में किसी लेखक ने टिप्पणी की थी कि, (अक्तूबर क्रांति के बाद) वह दूसरे लेखकों को अपने वैभव से आतंकित करते रहते थे. एक जुझारू कम्युनिस्ट और विश्व में सर्वहारा साहित्य के प्रथम परिकल्पक होने के नाते नास्तिकता और अनीश्वरवाद जैसे आरोप तो गोर्की पर लगते रहे हैं, लेकिन यह अपनी तरह का पहला 'अनूठा' आरोप था. गोर्की के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित लोग यह भलीभांति जानते हैं कि 'वैभव से आतंकित करने' जैसा कोई भी मुहावरा गोर्की के व्यक्तित्व पर न तो कभी चस्पां किया जा सका है; न ही भविष्य में कभी किया जा सकेगा. दरअसल मानवताविरोधी मुहिमों में लगे बुद्धिजीवी मानवता के पक्षधरों को जब कोई कारगर क्षति कहीं पहुंचा पाते तो इसी तरह के तर्कों का सहारा लेते हैं. गोर्की के यह तीन पत्र, जो उनके समकालीन प्रतिष्ठित रचनाकारों को संबोधित हैं, गोर्की के सामाजिक सांस्कृतिक सरोकारों के साथ-साथ, बच्चों के प्रति, बच्चों के साहित्य के प्रति उनकी चिंता और बेचैनी को विशेष तौर पर रेखांकित करते हैं. इन पत्रों से गोर्की के व्यक्तित्व की पर्तें तो उजागर होंगी ही; संभव है, शिक्षा और बच्चों के विकास की दिशा में सक्रिय अनौपचारिक प्रयासों का दिशा-निर्देश भी ये पत्र कर सकें.

■ प्रस्तुति : सुरेश सलिल
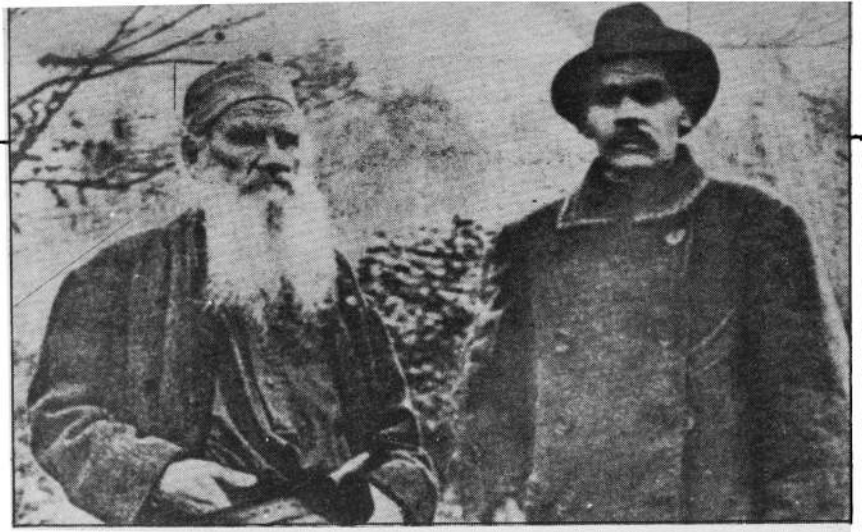
ताल्स्तोय के निवास स्थान 'यास्नाया पोल्याना' में ताल्स्तोय और गोर्की

रोम्यां रोलां के नाम

प्रिय श्रद्धास्पद साथी रोम्यां रोलां,

मैं आपसे बच्चों के लिए बीटोवेन की एक जीवनी लिखने का आग्रह करना चाहता हूं. एच.जी. वेल्स और फ्रिट्ज्योफ़ नान्सन को भी मैं क्रमशः एडीसन और क्रिस्टोफर कोलंबस की जीवनियों के लिए लिख रहा हूं. मैं गैरीबाल्दी की जीवनी लिखूंगा और यहूदी कवि बाइलिक मूसा के जीवन के बारे में लिखेंगे. इसी तरह और आगे भी.

मौजूदा समय के सबसे अच्छे लेखकों की हिस्सेदारी से मैं मानव जाति की महान प्रतिभाओं के जीवन प्रसंगों पर एक बालोपयोगी पुस्तकमाला प्रकाशित करना चाहता हूं. इन सभी पुस्तकों का प्रकाशन मैं करूंगा. मुझे पक्का विश्वास कि ज्यां क्रिस्तोफ और बीटोवेन का लेखक और उदात्त सामाजिक लक्ष्यों की महत्ता को इतनी उत्कृष्टता के साथ समझने वाला व्यक्ति, याने आप, एक ऐसे विषय में जिसे मैं उत्कृष्ट और साथ ही महत्वपूर्ण मानता हूं, अपने अमूल्य योगदान से इनकार नहीं करेंगे. आप पूरी तरह महसूस करेंगे कि आज हमारे मनोयोग की जितनी आवश्यकता बच्चों को है और किसी को नहीं.

हम बड़े लोग, जो जल्दी ही इस दुनिया से कूच कर जाएंगे, अपने पीछे अपने बच्चों के लिए एक दुःखद बपौती छोड़ जाएंगे और वसीयत के तौर पर उन्हें एक बहुत उदास जिंदगी सौंप जाएंगे. यह भयंकर युद्ध हमारे नैतिक अवसाद और सांस्कृतिक पतन का एक अकाट्य सबूत है. आइए, हम बच्चों को याद दिलाएं कि लोग इतने कमजोर और इतने बुरे हरदम नहीं रहे जितने हम इस समय हैं. आइए, हम उन्हें इस बात का अहसास कराएं कि दुनिया भरके लोगों में महान और सहृदय व्यक्ति पहले भी रहे हैं और आज भी है. यह आज और इसी समय करना है जबकि बर्बरता और क्रूरता अपने क्रोधोन्माद में हैं.

प्रिय रोम्यां रोलां, मैं आपसे बीटोवेन की जीवनी का बहुत गंभीरतापूर्वक अनुरोध कर रहा हूं, क्योंकि मुझे पक्का विश्वास है कि इस काम को इतने बेहतर तरीके से दूसरा कोई नहीं कर सकता.

कृपया यह जानकारी भी दीजिए कि बच्चों के लिए जोन आँफ आर्क का इतिवृत्त लिखने हेतु मुझे फ्रांस के किस लेखक से अनुरोध करना चाहिए. ध्यान में रखने की बात यह है कि वह व्यक्ति प्रतिभावान तो हो ही, साथ ही कैथोलिक मान्यताओं से न चिपका हो. मेरा ख्याल है आप मेरा आशय समझ गए होंगे.

प्रिय साथी, युद्ध के दौरान छपे आपके समस्त लेखों को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है और मैं यह बता देना चाहता हूं कि उन्होंने मेरे मन में आपके प्रति गहरे स्नेह और आदर का भाव जाग्रत किया है. आप उन बिरले लोगों में हैं जिनकी आत्मा को इस युद्ध के धब्बों ने मलिन नहीं किया है और यह महान प्रसन्नता की बात है कि आपके उदात्त हृदय में मानवता के श्रेष्ठतम आदर्श अपने अक्षुण्ण रूप में सुरक्षित हैं.

कृपया कंपनी शर्तों और पुस्तक के अनुमानित आकार की जानकारी देते हुए पत्र का उत्तर, जितनी जल्दी संभव हो सके, दें.

प्यारे साथी, इतनी दूरी के बावजूद मेरा साक्षात अभिवादन स्वीकार करें और मेरी निर्व्याज प्रशंसा और असीम आदर भावना भी.

आपके चिरकालिक सार्थक जीवन की कामना के साथ...

मैक्सिम गोर्की

लेव तालस्तोय के नाम

लेव निकोलायेविच,

आपके चित्र और मेरे प्रति आपको कृपापूर्ण व रमणीय शब्दों के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं. (9 फरवरी 1900 को लेव तालस्तोय ने गोर्की को लिखा था : "मुझे आपकी रचनाएं पसंद हैं, लेकिन मैंने आपको आपकी रचनाओं से बेहतर पाया है.") मैं नहीं जानता कि अपनी किताबों की तुलना में, मैं एक बेहतर आदमी हूं या नहीं, लेकिन यह मैं जानता हूं कि किसी भी लेखक को अपने लेखन की बनिस्बत बेहतर होना चाहिए और अधिक ऊंचाई पर खड़ा होना चाहिए. आखिरकार एक किताब है क्या? यहां तक कि एक महान कृति भी सिर्फ सच्चाई की ओर एक संकेत तथा शब्दों का एक घिसा-पिटा व अस्फुट आभास भर ही है, जबकि मनुष्य साक्षात् ईश्वर का एक आधार-पात्र है और मैं ईश्वर को एक अदम्य प्रयास के रूप में पूर्णता, सत्य व न्याय में प्रतिबिंबित पाता हूं, और इसीलिए एक बुरा आदमी भी एक अच्छी किताब से अच्छा होता है. क्या आप ऐसा नहीं सोचते?

मेरा इस बारे में वर्णनातीत विश्वास है कि पृथ्वी पर मनुष्य से बेहतर कोई चीज नहीं है. अपने आशय की पुष्टि के लिए डेमोक्रीटस के कथन को मरोड़ते हुए, मैं तो यहां तक कहता हूं कि वस्तुतः केवल मनुष्य का अस्तित्व है, बाकी सारी चीजें महज धारणाएं हैं. मैं सदैव ही एक मानव-पूजक रहा हूं और आगे भी रहूंगा. मैं केवल यही ठीक-ठाक व्यक्त कर पाने में अपने को असमर्थ पाता हूं.

मैं पुनः आपके दर्शनों को उत्सुक हूं और अफसोस है कि इस समय मैं आपसे मिल नहीं सकूंगा. खांसी से बुरा हाल है, सिर फटा जा रहा है, फिर भी मैं पूरे जोर से काम पर लगा हूं. जो लोग चालाकी को अपनी पराकाष्ठा समझते हैं और जिन्हें मैं बर्दाश्त नहीं कर पाता, ऐसे लोगों के बारे में एक किताब लिख रहा हूं. मेरा विचार है; वे सबसे नीच किस्म के लोगों में आते हैं.

अस्तु, थकान से आपको बचाने के लिए अब मैं अपना पत्र समाप्त करूंगा. आपके प्रति अपना विनम्र आदर प्रकट करते हुए मैं आपका अभिवादन करता हूं. पारिवारिक जनों के लिए भी मेरे यथोचित आदर.

कामना है कि आप स्वस्थ रहें.

—अ. पेश्कोव

(विशेष : यह पत्र 14 या 15 फरवरी 1900 को लिखा गया.)

हरबर्ट जार्ज वेल्स के नाम

दि पारुस पब्लिशिंग हाउस
18, बोल्शायर मोनेत्नाया
पेत्रोग्राद

प्रिय मित्र,

मैंने अभी-अभी तुम्हारी नवीनतम पुस्तक 'मि. ब्रिट्लिंग सीज़ इट थ्रू' के रूसी अनुवाद के प्रूफ समाप्त किये हैं. तुम्हारी इस शानदार पुस्तक के लिए मैं अपनी प्रशंसा व्यक्त करना चाहता हूं. निस्संदेह इस घृणित युद्ध के दौरान यूरोप में लिखी गई यह उत्कृष्टतम, बेहद निर्भीक, अत्यंत सत्यनिष्ठ और सहृदय पुस्तक है. मुझे पक्का विश्वास है कि बाद में, जब हम फिर से बेहतर मनुष्य होंगे, ब्रिटेन इस बात के लिए गर्व महसूस करेगा कि युद्ध की बर्बरता के प्रतिरोध में, और इतने ओजस्वी प्रतिरोध में, जो पहली आवाज़ उठी वह वहीं उठी, और सारे ईमानदार व बौद्धिक लोग कृतज्ञतापूर्वक तुम्हारा नाम लेंगे. तुम्हारी पुस्तक अनेकानेक सालों तक प्रामाणिक बनी रहने वाली पुस्तकों में से एक है. वेल्स, तुम स्वयं एक महत्वपूर्ण और शानदार आदमी हो, और मुझे खुशी है कि मैं तुमसे मिल चुका हूं और तुम्हारे चेहरे को,तुम्हारी अद्भुत आंखों को याद कर पाने में सक्षम हूं. शायद यह सब मैं कुछ-कुछ आदिम तरीके से अभिव्यक्त कर रहा हूं, लेकिन मैं तुमसे सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि विश्वव्यापी बर्बरता और क्रूरता के दौर में लिखी गई तुम्हारी यह पुस्तक सच्चे अर्थों में एक सहृदय और महत्वपूर्ण कृति है.

निस्संदेह मैं तुम्हारी पुस्तक के अंत से सहमत नहीं हूं. मैं उस ईश्वर के सिवाय, जिसने तुम्हें यह वर्णन करने को प्रेरित किया कि किस तरह मि. ब्रिट्लिंग ने दुनिया की इतनी रक्तरंजित व्यथा को सारा का सारा पी डाला और किसी ईश्वर को नहीं जानता. ईश्वर सिर्फ तुम्हारी आत्मा में निवास करता है; तुम्हारी मानवात्मा में, उसके अतिरिक्त और कहीं नहीं. हम मनुष्यों ने, अपनी खुशी के लिए—अपने विषाद के लिए, अपना ईश्वर गढ़ा है. हमें अपने आसपास की दुनिया में, अपने ही जैसे भाग्यहीन लोगों के सिवा कोई और ईश्वर नहीं दिखता. लोगों से मेरा इशारा उन लोगों की ओर है, जिन्होंने अपने खुद के एक ईश्वर, याने दयालुता और भलाई, की सृष्टि कर ली है. प्यारे वेल्स, तुमने एक भव्य पुस्तक लिखी है और उसकी प्रशंसास्वरूप मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूं.

...और अब मैं थोड़ा विषय-परिवर्तन करना चाहूंगा.

अलेक्सांद्र तिखोनोव और इवान लेदिज्निकोव नाम के मेरे दो मित्रों ने बच्चों के एक प्रकाशन गृह की स्थापना की है. आज के समय में बच्चे, पहले के किसी भी समय से ज्यादा, संसार की अत्यंत आवश्यक एवं श्रेष्ठतम संपत्ति हैं. किसी भी और जगह की अपेक्षा रूस के बच्चों को विश्व से, विश्व के महान व्यक्तियों से और मानव जाति के सुख-शांति हेतु उनके श्रम से अवगत होने की अधिक आवश्यकता है. हमें बच्चों के दिल पर जमे इस विकराल और निरर्थक युद्ध के मोरचे को छुड़ाना है और उनमें मानवता के प्रति विश्वास और आदर भावना पुनर्प्रतिष्ठित करनी है. हमें वह सामाजिक स्वच्छंदतावाद, जो मि. ब्रिट्लिंग इतने शानदार ढंग से लेट्टी से व्यक्त करते हैं, और जिसका जिक्र पोमेरेनिया में हाइनरिट्व के मां-बाप के संदर्भ में हुआ है, पुनर्जाग्रत करना है.

प्यारे वेल्स, मैं तुमसे बच्चों के लिए एडीसन (प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कर्ता) के बारे में, उनके जीवन और कार्यों को लेकर एक पुस्तक लिखने के लिए कहना चाहता हूं. तुम एक ऐसी पुस्तक की जरूरत को महसूस करोगे जो मन में विज्ञान और उसके असर के प्रति एक लगाव पैदा करे. मैं राम्यां रोलां से और फ्रिट्ज्योफ नान्सन से क्रमशः एक-एक पुस्तक बीटोवेन (अधिक प्रचलित 'बीथोवेन') व कोलंबस के बारे में लिखने को कहूंगा. मैं खुद गैरीबाल्दी पर लिखूंगा. इस तरह बच्चों को कई महान व्यक्तियों की एक शब्द-चित्र-वीथी उपलब्ध हो जायेगी. कृपया मुझे यह भी अवगत कराओ कि चार्ल्स डिकेंस, बायरन व शैली के बारे में अंग्रेजी भाषा के कौन-कौन से लेखक उपयुक्त रहेंगे! साथ ही, मुझे कुछ बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों के नाम भी सुझाओ जिनके मैं रूसी भाषा में अनुवाद करा सकूं.

मुझे उम्मीद है कि तुम इस सहायता से हाथ नहीं खींचोगे. एक बार फिर मैं अपनी बात दुहराऊंगा कि तुमने एक शानदार पुस्तक लिखी है और मैं अपने हार्दिक धन्यवाद देता हूं.

तुम्हारा ही विश्वासभाजन
—मै. गोर्की

...और सेमागा पकड़ा गया

■ गोर्की की कथा रचना

सेमागा वोदका का एक पौवा और पंद्रह कोपेक मूल्य का सागवाला मांस अपने सामने मेज पर रखे कहवाखाने में एकदम एकाकी बैठा था. यह निचले तल्ले का कमरा था जिसकी मेहराबदार छत धुएं से काली पड़ी थी. पूरे कमरे में तीन लैंप टिमटिमा रहे थे, एक उस जगह जहां कलवार बैठा था और दो कमरे के बीचोंबीच हवा धुएं से अटी पड़ी थी. धुएं की भंवरों में धुंधली काली शक्लें बोलती, गाती और उन्मत्त होकर गालियां उछालती तैर रही थीं. उन्हें पता था कि वे यहां कानून की गिरफ्त के बाहर हैं.

बाहर शरद के अंतिम दिनों की आंधियां चल रही थीं और बर्फ की बड़ी-बड़ी वेगवती परतें एक पर एक गिर रही थीं. लेकिन कमरे में हल्की गर्मी और चहलपहल थी. वहां सुहावनी पहचानी-सी महक फैली हुई थी.

सेमागा एकटक दरवाजे की ओर देख रहा था. हर बार जब भी किसी के भीतर आने पर दरवाजा खुलता, सेमागा की आंखें पैनी हो उठतीं. वह आगे की ओर थोड़ा-सा झुक जाता, अपने चेहरे को ओट में करने के लिए अपना एक हाथ उठा लेता और भीतर आनेवाले की आकृति को बारीकी से परखता. ऐसा करने के पीछे एक खास वजह थी.

नवागंतुक का सूक्ष्म निरीक्षण कर आश्वस्त हो लेने के बाद वह अपने गिलास में वोदका उंडेलता, उसे गले के नीचे उतारकर मांस और आलू के आधा-एक दर्जन टुकड़े मुंह में भरकर अपनी सिपाहीनुमा मूंछों को जीभ से चाटने के साथ-साथ होंठों से चटखारे ले-लेकर धीरे-धीरे चबाने लगता.

सेमागा का दाढ़ीहीन चेहरा चौड़ा था, गालों की हड्डियां उभरी हुई थीं. उसकी आंखें बड़ी और भूरी थीं और उन्हें सिकोड़े रखने की उसे आदत-सी पड़ गयी थी. काली घनी भौंहें उसकी आंखों पर छाया किये थीं और घुंघराले बालों की अजीब रंग की एक लट उसकी बायीं भौंह के ऊपर करीब-करीब उसे छूती हुई झूल रही थी. कुल मिलाकर सेमागा का चेहरा उन चेहरों में से नहीं था जिन्हें देखकर उनका विश्वास करने को जी चाहता है. उसके चेहरे पर जो एक विकृत निश्चयता का भाव था, उसमें कुछ ऐसी उद्विग्नता थी कि वह उस स्थान पर और वैसे लोगों के बीच भी खपती हुई नहीं लगती थी.

वह एक खुरदरा ऊनी कोट पहने था. उसकी कुर्सी की पीठ के सहारे गावदार आकार-प्रकार का एक डंडा टिका था जिसके जड़वाले सिरे पर एक मूठ-सी उभरी थी.

हां, तो वह इस प्रकार बैठा खाने-पीने में मगन था और कुछ और वोदका के लिए आर्डर देने ही जा रहा था कि एक झटके से दरवाजा खुला और कहवाखाने में एक गोल-मटोल और खुरदरी-सी चीज जैसा बढ़ा लुढ़कता हुआ-सा आया और आते ही बदहवासी में चिल्लाने लगा, "ए, जल्दी भागो! पुलिस धावा बोलने जा रही है!"

यह मनहूस सूचना मिलते ही लोग तुरंत कमर सीधी करके बैठ गये. शोर बंद हो गया. सभी चिंतित मुद्रा में एक-दूसरे से खुसर-पुसर करने लगे. क्षण भर बाद कई लोगों ने एक साथ पूछा, "क्या सच कहते हो?"

"मुझे मार डालना अगर गलत निकले तो! वे दोनों ओर से आ रहे हैं, घोड़ों पर भी और पैदल भी. दो अफसर और ढेर सारे पुलिसमैन!"

"वे किसकी खोज में हैं? कुछ मालूम हुआ?"

"मेरा खयाल है वे सेमागा की तलाश में हैं. निकिफोरिच से वे उसके बारे में पूछताछ कर रहे थे..." इतना कहकर वह गुदड़ीनुमा आकृति कलवार की दिशा में लुढ़क गयी.

"क्यों, क्या निकिफोरिच पकड़ा गया?" सेमागा ने पूछा.

सेमागा फौजी था, चोर था, फरार था और पुलिस उसकी खोज में थी. सेमागा को मालूम था कि पुलिस उसे तलाश रही है और इससे पहले कि पुलिस उस तक पहुंचे, उसके आने की सूचना मिलते ही वह कहवाखाने से भाग खड़ा हुआ था...छिपने के तमाम स्थान सेमागा को मालूम थे और वह चाहता तो कहीं भी छिपकर बैठ जाता....मगर ऐसा नहीं हुआ...क्यों? आखिर वह कौन सी 'उलझन' थी जिसके चलते सेमागा पुलिस के हाथ लग गया...और तब भी क्यों उसे पुलिस के हाथ लगने का नहीं बल्कि उस 'उलझन' के न रहने के दुख ने सताया? —फौजी बनाम चोर के भीतर बैठे एक 'सहृदय मनुष्य' की मर्म-कथा—

"हां, उन्होंने उसे अभी-अभी पकड़ा है."

"**कहां?**"

"चची मारिया के 'स्टेंथा' शराब-घर में."

"क्या तुम सीधे वहीं से आ रहे हो?"

"ओ-हो-हो! बाग के बाड़ों को फांदता-लांघता भागा हुआ मैं यहां आया हूं और अब सीधे 'बग्जा' शराब-घर जा रहा हूं. उन्हें सूचित करना भी जरूरी है न."

"लपक जाओ!" सेमागा ने सलाह दी.

लड़का पलक झपकते कहवाखाने से बाहर हो गया. लेकिन उसके निकलने पर दरवाजा अभी बंद हुआ ही था कि कहवाखाने का बूढ़ा मालिक चिल्लाया, "ऐ **छछूंदर, शैतान के बच्चे! यह तूने क्या किया, सूअर की** औलाद! कलेजी की पूरी रकाबी मुफ्त में डकार गया!"

"ऐसा कहो न कि वह तुम्हें चूना लगा गया, क्यों?" दरवाजे से बाहर जाते हुए सेमागा ने रूखी आवाज में कहा.

थपेड़े मारती हुई आंधी चारों तरफ बवंडरें उठा रही थी और उसकी आवाज के साथ-साथ बर्फ की गीली परतें इतनी घनता से गिर रही थीं कि हवा उबलते हुए दलिया का ढेर-सा **लग रही थी.**

सेमागा ने एक क्षण के लिए रुककर कानों से टोह ली. लेकिन हवा की सनसनाहट और घरों की दीवारों-छतों पर गिरती हुई बर्फ की सरसराहट के सिवा और कोई आवाज नहीं सुनाई दी.

वह चल दिया और दसेक डग भरने के बाद ही एक बाड़े को लांघकर किसी घर के पिछले भाग में पहुंच गया. तभी एक कुत्ता भौंका और उसके जवाब में घोड़े ने हिनहिनाकर जमीन पर अपना पांव पटका. सेमागा जल्दी से बाड़ा लांघकर फिर सड़क पर आ गया और शहर के मध्य भाग की ओर चल दिया. अब उसके पांव पहले की अपेक्षा अधिक तेजी से उठ रहे थे.

चलते-चलते उसने छिपने के लिए किसी सुरक्षित स्थान के बारे में सोचने की कोशिश की. लेकिन ऐसा कोई स्थान दिमाग में नहीं आया क्योंकि जितने भी सुरक्षित स्थान थे वे सब अब अरक्षित हो गये थे. पुलिस धावा मारने पर जो उतर आयी थी. और धावा करनेवालों या रात के चौकीदारों द्वारा पकड़े जाने के खतरे के रहते ऐसी आंधी में बाहर रात बिताने की कल्पना भी कोई खास सुखकर नहीं थी.

वह आज धीरे-धीरे चल रहा था. सामने तूफान के सफेद अंधेरे पर आंखें जमाए जिसमें से नर्म बर्फ के गोलों से ढके घर, अस्तबल, सड़क की रोशनी के खंभे और पेड़ एकाएक बिना आवाज किये निकल आते थे.

तूफान की आवाज से अलग एक विचित्र आवाज सुनकर उसके कान खड़े हो गये. यह आवाज उसके सामने की ही किसी जगह से आ रही थी. यह किसी बच्चे के रोने की नर्म आवाज से मिलती थी. वह रुक गया और खतरे की गंध से आशंकित वन्य जीव की भांति उसकी गर्दन आगे की ओर तन गयी.

आवाज आनी बंद हो गयी.

सेमागा ने अपनी गर्दन हिलाई और फिर आगे बढ़ चला. उसने टोपी को और भी अधिक नीचे खींचकर अपनी आंखों को ढक लिया और बर्फ से अपनी गर्दन को बचाने के लिए कंधों को उचकाकर एक कूबड़-सा निकाल लिया.

उसे फिर रोने की आवाज सुनाई दी और इस बार यह ठीक उसके पांव के

नीचे से आ रही थी. वह चौंका, रुका, नीचे झुका, अपने हाथों से जमीन को टटोला, सीधा खड़ा हो गया और बंडल से बर्फ को अलग करने लगा जो अभी-अभी उसके हाथ लगा था.

"वाह, क्या साथी मिला है राह चलते! एक बच्चा! बोलो, क्या कहते हो अब तुम?" शिशु को देखते हुए वह अपने आप में बुदबुदाया.

बच्चा गर्म था. वह कुलबुला रहा था. पिघली हुई बर्फ से वह एकदम गीला हो गया था. उसका चेहरा, जो सेमागा की मुट्ठी जितना भी बड़ा नहीं था, लाल और झुर्रीदार था, उसकी आंखें बंद थीं और उसका छोटा-सा मुंह रह-रहकर छोटी-छोटी चुसकियां-सी भरने को खुल रहा था. उसके चेहरे के इर्द-गिर्द लिपटे चीथड़े में से पानी चूकर उसके नन्हें दंतहीन मुंह में पहुंच रहा था.

स्तब्ध हो जाने के बावजूद सेमागा में इस बात का चेत था कि इन चीथड़ों से चुआ पानी बच्चे के पेट में नहीं जाना चाहिए. सो उसने बंडल को उलटकर उसे हिलाया. लेकिन बच्चे को शायद यह रुचा नहीं और इसके विरोध में वह धीमी आवाज में चीख उठा.

"छि. छि:!" सेमागा ने कड़ी आवाज में कहा, "मुंह से जरा भी आवाज न निकले, समझा! नहीं तो कान खींच लूंगा. बोलो, मुझे ऐसी क्या पड़ी थी जो मैं तुमसे उलझ गया? गोया मुझे बस तुम्हारी ही जरूरत थी. लेकिन तुम हो कि रोना शुरू कर दिया. बोलो, नन्हें बुद्धू और कैसे होते हैं?"

लेकिन सेमागा के शब्दों का बच्चे पर जरा भी असर नहीं हुआ. धीमी और रुआंसी आवाज में उसने चिचियाना जारी रखा. सेमागा इससे अत्यधिक विचलित हो उठा. बोला, "भई वाह, तुम भी कैसे दोस्त हो? देखो, यह अच्छी बात नहीं है. यह मैं जानता हूं कि तुम गीले हो गये हो और तुम्हें ठंड सता रही है...लेकिन मैं कर भी क्या सकता हूं. बोलो, तुम्हीं बताओ."

लेकिन बच्चा अभी भी चिचिया रहा था.

"नहीं मानते तो यह लो," सेमागा ने निर्णयात्मक स्वर में कहा फिर चीथड़े को बच्चे के चारों ओर और कसकर लपेटा और उसे पुनः जमीन पर रख दिया. "और कोई चारा नहीं. तुम खुद देख सकते हो कि मैं तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता. मैं खुद भी एक तरह से परित्यक्त ही हूं. अच्छा तो अब राम-राम और बस."

सेमागा ने हवा में हाथ हिलाया और चल दिया, बुदबुदाता हुआ...

"अगर पुलिस छापा न मारती तो शायद तुम्हारे लिए कोई न कोई घोंसला खोज निकालता. लेकिन पुलिस छापा मार रही है. इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं? नहीं दोस्त, कुछ नहीं कर सकता. मुझे माफ करना. सच, तुम्हें माफ करना ही पड़ेगा. तुमने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, तुम एकदम निर्दोष हो और तुम्हारी मां एक डायन है-पूरी डायन! छिनाल कहीं की! अगर कभी मेरे पल्ले पड़ गयी तो कमबख्त की एक भी पसली बाकी न रहने दूं. भुरकस निकाल दूं ताकि होश ठिकाने आ जायें और फिर कभी ऐसा करने का साहस न हो. मालूम हो जाये कि बस, यहां तक बढ़ना चाहिए, इससे आगे नहीं. अरी ओ स्त्री के चोले में शैतान, हृदयहीन पशु! तू दुखों की आग में जलेगी, धरती में समाना चाहेगी तो वह भी तुझे उगल देगी. तू समझती क्या है? यह भी कोई खेल है कि जहां-तहां मुंह मारा और जब बच्चे हुए तो उन्हें इधर-उधर फेंक दिया? क्या तू इतना भी नहीं जानती कि ऐसे आंधी-तूफान में बच्चों को जहां-तहां नहीं फेंका जा सकता, वे कमजोर और बेबस होते हैं और इस बर्फ को निगलकर मर सकते हैं. बेवकूफ कहीं की!"

यही सब सोचते-सोचते न जाने कब सेमागा फिर बच्चे के पास पहुंच गया और उसे अपनी गोदी में उठा लिया. उसकी मां को संबोधित करने में वह इस कदर डूबा था कि उसे खुद पता नहीं चला कि कब और कैसे यह सब हो गया. उसने बच्चे को अपने कोट के भीतर छिपा लिया. उसकी मां को आखिरी और सबसे तेज डांट पिलाने के बाद वह फिर अपने रास्ते पर चल दिया. उसका हृदय भारी था और उतना ही दयनीय जितना दयनीय कि वह बच्चा, जिसके लिए उसका हृदय इतना उमड़-घुमड़ रहा था.

■ गोर्की की लघु रचनाएं

संगीत

युवा स्वरकार ने काली आंखों से दूरी पर एकटक देखते हुए धीरे से कहा, "मैं जो संगीत रचना चाहता हूं, वह कुछ ऐसा होगा: बड़े शहर की ओर जानेवाली सड़क पर एक लड़का धीरे-धीरे चला जा रहा है. इमारतों के भारी बोझ के रूप में नगर सामने लेटा हुआ है, जमीन के साथ चिपका हुआ है, कराहता है और दबी-घुटी आवाज में बड़बड़ाता है. दूर से ऐसा लगता है कि अभी-अभी आग ने उसे तबाह-बरबाद किया है, कारण कि उसके ऊपर अभी भी सूर्यास्त की रक्तमयी लपट नहीं बुझी है और उसके गिरजों की सलीबें, मीनारों के शिखर और वायु दिशा-निर्देशक अरुण-से प्रतीत हो रहे हैं.

"काले बादलों के छोर भी दहक-से रहे हैं, लाल धब्बों पर विराट निर्माण के कोनोंवाले खंड भयानक रूप से उभरते हैं. जहां-तहां घावों की तरह शीशे चमकते हैं. तबाह-बरबाद और व्यथित नगर, जो सुख-सौभाग्य की अनवरत लड़ाई का स्थान है, लहू-लुहान है, उससे धुआं निकल रहा है, गर्म-गर्म, पीला-पीला और दम घोंटनेवाला धुआं.

"मैदान के झुटपुटे में लड़का सड़क के चौड़े, मटमैले-से फीते पर चला आ रहा है. यह सड़क नगर की बगल में एक सीधे खड्ग की तरह घुसी हुई है जैसे कि किसी शक्तिशाली अदृश्य हाथ ने इसे घुसेड़ दिया हो. उसके दोनों और खड़े वृक्ष बिना जली मशालों जैसे लग रहे हैं, उनकी बड़ी-बड़ी काली शाखायें मौन और कुछ प्रतीक्षा कर रही धरती पर निश्चल हैं.

"आकाश बादलों से ढका हुआ है, सितारे नजर नहीं आ रहे हैं, परछाइयां नहीं हैं. गहरा चुकी शाम उदासी में डूबी हुई शांत है और नींद में डूबे जा रहे मैदानों की अंधकारपूर्ण तथा थकी-थकी नीरवता में लड़के के धीमे-धीमे तथा हल्के-हल्के पैरों की आवाज मुश्किल से सुनाई दे रही है.

"विस्मृति के काले परदे से उस दूरी को छिपाती हुई, जहां से लड़का बाहर आया है, रात दबे पांव उसके पीछे-पीछे चली आ रही है.

"वह एकाकी और छोटा-सा अपनी चाल तेज किये बिना चुपचाप

बच्चा क्षीणभाव से कुलबुला और चूं-चूं की धीमी आवाज कर रहा था. पर वह आवाज सेमागा के भारी ऊनी कोट और पंजों के नीचे घुटकर रह जाती थी. कोट के नीचे फटी कमीज के सिवा सेमागा और कुछ नहीं पहने था, सो उसे बच्चे के नन्हें बदन की गर्मी अनुभव करने में देर नहीं लगी.

बर्फ के बीच बढ़ते हुए सेमागा बुदबुदाया, "राह में मिले मेरे साथी, तेरा मामला सचमुच में गड़बड़ नजर आता है. भला बता तो सही, तेरा मैं क्या करूंगा? और तेरी वह मां...बस...बस, चुपचाप पड़ा रह. कहीं नीचे न गिर पड़ना!"

लेकिन बच्चा बिलबिलाता रहा. सेमागा ने अपनी कमीज के छेद में से उसके होंठों के गर्म स्पर्श का अनुभव किया. बच्चे के होंठ उसकी छाती पर कसमसा रहे थे. सेमागा सहसा रुककर एकदम निश्चल खड़ा हो गया और चकित आवाज में जोरों से कह उठा, "अरे, यह स्तन की टोह में है! अपनी मां के स्तन की! ओ भगवान्! अपनी मां के स्तन की!" जाने क्यों, सेमागा का समूचा बदन थरथरा उठा. शायद लज्जा से, शायद भय से या किसी ऐसे भाव से जो विचित्र था. बहुत ही प्रबल, दुखद और हृदयविदारक.

"मुझे अपनी मां समझता है, जंगली कहीं का. इतनी भी अकल नहीं! आखिर तेरा इरादा क्या है? और तू मुझसे चाहता क्या है? भाई मेरे, अगर तू जानना ही चाहता है तो सुन-मैं एक फौजी आदमी हूं और चोर."

हवा की सांय-सांय में एक अजब वीरानगी महसूस हो रही थी.

"तुम्हें अब सो जाना चाहिए, समझे! अब चुपचाप सो जाओ. अंन्हुक,

चला जा रहा है तथा शांति से नगर को देखता जा रहा है. वह मानो कुछ ऐसा लिये जा रहा हो जिसकी बहुत देर से वहां, शहर में प्रतीक्षा हो रही है, जहां नीली, पीली और लाल बत्तियां उसके स्वागत को बेचैनी से जगमगा रही हैं.

"एक धूमिल-सा बादल उसके ऊपर उभरा है और बढ़ता जाता है, एक-दूसरी के साथ सिमटी हुई इमारतों के भूरे जाल पर पीला-सा कुहरा टेढ़ा-मेढ़ा लटक गया है. अब यह शहर आग से तबाह-बरबाद और खून से लथपथ दिखाई नहीं देता है, छतों और दीवारों की टेढ़ी-तिरछी रेखायें किसी जादूई की याद दिलाती हैं, किंतु साथ ही ऐसा भी लगता है कि नगर का अंत तक निर्माण नहीं किया गया है, उसे अधूरा ही छोड़ दिया गया है मानो वह, जिसने लोगों के लिये इस बड़े नगर की कल्पना की थी, थककर सो गया है, निराश हो गया है और सब कुछ छोड़-छोड़कर कहीं चला गया है या फिर विश्वास खोकर मर गया है.

"लेकिन शहर जी रहा है और अपने को सुंदर तथा बड़े गर्व से सूरज की ओर उठा हुआ देखने की तीव्राकांक्षा से ओत-प्रोत है. वह सुख-सौभाग्य की नानारूपी चाह के सरसाम में कराहता है, जीवन की प्रबल पिपासा उसे आंदोलित करती है, उसके इर्द-गिर्द फैले मैदानों की काली नीरवता में दबी-घुटी ध्वनियोंवाली मंद-मंद सरितायें बहती हैं तथा आकाश का काला प्याला धुंधले-धुंधले तथा मन को व्यथित करनेवाले प्रकाश से परिपूर्ण होता जाता है.

"लड़का रुकता है, भौंहें ऊपर चढ़ाकर सिर झटकता है, शांत और साहसपूर्ण दृष्टि से सामने देखता है और तनिक झूमकर तेज कदमों से आगे चल देता है.

"और उसके पीछे-पीछे आती रात्रि मां के धीमे-धीमे स्नेहपूर्ण स्वर में उससे कहती है, 'लड़के, समय हो गया, जाओ! वे तुम्हारी राह देख रहे हैं....'

"...निश्चय ही ऐसे संगीत की रचना करना संभवनहीं!" विचारमग्न स्वरकार ने मुस्कराकर कहा.

इसके बाद थोड़ी देर चुप रहकर उसने दोनों हाथ जोड़े और धीमी, चिंतित और प्यारभरी आवाज में चिल्लाकर कहा, "कुंवारी मां मरियम! क्या मिलेगा उसे यहां?" □

चीं-चीं मत करो, सो जाओ. होठों को क्या कसमसाते हो,एक बूंद पल्ल नहीं पड़ेगी. बस, सो जाओ. यह देखो, मैं तुम्हें एक लोरी सुनाता हूं, हालांकि यह काम मेरा नहीं तुम्हारी मां का है. हां तो, सो जा रे लल्ला, सो जा रे. बस, बस, अब सो जा, मैं कोई आया थोड़े ही हूं!"

सहसा सेमागा ने अपना सिर बच्चे की ओर झुकाया ओर धीमे स्वरों में हृदय की समूची कोमलता बटोरकर गाने लगा—

तू हरजाई जरा न भाई
करे क्यों कोई तुझसे प्यार

इन बोलों को उसने ऐसे गाना शुरू किया जैसे लोरी गा रहा हो.

सफेद अंधेरा अभी भी चारों ओर उमड़-घुमड़ रहा था और सेमागा बच्चे को अपने कोट में छिपाए पटरी पर बढ़ता जा रहा था. बच्चे का चिंचियाना जारी था और चोर सेमागा कोमल स्वरों में गा रहा था:

जब होगी सुहानी रात,
करूंगा तुझसे दो-दो बात.
फिर खाकर तगड़ी लात,
कांपेगा थरथर गात!

उसके गालों पर से बूंदें लुढ़ककर नीचे गिरती आ रही थीं. जरूर ही पिघलती बर्फ की बूंदें रही होंगी. रह-रहकर उसके बदन में एक कंपकंपी-सी उठती, गला रुंध-सा जाता और छाती पर एक बोझ-सा मालूम होता. इतनी वीरानगी का उसने पहले कभीअनुभव नहीं किया था   था कि वह अब-इस सूनी सड़क पर तूफान के बीच, कोट के भीतर चूं-चूं करते बच्चे को छिपाकर चलते समय अनुभव कर रहा था. लेकिन वह फिर भी बढ़ता ही गया.

पीछे से टापों की धुंधली आवाज सुनाई दी. घुड़सवार पुलिसमैनों की कई आकृतियां अंधेरे में उभरीं और देखते न देखते उसके बराबर में आ पहुंचीं.

एक साथ दो आवाजों ने सेमागा से पूछा, "ए, कौन जा रहा है? तेरा नाम क्या है?"

"यह भीतर क्या छिपाए है? इसे बाहर निकाल, जल्दी!"अपने घोड़े को एकदम पटरी से सटाते हुए एक पुलिसमैन ने आदेश दिया.

"यह क्या? अरे, यह तो बच्चा है!"

"तेरा नाम?"

"सेमागा...आस्त्रीर-निवासी."

"ओ-हो! वही जिसकी हमें टोह थी. सीधे मेरे घोड़े के आगे-आगे चला चल!"

सेमागा ने अनुरोध किया, "मैं और बच्चा घरों की ओट में ही चलें तो अच्छा हो. वहां सड़क पर हवा बहुत तेज है. बीच सड़क हमारे लिए जरा भी ठीक जगह नहीं है. हम तो अभी ही ठंड में जम गये हैं."

पुलिसमैनों के पल्ले कुछ नहीं पड़ा कि वह क्या कह रहा है, लेकिन उन्होंने उसे घरों की ओट में ही चलने दिया जबकि वे खुद जहां तक बन सकता था, निकट रहते हुए अपने घोड़ों पर पुलिस स्टेशन तक उसके साथ-साथ चलते रहे.

"तो तुम लोगों ने इसे गिरफ्तार कर ही लिया! यह बहुत अच्छा हुआ," दफ्तर में प्रवेश करने पर पुलिस चीफ ने उन्हें शाबाशी दी.

सेमागा ने अपना सिर झटकते हुए पूछा, "और यह बच्चा? इसका मैं क्या करूं?"

फिर अपने कोट के भीतर के बच्चे को बाहर निकालकर पुलिस चौकी को दिखाते हुए सेमागा ने बताया, "यह मुझे सड़क पर पड़ा मिला था."

बच्चा सेमागा के हाथों में लुंजपुंज-सा पड़ा था. पुलिसचीफ ने उसे एकटक देखा और चिल्लाया, "लेकिन यह तो मरा हुआ है!"

"मरा है?" सेमागा ने दोहराया. झुककर उसने नन्हें बंडल की ओर देखा और फिर उसे मेज पर रख दिया. और उसांस लेते हुए अपने आप से बड़बड़ाया, "और मैं भी इसे एकदम सीधे यहीं उठा लाया. कौन जाने, अगर मैं इसे सीधे...लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया..."

"यह क्या बड़बड़ा रहे हो?" पुलिसचीफ ने पूछा.

सेमागा ने इधर-उधर खोई हुई नजर से देखा. बच्चे के मरने के साथ-साथ वे सब भाव भी ज्यादातर मर चुके थे जिनका कि सड़क पर चलते समय उसने अनुभव किया था. यहां वह सर्द अफसरशाही से घिरा था. जेल और अदालत के सिवा उसे और कुछ नजर नहीं आता था. आहत होने की चेतना ने उसके हृदय को मरोड़ दिया. उसने बच्चे के मृत शरीर की ओर देखा. उसकी नजर में विक्षोभ था. वह एक आह भरते हुए बोला, "तुम भी एक ही रहे! तुम्हारी खातिर मैं पक— गया और नतीजा कुछ नहीं. मैं था कि सोच रहा था...लेकिन तुम अपनी करनी से बाज न आये और मेरे शरीर पर ही मर गये. वाह!" इसके साथ ही सेमागा जोरों से अपनी कनपटी खुजाने लगा.

"इसे ले जाओ!" सेमागा की ओर गर्दन से इशारा करते हुए चीफ ने आदेश दिया.

सो वे उसे ले गये.

और बस. □

—प्रस्तुति : कांता चौधरी

■ गोर्की की कथा रचनाएं : चार

नैतिकता आज आदमी का सबसे कमजोर पक्ष है और साम्राज्यवादी शक्तियां उसे ही हमले का मुख्य केंद्र बनाती हैं. यह बात गोर्की के रूस के संदर्भ जितनी सही थी आज के किसी भी विकासशील देश के संदर्भ में उतनी ही सही है. ये शक्तियां हमारे समाज में कैसे गतिशील होती हैं, इसी ओर संकेत कर रही है यह रचना

नैतिकता का पुजारी

काफी रात में वह अचानक मेरे कमरे में प्रकट हुआ और फुसफुसाते हुए उसने मुझसे पूछा, "माफ कीजिए? क्या मैं आधे घंटे के लिए आपसे अकेले में बातचीत कर सकता हूं..."

कद-काठी में [illegible], सफाचट्ट चेहरा, रहस्यमयी सलेटी आंखें और क्षमाप्रार्थी मुस्कान. वह एक कुर्सी में धसक गया. मेरे कमरे में चारों तरफ देखते हुए उसने धीमे से कहा, "वो लोग हमेशा हम पर नजर रखते हैं..."

"वो लोग? कौन लोग."

"वही. खबर सूंघने वाले, पत्रकार."

उसके उल्टे हाथ में एक खूबसूरत हैट झूल रहा था. लंबी उंगलियों में किसी भय की कपकपाहट थी. उसके कपड़े और चेहरे पर छायी गहरी उदासी इस बात की सूचक थी कि उसने अपने कपड़ों के लिए अच्छी-खासी रकम खर्च की है.

अपनी उदास आंखों से खिड़की की तरफ देखते हुए उसने अपनी बात शुरू की, "...सबसे पहले तो मैं आपको अपना परिचय दे दूं. दरअसल मैं एक पेशेवर अपराधी हूं...."

"पेशेवर अपराधी..." जैसे मुझे कुछ सुनाई न दिया हो. मैंने उससे दोबारा पूछा, "क्या? क्या कहा आपने?"

"जी हां...पेशेवर अपराधी." उसने अपने शब्द दोहराये, "और मेरी

"...पना यह है कि मैं जनता की नैतिकता के खिलाफ अपराध करता हूं."

उसकी बात में ऐसा कुछ भी तो विशेष नहीं था. पर जिस तरीके से उसने यह वाक्य कहा था, उसके लहजे में एक अजीब सा ठंडापन था. मैंने उसके चेहरे और शब्दों में कहीं पर भी पश्चाताप की छाया नहीं देखी.

"पानी पियेंगे?..." मैंने उससे पूछा.

"नहीं...धन्यवाद." उसने मना कर दिया और उसकी आंखें उसी क्षमाप्रार्थी मुस्कान के साथ मुझ पर ठहर गयीं जो पहले से ही उसके चेहरे पर जगमगा रही थी, "दरअसल आप मुझे अच्छी तरह समझे नहीं..."

"क्यों नहीं....?" अपनी अज्ञानता छिपाते हुए मैंने यूरोप के पत्रकारों की तरह प्रतिकार किया. पर मुझे लगा कि उसे मुझ पर विश्वास नहीं हुआ. अपने हैट को हवा में हिलाते हुए, सादगी से मुस्कराते हुए, उसने अपनी बात को जारी रखा, "अच्छा, मैं आपको अपने 'पेशे' के बारे में कुछ बताता हूं...जिससे आप मुझे समझ सकें...."

एक गहरी सांस के साथ ही उसका सिर लटक गया. मुझे आश्चर्य हुआ कि उसकी 'आह' में केवल क्लांति थी.

"आपको याद है, पिछले दिनों अखबारों में एक खबर छपी थी...एक आदमी के बारे में....जो शराबी थी...थियेटर की अगली कतार में..."

"अच्छा, अच्छा, वो आदमी जो 'दिल थामने वाले' दृश्य पर टोपी हाथ में उछालते हुए एक टैक्सी लाने के लिए चिल्लाने लगा था...."

"हां...वही." मेरी बात सुनकर उसने आभार मानते हुए कहा, "वो मैं था."

"और वह लेख 'बच्चों को पीटने वाला जानवर', वो भी मैं था. और 'पत्नी को बेचने वाला पति' और 'रास्ते में औरतों को छेड़ने वाला आदमी', वो भी मैं ही था...आमतौर पर ये अखबार वाले सप्ताह में एक बार मेरे बारे में अवश्य लिखते हैं. और तब तो अवश्य ही, जब उन्हें यह साबित करना होता है कि किस तरह लोगों के नैतिक मूल्य गिर रहे हैं..."

उसने यह सब कुछ बड़ी स्पष्टता और सहजता के साथ कहा, बिना शेखी मारे. उसकी बातों का कोई भी सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आ रहा था...पर उसकी बातों में मेरी दिलचस्पी हो चली थी. ऐसे मौकों पर दूसरे लेखकों की तरह मैं भी हमेशा प्रदर्शित करता मानों मैं आदमी और जीवन के बारे में ऐसे ही जानता हूं जैसे हाथ की हथेली के बारे में.

"हूं..." मैंने किसी दार्शनिक के अंदाज में कहा, "अच्छा, इस तरह से आपको समय बिताने में मजा आता है!"

"ठीक. अपनी जवानी के दिनों में मुझे इन सब बातों से खुशी मिलती थी, मैं मानता हूं...पर अब...अब मैं पैंतालीस साल का हो रहा हूं...शादीशुदा हूं...दो बेटियां हैं मेरी...और इसलिए अखबारों में ऐसी चर्चा का पात्र बनना बहुत तकलीफदेह है."

अपनी घबराहट को छिपाते हुए मैंने खंखारते हुए पूछा, "यह तुम्हें कोई रोग है...क्या कोई बीमारी...?"

उसने इंकार में सिर हिलाया, अपने हैट से हवा करते हुए उसने उत्तर दिया, "नहीं, यह मेरा 'पेशा' है. मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि मेरी यही काम है कि मैं गलियों और सार्वजनिक स्थानों पर कुछ खुराफात करता रहूं...हमारे ब्यूरो के कुछ लोग तो और भी बड़े और ज्यादा महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं—जैसे कि सांप्रदायिक भावनाओं को उकसाना, औरतों और लड़कियों को प्रलोभन देते रहना, कुछ तो चोरी भी करते हैं..." उसने गहरी सांस ली और चारों तरफ देखते हुए बोला, "नैतिकता के खिलाफ कुछ और अपराध...मैं तो केवल छोटी-छोटी खुराफात ही करता हूं...बस."

वो ऐसे बातें कर रहा था जैसे कोई व्यापारी अपने व्यापार की बातें करता है. उसकी बातों पर खीझते हुए मैंने व्यंग्य से पूछा, "और यह सब करके भी आप संतुष्ट नहीं हैं..."

"नहीं," उसकी सादगी ने मेरी जिज्ञासा को बढ़ा दिया.

मैंने पूछा, "क्या तुम्हें कभी जेल हुई है?"

"तीन बार...वैसे आमतौर पर मुझे जुर्माना होता है और यह तो जाहिर ही है कि जुर्माना ब्यूरो ही देता है." उसने बताया.

"ब्यूरो!" मैंने आश्चर्य से पूछा.

"हां, तुम जान सकते हो कि मैं अपना जुर्माना अपने आप नहीं दे सकता..." उसने मुस्कराते हुए कहा, "एक हफ्ते में 50 डालर...बहुत कम हैं न चार जनों के परिवार के लिए...."

अपने कमरे में इधर-उधर टहलते हुए विभिन्न प्रकार के मानसिक रूप से विक्षिप्तों के विषय में सोचते हुए मैं उसकी बीमारी का इलाज ढूंढने को उत्सुक था. उसकी बातचीत से इतना तो साफ था कि वह महत्वाकांक्षी नहीं था. अपने पतले, कृश चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान बिखेरते हुए वह धैर्यपूर्वक मुझे घूर रहा था.

"अच्छा, तो ऐसा कोई ब्यूरो है?" मैंने पूछा.

"हां." उसने कहा.

"और वह बहुत से लोगों को रोजगार देता है...इस शहर में एक सौ पच्चीस आदमी और चौहत्तर औरतें...."

"इस शहर में, तब क्या दूसरे शहरों में भी..."

"हां...हां...क्यों नहीं....पूरे देश में." उसने मुस्कराते हुए कहा. मुझे अपने अज्ञान पर शर्म महसूस हुई.

"लेकिन वो...ऐसे कैसे....मेरा मतलब है...ऐसे ब्यूरो करते क्या हैं....?" मैंने झिझकते हुए पूछा.

"नैतिकता के नियमों की खिलाफत." कुर्सी से उठकर वह आरामकुर्सी पर बैठ गया. उसने अंगड़ाई ली और जिज्ञासा से मेरा चेहरा पढ़ना शुरू कर दिया. शायद वह मुझे असभ्य मानता था और ज्यादा तकलीफ नहीं दे रहा था.

'बस, बहुत हुआ...बहुत हुआ....' मैंने सोचा. 'मैं नहीं जानता यह सब किसके बारे में है.'

अपने हाथ रगड़ते हुए मैंने पूछा, "दिलचस्प...रोचक...लेकिन यह सब किसके लिए."

"नैतिकता के नियमों के विरोध के लिए..." वह मुस्कराया. उसकी हंसी ऐसी थी जैसे कोई वयस्क बच्चे की मूर्खता पर हंसता है. मैंने उसे देखा और सोचा, सचमुच अनभिज्ञता ही जीवन के सब झगड़ों की जड़ है.

"तुम क्या सोचते हो? कोई आदमी जिंदा रहना चाहता है?"

"क्यों नहीं?"

"और वह जिंदा रहता है, ताकि वह खुश रह सके."

"यकीनन."

वह उछलकर कुर्सी से खड़ा हुआ और मेरे कंधे थपथपाते हुए बोला, "तो फिर नैतिकता के नियमों का उल्लंघन किये बिना यह कैसे मुमकिन है कि तुम्हारा समय मजे से गुजर सके!"

उसने अपनी आंखें मिचकायीं और भद्देपन से आरामकुर्सी पर पसर गया. मेरी इजाजत के बगैर उसने सिगार निकाला और जला लिया.

"कौन है जो घास खाना चाहता है?"

उसने जलती हुई माचिस की तीली फर्श पर डाल दी.

ऐसा हमेशा होता है, जब कोई महसूस करता है कि वह दूसरे से श्रेष्ठ है, तब वह दूसरे के प्रति धृष्टता का व्यवहार करने लगता है.

उसके चेहरे को घूरते हुए ही मैंने कहा, "मैं तुम्हें नहीं समझ पा रहा हूं कि तुम क्या चीज हो."

वह खिसियाया और बोला, "तुम्हारी योग्यता के बारे में मेरे बहुत ऊंचे विचार थे."

अपने आचरण को और गिराते हुए उसने सिगार की राख को फर्श पर झाड़ दिया. अपनी अधमुंदी आंखों को झपकाते हुए, सिगार के धुएं को घूरते हुए उसने मुझे जानकारी दी, "तुम्हें शायद नैतिकता के बारे में ज्यादा कुछ अता-पता नहीं...."

"मैं भी अक्सर इसके विरुद्ध हो जाता हूं." मैंने अपने बचाव में विनम्रता से कहा.

अपने सिगार को मुंह से निकालते हुए अब वह दार्शनिकों की तरह बोला, "दीवार से सिर टकराने का यह मतलब नहीं है कि तुम्हें अक्ल आ चुकी

है....''

''हो सकता है...'' मैंने सहमति में सिर हिलाया,'' सबसे ज्यादा निर्भीक नैतिकतावादी जो मेरे जीवन में आये, वो मेरे दादा थे. उन्हें सब रास्ते मालूम थे जो स्वर्ग को जाते हैं और जो कोई भी उनके रास्ते में आता था, वे हटा देते थे. सत्य सदा उनके मन में उद्‌घाटित होता था. वे अच्छी तरह जानते थे कि भगवान अपने इंसान से क्या चाहताहै. और यहां तक कि कुत्ते और बिल्लियों को भी वह ऐसा व्यवहार करना सिखाता है कि वे जीवन का संपूर्ण आनंद लें इतना होने पर भी वह, लालची, विद्वेषी, झूठे और सूदखोर थे. कायरों की क्रूरता से भरपूर. आदर्शवादियों के सब गुण थे उनमें. मैं लगातार उन्हें ज्यादा विनीत बनाने की सोचता. एक बार मैंने उन्हें खिड़की से बाहर फेंक दिया. एक और दिन, मैंने उन पर शीशा फेंक मारा. खिड़की और शीशा दोनों टूटकर बिखर गये पर उनमें कोई तबदीली नहीं आयी. वह एक नैतिकतावादी की तरह जिये और वैसे ही मरे. तब से मेरे मन में नैतिकता के प्रति अरुचि सी पैदा हो गयी...शायद तुम कहो कि मैं इसमें दिलचस्पी लूं...पर...''

उसने अपनी घड़ी निकाली और उसे देखते हुए कहा, ''तुम्हें भाषण देने के लिए मेरे पास समय नहीं है. फिर भी अब मैं आ गया हूं तो मुझे देना है. एक बार अगर किसी चीज को शुरू किया जाये तो उसे खत्म भी करना होता है...शायद तुम मेरे किसी काम आ सको...संक्षेप में मैं तुम्हें बताऊं...'' मुझे प्रभावित करने के लिए उसने फिर अपनी आंखें आधी मूंद लीं, नैतिकता तुम्हारे हितों की रक्षा करती है. तुम्हें कोशिश करनी चाहिए कि यह तुम्हारे

हर आदमी यहां अमीर होना चाहता है और इसी आपा-धापी में हर एक आदमी दूसरे के लिए धन कमाने का जरिया बनता है. पूरी जिंदगी आदमी के मांस और खून से सोना निकालने का धंधा है...लोग आदमी के मांस, हड्डी और नसों को सोने के टुकड़ों में बदलते हैं.

चारों तरफ उपस्थित लोगों की आत्मा में प्रवेश करे. गलियों में तुम पुलिसवाले, और जासूस रखते हो और इंसानों में उन सिद्धांतों को जो उनके दिमाग में घर कर जायें. उन सब विचारों को, जो तुम्हारे विरुद्ध होते हैं, तुम खत्म कर देते हो. उन सब इच्छाओं को भी, जो तुम्हारे अधिकारों के विरुद्ध होती हैं, तुम खत्म कर देते हो. उन सब इच्छाओं को भी. जो तुम्हारे अधिकारों के विरुद्ध होती हैं. नैतिकता वहां ज्यादा कड़ी होती है. जहां अर्थ की समस्या ज्वलंत है. जितनी ज्यादा पूंजी मेरे पास है, उतना ही ज्यादा मैं आदर्शवादी हूं. इसलिए अमरीका में जहां अधिकांश आदमी अमीर हैं,वहां सौ प्रतिशत नैतिकता मिलती है. समझे?''

''हां....'' मैंने कहा,'' पर इन सबके बीच में यह ब्यूरो कहां से आया?''

''ठहरो! ठहरो!'' अपना हाथ उठाते हुए उसने कहा, ''नैतिकता का उद्देश्य हर उस आदमी को प्रभावित करता है जो तुम्हारे लिए खतरा बन सकता है. अगर तुम्हारे पास अपार संपत्ति है, तुम्हारी अपार इच्छाएं हैं और उन्हें पूरा करने के पूरे अवसर हैं तो नैतिकता के सिद्धांतों का उल्लंघन किये बिना तुम क्या कर सकते हो!...तुम दूसरों को भाषण नहीं दे सकते कि तुम अपने आपको त्यागते हो. शायद लोग तुम्हारी इस बात पर विश्वास न करें...आखिर सभी तो मूर्ख नहीं हैं...मान लो तुम एक रेस्तरां में बैठे शराब पी रहे हो और एक प्यारी सी औरत को चूम रहे हो, हालांकि वो तुम्हारी पत्नी नहीं है...तुम्हारे स्तर के हिसाब से यह अनैतिक है. पर तुम्हारे अपने लिए, इस तरह का समय व्यतीत करना जरूरी है, क्योंकि यह तुम्हारी आदत है. ऐसे में तुम्हें अपने आपको सबसे अलग करने के लिए नैतिकता के सिद्धांतों की जरूरत पड़ती है. एक उदाहरण जिसे तुम सबसे कहते हो कि 'मेहनत करो, चोरी नहीं'. अब यदि तुम्हारे पास अपार धन संपत्ति है और बहुत सी इच्छाएं और उन्हें पूरा करने के अवसर. तुम्हारी अनियंत्रित इच्छा होती है थोड़ा और चुराने की. तब तुम एक सिद्धांत में जकड़ जाते हो कि 'मेहनत करो, चोरी नहीं.' क्योंकि तुम जिंदगी की कीमत जानते हो. जिंदगी एक खुशी, उत्साह देने वाला प्रेम संबंध है. एक दिन तुम्हारी कोयले की खान के मजदूर ज्यादा वेतन की मांग करते हैं. तुम अपनी सेना बुलाओ और मांग दबा दो. कुछ दर्जन मजदूर मरते हैं बस. या फिर तुम्हारे अपने सामान को बेचने के लिए कोई बाजार नहीं है. तुम सरकार से कहते हो. तब सरकार थोड़ी सी सेना एशिया या अफ्रीका में भेजती है और तम्हारी इच्छा पूरी करती है. कुछ सौ या हजार निवासियों को गोली का शिकार बनाकर बस और यह सब तुम्हारे भाईचारे, युद्धविराम और शुद्धता के भाषण से मेल नहीं खाता. पर मजदूरों या निवासियों की हत्या के मामले में तुम अपने आपको निर्दोष ठहराते हो. राज्य का लाभ दिखाकर.

''आमतौर से अमीर आदमी की स्थिति बहुत बेहतर नहीं है. यह उसके लिए जीवन और मरण का प्रश्न है कि हर कोई उससे प्यार करे, उसकी पूंजी पर हक जमाने से बाज आये, उसके लाभ में रोड़े न अटकाये और उसकी बहन, बेटी का सम्मान करे. उसके अपने लिए यह जरूरी है. दूसरी तरफ यह जरूरी नहीं कि वह भी सबसे प्यार करे, चोरी से बचे और औरत का सम्मान करे. सब कुछ जो उसकी गतिविधि को तोड़ता है– बिना शक उसकी सफलता में अड़चन डालता है. एक नियम की तरह उसका जीवन चुराना और हजारों लोगों को लूटना जरूरी है. वह दर्जनों औरतों की इज्जत लूटता है और फालतू आदमी के लिए इस तरह समय बिताना कितना रोचक है. और वह प्यार करे भी तो किसे...उसके लिए सब लोग दो भागों में बंटे हैं. एक हिस्से को तो वह लूटता है, दूसरा इस लूट के काम में उससे होड़ करता है.''

अपने विषय के ज्ञान से खुश, मुझे भाषण देते हुए वह मुस्कराया और सिगार की राख को एक कोने में छिड़कते हुए बोला, ''और इस तरह नैतिकता एक अमीर आदमी के लिए लाभदायी और आम लोगों के लिए बाध्यकर चीज है. इसीलिए आदर्शवादी नैतिकता के सिद्धांतों को जबरन लोगों की दिमाग में घुसाना चाहते हैं. लेकिन खुद नैतिकता को ऐसे पहनते हैं जैसे टाई या दस्ताने. अब अगला सवाल यह है कि कैसे नैतिकता के नियमों को मानने के लिए आम लोगों को तैयार किया जाये. कोई नहीं चाहता कि चोरों के बीच एक ईमानदार आदमी की तरह रहा जाये. लेकिन अगर तुम लोगों को राजी नहीं कर सकते, तो उन पर दबाव डालना होगा, उनके विचारों को सम्मोहित करना होगा....यही तो काम करने का तरीका है....''

उसने सिर हिलाया और मेरी तरफ आंख मिचकाते हुए दोहराया, ''तुम लोगों को राजी नहीं कर सकते तो सम्मोहित करो...''

तब उसने अपना हाथ मेरे घुटने पर रखा और धीमी आवाज में बोला, ''जिस ब्यूरो के लिए मैं काम करता हूं वह जनता के विचारों को सम्मोहित करता है. और यह अमरीका के सर्वाधिक मौलिक ब्यूरो में से एक है.'' उसने गर्व से कहा.

''क्या तुम जानते हो,हमारा देश पैसा बनाने के विचार से जीता है. हर आदमी यहां अमीर होना चाहता है और इसी आपाधापी में हर एक आदमी दूसरे के लिए धन कमाने का जरिया बनता है. पूरी जिंदगी आदमी के मांस और खून से सोना निकालने का धंधा है. इस जगह के लोग और हर जगह के लोग आदमी के मांस, हड्डी और नसों को सोने के टुकड़ों में बदलते हैं. जिंदगी बहुत साधारण है....''

''क्या यह तुम्हारे अपने विचार हैं?'' मैंने पूछा.

''नहीं...बिल्कुल नहीं....मुझे याद नहीं आता कि किस तरह से ये मेरे दिमाग में घुस गये...और यह विचार मैं केवल तभी प्रकट करता हूं जब उन लोगों से मिलता हूं...जो साधारण नहीं हैं...आमलोगों के पास दुराचार में मग्न रहने का समय नहीं है...उनके पास सोचने का समय नहीं है. किसी भी चीज की इच्छा के लिए उनमें ऊर्जा नहीं है...वो अपने काम में ही जीते

हैं...और काम के लिए ही जीते हैं...यही उनकी जिंदगी को ज्यादा नैतिक बनाता है....''

''इस भावशून्य नीरस और उबाऊ जिंदगी में, जो प्राचीन पारसी नैतिकता की अंगुल भर कंपास तक सीमित है...किसी भी सिद्धांत का उल्लंघन एक घने धुएं के बादल की तरह है. यह अच्छी चीज है और बुरी भी. समाज का उच्च वर्ग, निचले वर्ग का संचालन करता है. उनके पास पैसा है इसका अर्थ है कि उन्हें अधिकार है कि वे बिना नैतिकता की परवाह किए जैसा चाहें वैसे जियें. अमीर जो लालची होते हैं, काहिल होते हैं, भोगविलासी और निकम्मे हाते हैं और दुराचारी भी. उनकी आत्मा में शैतान बसता है. अब वे क्या करें? क्या खुल्लमखुल्ला नैतिकता को त्याग दें? यह असंभव है, क्योंकि यह पागलपन है. अगर तुम अपने फायदे के लिए लोगों को नैतिकतावादी बनाना चाहते हो तो लोगों की नजर में दुराचार से दूर रहना होगा. बस. इसमें कुछ भी तो नया नहीं है...यही सब तो होता आया है...'' अपने कंधों को देखते हुए उसकी आवाज में और भी धीमापन आ गया.

''जानते हो, न्यूयार्क के कुछ लोगों के दिमाग में कैसा अजीब विचार पैदा हुआ...एक गुप्त सोसायटी बनाने का...नैतिकता के सिद्धांतों के खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन के लिए...चंदा इकट्ठा करके उन्होंने ऐसा ही किया,अलग-अलग कस्बों में ब्यूरो खोले और नैतिकता के विरुद्ध काम करने के लिए लोगों को रोजगार दिये. हर एक ब्यूरो को चलाने के लिए एक अनुभवी और प्रशिक्षित व्यक्ति, जो दूसरे लोगों को काम सौंपता....एक नियम की तरह...कुछ अखबारों के संपादक भी...''

''लेकिन ब्यूरो का उद्देश्य मेरी समझ में नहीं आता.'' उसकी बात को काटते हुए मैंने कहा.

''यह बहुत सरल है,'' वह मुड़ा. अचानक ही बेचैन और अशांत सा वह खड़ा हुआ. अपने हाथों को पीछे करते हुए कमरे में टहलने लगा.

''बहुत सीधा है यह,'' उसने फिर कहा, ''मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूं कि निचला वर्ग अपराधी नहीं है. उसके पास समय ही नहीं है. दूसरी तरफ नैतिकता 'अपराध' के विरुद्ध है. आखिरकार तुम उसे बूढ़ी नौकरानी की तरह त्याग तो नहीं सकते. उनके पास नैतिकता के लिए बराबर विरोध रहता है, जो लोगों को बहरा करता है, उन्हें सच्चाई से अलग रखता है. अगर तुम पड़ोसी की जेब का बटुआ निकालते हो पूरे होशोहवास में और नटखट बच्चे का सा व्यवहार करते हो जैसे तुमने मुट्ठी भर मेवे चुराये हों...ऐसा व्यवहार ही तुम्हें खुश रख सकता है. सिर्फ चिल्लाओ 'रोको-चोर को', इतनी जोर से, जितना तुम चिल्ला सकते हो. हमारा ब्यूरो क्या करता है, सिर्फ छोटी-मोटी खुराफात–बड़े विरोध को दबाकर...''

उसने गहरी सांस ली. कमरे के बीच में रुका और कुछ देर के लिए चुप रहा. फिर उसने शुरू किया, ''उदाहरण के लिए, किसी शहर में अगर यह अफवाह फैली है कि कोई सम्माननीय और विशिष्ट व्यक्ति अपनी पत्नी को पीटता है. अब ब्यूरो जानबूझकर मुझे और दूसरे एजेंटों को अपनी-अपनी पत्नी को पीटने की आज्ञा देगा और हम उन्हें पीट देंगे. पत्नियों को भी इस विषय में पूर्व जानकारी होगी और वे भी खूब जोर-शोर से चिल्लायेंगी और अखबार इस विषय में खबरें देंगे. ऐसा करने से उस 'सम्माननीय' और 'विशिष्ट' नागरिक की अपनी पत्नी को पीटने की 'अफवाह' को बढ़ावा मिलता है और सच्चाई गौण हो जाती है.''

•

वह खिड़की की तरफ गया और गली में झांककर वापिस आया और बैठ गया. उसकी धीमी आवाज फिर कमरे में सुनाई देने लगी, ''ब्यूरो अमरीका के उच्च वर्ग को आम लोगों के न्याय से बचाता है, नैतिकता के अनुशासन भंग के लिए कडा विरोध जगाता है, छोटे-छोटे स्कैंडलों की आड़ में वह अमीरों के दुराचारों की रक्षा करता है. और लोग,जिनके पास सोचने का समय नहीं है, वे वहीं सुनते हैं जो उन्हें अखबारों के जरिए बताया जाता है. और अखबार उन्हीं करोड़पतियों के होते हैं जो ब्यूरो को भी चलाने का खर्चा देते हैं...अब समझे...''

''धन्यवाद,'' मैंने कहा, ''तुमने मुझे बहुत अच्छी जानकारी दी.''

''हां...'' उसने सिर उठाया और अपनी चमकती हुई आंखों से मुझे देखा. फिर धीरे से कहा, ''लेकिन यह सब मुझे थकाने की शुरुआत है. मैं पारिवारिक आदमी हूं, तीन साल पहले मैंने अपना घर बनाया था.... अब मैं थोड़ा आराम चाहता हूं...मेरी यह नौकरी बहुत उबाने वाली है...नैतिकता के नियमों के प्रति आदर-सम्मान बनाये रखना इतना आसान नहीं है, मुझ पर विश्वास करो. अब तुम्हीं देखो, शराब मेरे लिए बुरी है पर मुझे पीनी पड़ती है. मैं अपनी पत्नी को प्यार करता हूं और यहां मुझे रेस्तराओं में भटकना पड़ता है...और हमेशा अपने आपको अखबारों में देखना पड़ता है...झूठे नामों से...सच...पर फिर भी किसी दिन मेरा असली नाम भी आयेगा और तब मुझे अपने शहर से भागना पड़ेगा...दरअसल मुझे तुम्हारी मदद चाहिए...''

''किस तरह की?'' मैंने पूछा.

''देखो...तुम....'' उसने शुरू किया, ''यह इस तरह है...कि दक्षिण राज्यों में ऊंचे वर्ग के लोग नीग्रो-रखैल रखते हैं...दो-तीन एक ही समय. लोग-बाग इस बारे में बातें शुरू करते हैं. पत्नियां इसे पसंद नहीं करतीं. कुछ औरतों को ऐसे अखबार मिलते हैं जिनमें उनके पतियों को खोलकर रख दिया जाता है. ऐसे में यह एक बहुत बड़ा स्कैंडल हो सकता है. अब ब्यूरो को 'विरोधी-तथ्य' चाहिएं. अफवाहें उड़ाने के लिए...तेरह एजेंट और मुझे,हम सबको नीग्रो रखैल चाहिए...दो या तीन भी एक साथ...'' वह घबराहट में लगभग उछल गया. अपनी जेब पर हाथ रखते हुए उसने कहा–''और यह मैं नहीं कर सकता...मैं अपनी पत्नी को प्यार करता हूं...और वह मुझे ऐसा बिल्कुल नहीं करने देगी...कम से कम अगर एक ही रखनी हो तो भी...''

''तुम मना क्यों नहीं कर देते?'' मैंने सुझाव दिया.

उसने दयाभाव से मुझे देखा, ''और फिर 50 डालर हर हफ्ते...कौन देगा मुझे...और बोनस, अगर मैं सफल हो जाता हूं...नहीं नहीं...इस तरह की सलाह नहीं चाहिए...एक अमरीकन एक दिन बाद भी पैसे के लिए मना नहीं करता...कुछ और सोचो...''

''मुझे तो यह बहुत मुश्किल लग रहा है.'' मैंने कहा.

''मुश्किल? तुम्हें क्यों मुश्किल लग रहा है. तुम यूरोपियन तो नैतिकता के असली दावेदार बनते हो और तुम्हारी नैतिकता तो विख्यात है...''

उसने यह सब बड़े कड़े ढंग से कहा. जैसे उसे सब पता हो.

''यहां देखो'', उसने फिर कहा. मेरी तरफ झुकते हुए, ''तुम्हारे कुछ यूरोपियन दोस्त तो जरूर होंगे...''

''तुम उनसे क्या चाहते हो....'' मैंने पूछा.

''मैं...मैं उनसे क्या चाहूंगा,'' बड़े रूखे स्वर में उसने कहा, मैं तो तुमसे यही कह रहा हूं कि नीग्रो लड़कियों के साथ मैं कोई धंधा नहीं कर सकता....बस...और मेरी पत्नी,वह ऐसा नहीं होने देगी और मैं उसे प्यार करता हूं...मैं ऐसा नहीं कर सकता...''

उसने अपना सिर तेजी से हिलाया. अपने गंजे सिर पर हाथ फेरा और फिर कहा, ''शायद तुम कुछ यूरोपियनों को इस काम के लिए लगा सको...वे तो नैतिकता के बारे में कुछ नहीं जानते...इसलिए उन्हें कुछ फर्क नही पड़ता...कुछ गरीब...भुक्खड़...मैं उन्हें दस डालर एक सप्ताह मे दूंगा...दस डालर...वास्तव में तो सब कुछ मैं ही करूंगा...उन्हें सिर्फ देखना होगा...ओह. यह सब आज ही रात को तय करना है मुझे...जरा सोचो क्या स्कैंडल खड़ा हो जाएगा अगर दक्षिण में यह सब छोटे-मोटे दुराचारों के नीचे दबा न दिया जाये. अगर नैतिकता को बचाना है तो यह सब करना होगा...''

...जब वह कमरे से बाहर आया तो मैं खिड़की की तरफ गया. वह नीचे खड़ा था और मुझे इशारे से कुछ कह रहा था.

''क्या चाहिए तुम्हें...'' मैंने खिड़की खोलते हुए उससे पूछा.

''मैं अपनी हैट भूल गया हूं...'' उसने बड़े अंदाज से कहा.

मैंने हैट फर्श से उठाया, उसे गली में उछाल दिया और खिड़की बंद कर दी. और उसे यह कहते सुना : ''और अगर मैं पंद्रह डालर एक हफ्ते में दूं तब...तब चलेगा...? यह तो अच्छी रकम है...?'' □

अनुवाद : ब्रजमोहन

जनता के बीच

निर्दयी और कंजूस नाना ही नहीं, गोर्की के जीवन में तमाम ऐसे घटनाक्रम एक के बाद एक आते चले गये कि उन्हें अपना नाम 'अलक्सेई पेश्कोव' की जगह 'मैक्सिम गोर्की' रखना पड़ा. जूते की दूकान में काम सीखने वाला यह युवक कैसे विश्व का सर्वाधिक चर्चित रचनाकार बन गया...? गोर्की की वृहदाकार आत्मकथा के एक खंड का यह संक्षिप्त रूपांतर जहां गोर्की को समझने में हमारी सहायता करता है, वहीं संघर्षशील जीवन के प्रति आस्था भी जगाता है—

जूतों की दूकान पर काम सीखने के लिए नाना मुझे छोड़ गये. मेरा ममेरा भाई साशा भी वहीं काम करता था. एक दिन गिरजे के चौकीदार ने बुढ़ापे की दुहाई देकर मुझे एक जोड़ा गिलाश दूकान से उड़ाकर देने के लिए कहा. मैं राजी हो गया तो उसने कहा कि यदि वह मेरे मालिक से कह दे कि मैं दूकान से उड़ाकर चीजें उसे बेच देता हूं तो?...मैं घबरा गया. उसने कहा कि वह मजाक कर रहा था और मुझे किसी के भुलावे में नहीं आना चाहिए. साशा बड़े बाबू को जूतों की चोरी में सहयोग देता और इस बारे में लापरवाह रहता.

एक दिन साशा मुझे बगीचे में ले गया. पेड़ के नीचे धरती खोदने पर एक छोटा-सा ताबूत निकला. ताबूत में चिड़े की चोंच और भूरे पंजे दीख पड़े. साशा ने कहा, "कौन जाने कभी कोई ऐसा चमत्कार हो कि यह शव एक पवित्र स्मारक में बदल जाये." पक्षी को उसने दबोच कर मारा था. उसने पूछा कि मुझे यह क्यों अच्छा नहीं लगा. मैंने कहा कि मुझे पक्षी पर दया आती है. उसने चिल्लाकर कहा कि मैं उससे जलता हूं. इस पर हम भिड़ गये. मैंने उसे गिरा दिया. उसने कहा कि मालिक से कहकर मुझे निकलवा देगा. मैंने उसके चिड़े की समाधि खोदकर फेंक दी. उसने कहा कि अब देखना क्या होगा. अगले दिन जूता पालिश करते पिन चुभ गयी. फिर शाम को शोरबा उबलकर हाथों पर गिर गया. मुझे अस्पताल में भेज दिया गया. लगा कि उसके शाप का फल है. अस्पताल में भी मैं भयभीत रहा, जब तक नानी मुझे घर नहीं ले गयी.

नाना ने अपनी पूंजी धर्मपुत्र को दे दी कि वह उनके नाम से व्यापार करेगा. परंतु वे ठग गये सो चिढ़े रहते. गली में चेस्नोकोव परिवार में एक सुंदर लेकिन लंगड़ी लड़की थी. थोड़े दिनों में उससे बार-बार मिलने की इच्छा प्रबल होती चली गयी. उसने एक कोने में मुझे अंतहीन कहानी की किताब पढ़कर सुनानी शुरू कर दी. नानी कहती कि लड़का-लड़की एक दूसरे से मिलें-जुलें लेकिन उन्हें पागलपन की हरकत नहीं करनी चाहिए. कोस्त्रोमा और चुरका भी लुदमिला के पास अपनी हिम्मत का बखान करने पहुंच जाते. एक दिन कब्रिस्तान और भूतों की बातें चल निकलीं. वाल्योक ने कहा कि ताबूत पर सुबह होने तक सोने वाले को वह बीस कोपेक देगा. मैंने कहा, "मुझे एक रूबल दो, मैं जाने के लिए तैयार हूं." नानी ने रूबल पकड़ लिया और कहा, "कोट कंधों पर डाल लो और एक कंबल भी ले लेना, सुबह होते ठंड हो जाती है." टूहों से भरा कब्रिस्तान भूरे क्रासों का घना जंगल लगा.

मुझे डर तो लगता रहा लेकिन नानी से मैंने कहा कि वह किसी से कहे नहीं. नानी ने कहा, "दुनिया में हर चीज का खुद तजुर्बा करके देखना होता है. जो खुद सीखने से कन्नी काटता है, उसे दूसरे भी नहीं सिखाते." शाम तक मैं गली का हीरा बन गया.

मेरा भाई कोल्या मर गया. नाना ने कहा कि उसके पास दफन के लिए दमड़ी भी नहीं. कोल्या को दफनाने तक मैं मां की कब्र के पास बैठा रहा.

एक दिन नानी-नाना के साथ जंगल में गया. नानी कह रही थी धरती जब बाढ़ से प्लावित हो गयी तो मां मरियम ने छिपाकर रखे बीजों से धरती को हरा-भरा कर दिया. मैंने कहा कि मां मरियम तो बाढ़ के बहुत बाद पैदा हुई थी न? नानी ने कहा कि स्कूल में दुनिया भर की झूठी बातें सिखाते हैं. मैं सोच रहा था कि ईसा मसीह मुझ से एक ही साल बड़े थे. मैं इन्हीं विचारों में डूबा गढे में जा गिरा. नानी ने बाहर निकाला. वह गढा नहीं, भालू की मांद थी. मैं पेड़ पर चढ़ा गिलहरी की पूंजी निकाल रहा था, शिकारी की बंदूक से सत्ताइस छर्रे मेरे जिस्म में घुस गये. नानी ने सुइ से खोद-खोद कर निकाले. मैंने उफ तक न की. नानी ने कहा, "जिसने दर्द पर काबू पा लिया उसने मानो मोर्चा ही सर कर लिया."

फिर नाना ने नक्शानवीसी सीखने के लिए नानी की बहन के यहां उसके लड़के के पास भेजना तय किया. लुदमिला भी नगर के लिए जा रही थी. उसके पिता की राय थी कि टांग काटने से वह अच्छी हो जायेगी.

मैं फिर नगर में जाकर रहने लगा. मेरी नानी की बहन चिड़-चिड़ी और झगड़ालू थी. कलह की वजह से घर मुर्गी खाना हो गया था. एक बार तो मालिक की पत्नी ने गुस्से में डबरोटी काटने का चाकू उठाकर पाखाने में घुसकर चिटकनी लगा ली. मुश्किल से दरवाजा खोलकर उसे बाहर निकाला. मालिक की पत्नी और मां मेरी शिकायतें करतीं. मालिक मुझ डांट देते. एक दिन परकाल, रूलर और कागज वगैरा देकर, नक्शे लगाकर मालिक ने मुझे लकीरें खींचने को कहा. लकीरें गलत लगने से कार्निस छत से ऊंची हो गयीं. मैंने कल्पना के सहारे कार्निसों और मुंडेरों पर चिड़िया-कौवे बिठा दिये. नक्शानवीसी का मेरा काम आगे न बढ़ सका. बूढ़ी मालकिन ने चिढ़कर मुझ पीट दिया. नानी का हाथ तंग था. उन्होंने मुझ से एक दो साल वहीं रह जाने का वायदा लिया.

आखिर वसंत के दिनों में भाग निकला. मेरी मुट्ठी में बीस कोपेक थे. और मैं वोल्गा के तट पर पहुंच गया था. नानी के साथ वचन निभ न सका इसलिए वहां जाने में झिझक थी. दो तीन दिन नदी तट पर गुजरे. घाट मजदूर खाना खिला देते और साथ सुला देते. फिर जहाज में तश्तरियां साफ करने की नौकरी मिल गयी. मैंने नानी का समर्थन प्राप्त कर लिया. खानसामे ने चाय और स्लाइस देते ही पूछ लिया, "चोरी करना जानते हो? कोई बात नहीं जल्दी ही सीख जाओगे."

हमारे जहाज पर वही सफर करते थे जिन्हे जल्दी नहीं होती थी. सुबह से सांझ तक वे खाते और पीते-पिलाते और ढेर सारी तश्तरियां गंदी करते. बावर्ची स्मूरी खाली समय में मुझसे किताबें पढ़वाकर सुनता. उसका बक्स किताबों से भरा था. वह कहता था कि किताबें पढ़ने से आदमी समझदार बनता है और सही किताब खोजने के लिए सभी तरह की किताबें पढ़ो. किताब सुनते वक्त वह अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता. मैं जब उसे किताब सुना रहा होता तो मक्सिम को मेरा काम करना पड़ता. उसने मुझसे जलना शुरू कर दिया. सांझ के समय एक छोटे से घाट से एक स्त्री और एक लड़की हमारे जहाज पर सवार हुई. दोनों नशे में धुत्त. काम काज से निबटकर सोने लगा था कि सेर्गेइ मेरा हाथ खींचकर बोला, "चलो हम आज तुम्हारी जोड़ी मिलायेंगे." मक्सिम ने भी उसका साथ दिया. याकोब दरवाजे पर लड़की का रास्ता रोके खड़ा था. स्मूरी ने मुझे मक्सिम और सेर्गेइ के चंगुल से छुड़ा लिया.

बाद में मैंने उससे पूछा कि उस लड़की का क्या हुआ? भद्दे शब्दों में उसने लड़की को कोसा और कहा कि यहां सभी सुअर हैं. जहाज पर लकड़ी लेकर आती स्त्रियों को जहाजी छातियों से पकड़ लेते और वे जहाजियों की चिकोटियों से बचने की असफल कोशिश करतीं. मुझे लगने लगा कि मैं कोई बूढ़ा आदमी हूं, जो उम्र का काफी बड़ा हिस्सा इस जहाज पर बिता चुका हूं. मेरा रोने को जी चाहता पर आंसू नहीं निकलते. इससे मेरा दिल और भी कराह उठता.

नानी और नाना फिर नगर में आ गये थे. भारी मन से मैं उनके पास पहुंचा. नानी ने मुझे प्यार से लिया लेकिन नाना व्यंग्य करते रहे. मैंने अपनी चिड़चिड़ाहट में उन्हें खकर मार दी. नानी मुझ पर बरसीं फिर मैंने नानी को जहाजी जीवन के बारे में बताया. उन्होंने कहा कि मैं अभी छोटा हूं और अभी मैंने जीवन नहीं देखा. सभी एक दूसरे को ऐसा ही कहते थे. आखिर जीवन में क्या देखने-समझनेवाली बात है? नानी भी नहीं जानती थीं.

मैंने पक्षी पकड़ने का काम शुरू किया. नानी उसे बाजार में बेच देती. खाली समय में मैं घूमने चल देता.

नाना को मेरे पक्षी पकड़ने का काम पसंद नहीं था. बर्फ गिरना शुरू होते ही उन्होंने फिर मुझे नानी की बहन के पास छोड़ दिया. दोनों मालकिनें मुझसे जहाजी सफर के किस्से सुनतीं. पुस्तकों की बात आने पर वे नाक सिकोड़तीं. छोटी मालकिन पुस्तकों को हौवा समझती. मालकिन के बच्चों के पोतड़े तक मुझे धोने पड़ते. बस एक ही अच्छी बात थी वहां कि मुझे पड़ौसन कटर की पत्नी से किताबें पढ़ने को मिलती थीं। उन्हें मैं छिपकर पढ़ता था. एक बार पकड़े जाने पर बूढ़ी मालकिन मुझे 'किताबचाटू' कहने लगी.

बूढ़ी मालकिन इतनी बार मेरी पुस्तकें फाड़ चुकी थी कि मैं दूकानदार का सैंतालिस कोपेक का कर्जदार हो गया. कर्ज चुकाने के लिए मैंने चोरी करने का फैसला कर लिया था. लेकिन फिर मालिक से अपनी परेशानी कह दी. मालिक ने कहा, "देखो...पुस्तकों से सदा नुकसान होता है." लेकिन मुझे पत्नी और मां से छिपाकर पचास कोपेक दे दिये. साथ ही मेरे लिए समाचार पत्र मंगाना शुरू कर दिया जो कि मुझे उन्हें पढ़कर सुनाना पड़ता. उन दिनों कुछ किताबें भी मुझे अच्छी लगीं. दोनों मालकिनें कविता के बारे में कहतीं. "भांड और नाटकवालों के सिवा कविता से और कोई आदमी वास्ता नहीं रखता?" लेकिन किताबें मेरा अनुभव बढ़ा रही थीं. उन्हीं दिनों जार की हत्या कर दी गयी लेकिन इस बारे में बात करना मना था.

एक दिन ठीक से समोवर गर्म नहीं करने पर बूढ़ी मालकिन ने मेरी पिटाई कर दी. मेरे बदन में अनगिनत खपच्चियां और फांसें घुस गयीं. अगले दिन मुझे अस्पताल ले जाना पड़ा. डाक्टर ने उन्हें डरा दिया. उसने कहा कि वह इस जुल्म की सरकारी रिपोर्ट करेगा. घर पहुंचने पर सबने मेरा स्वागत किया. मैंने उन्हें बताया कि मैंने उनके खिलाफ शिकायत दर्ज करवाने से इंकार कर दिया था. इससे मुझे कटर की पत्नी से पुस्तकें मांगकर पढ़ने की इजाजत मिल गयी. मैं उससे किताबें लेकर रात भर पढ़ता रहता. मेरी आंखें सूज गयीं. गौनकोर्ट, ग्रीनवुड और बालजाक के उपन्यास मुझे जीवन को ठीक रूप से चित्रित किये हुए लगे. वसंत में कटर की पत्नी कहीं चली गयी मैंने खाली घर का चक्कर लगाया और उदास हो गया.

हमारे घर के निचले हिस्से में एक युवती रहती थी. साथ में एक छोटी लड़की और युवती की मा भी. युवती खूबसूरत थी और घुड़सवारी करती थी. छावनी के फौजी अफसर उसे बराबर घेरे रहते...एक दिन सांझ के समय लड़की मेरी गोद में सो गयी. मैं देने गया तो युवती स्त्री (रानी मारगोट) ने पूछा कि मैं क्या लेना पसंद करूंगा. मैंने कहा कि कोई किताब मिल जाये तो अच्छा हो. उन्होंने जो पुस्तक दी उसमें लाठी और आजादी के बीच संवाद दिलचस्प था. आजादी ने कहा, "मैं तुमसे बढ़कर हूं क्योंकि मेरे पास बुद्धि है." "मैं तुमसे बढ़कर हूं क्योंकि मैं सबल हूं," लाठी ने कहा. लाठी ने आजादी की खूब मरम्मत की...उनकी दी गयी पुश्किन की कविताओं की किताब भी मुझे अच्छी लगी. उन्होंने मुझे पुश्किन के जीवन के बारे में बताया और कहा, "देखा तुमने, किसी स्त्री से प्रेम करना कितना खतरनाक होता है?" मैंने कहा कि स्त्रियों को भी कम भुगतान नहीं करना पड़ता. उन्होंने कहा कि इस सत्य को कभी भूलना नहीं.

एक सुबह मुझे सायबान में खाली बटुआ मिला. मैंने यह बटुआ सिदरोव के पास देखा था. जब मैं उसे देने गया तो उसने उसमें से एक रूबल तीस कोपेक चुराने का आरोप लगाया. इस आरोप में मुझे वहां से निकलना पड़ा. मालिक ने कहा, "तुम भी कैसी तकदीर लेकर आये हो, पेश्कोव. करे कोई और भुगते कोई."

एक बार फिर मैं जहाज के बावर्चीघर में बरतन धोने के लिए जा पहुंचा. कोयला झोंकनेवाला याकोव दिलचस्प आदमी लगा. वह पक्का जुआरी था. एक बार उसने पत्ता-पटक खेलने के लिए बुलाया. पहले मैं आधा पौंड चीनी हारा. फिर पांच रूबल, गर्मकोट और अंत में नये जूते. उसने मुझे चार रूबल, कोट और जूते लौटा दिये. एक रूबल अपनी फीस का काट लिया और कहा कि मैं दिमाग का गर्म हूं और खिलाड़ी नहीं बन सकता.

पतझड़ के दिन बीत चले और पानी में जहाजों का चलना अब बंद हो गया. जहाज की नौकरी से अलग होकर मैंने एक कारखाने में जहां देव प्रतिमाओं को रंगा चुना जाता था, नौकरी शुरू की. मेरी मालकिन ने मुझे मुंशी के हवाले कर दिया. वह कहता ग्राहक तो काठ के उल्लू हैं. उन्हें सस्ती चीज चाहिए. गधा-घोड़ा सब बराबर.

मुंशी अक्सर ग्राहकों को पढ़ाने की कला सिखाने की कोशिश करते. प्योत्र वसीलीयेविच, लंबे कद का बूढ़ा आदमी भी कम दिलचस्प नहीं था. उसके पास किस्सों का खजाना था. वह कहता. "एक भाग्य वह है जिसे खुद फरिश्ते चांदी की नन्हीं-नन्हीं हथोड़ियों से गढ़ते हैं, और दूसरा वह जिसे शैतान अपनी कुल्हाड़ी की खुट्टल नोक से गढ़ता है."

कारखाने में मेरे जिम्मे कोई बहुत उलझनवाला काम नहीं था. मैं कारखाने का किस्सागो और पुस्तकें पढ़कर सुनानेवाला बन गया. उन दिनों मुझे लोमतोव की कविताओं की एक किताब मिल गयी. जिसने मुझे प्रभावित किया. बूढ़ा गोगोलेव दूकान के मुंशी के पास जाकर कारखाने के लोगों की चुगली करता. एक बार नशे में धुत्त बूढ़े की नाक पर सुनहरी रोगन कर दिया गया. बूढ़ा मालकिन के पास भी शिकायतें करता. सितालोव के विचारों ने पावेल को भी ग्रस लिया. वह कहता कि कुछ लोग दिन रात खून पसीना एक करके चीजें बनाते हैं, दूसरे बिना सोचे समझे उन्हें नष्ट करने की ताक में रहते हैं.

रविवार के दिन कब्रिस्तान के उस पार घूसेबाजी का खेल होता. मोरयोबिया निवासी प्रसिद्ध घूंसेबाज था. कापेनदयूखिम हमारी ओर से उसके साथ भिड़ जाता और खून और मिट्टी में रंग जाता. कई बार हारने पर उसने अपने दस्तों में सीसे के टुकड़े भर लिये. सितानोव ने उसे मना किया. वह नहीं माना. सितानोव ने खेल से पहले भंडा फोड दिया. हमारे पक्ष के लोगों ने उसे आड़े हाथों लिया. सितानोव ने मोरदोविया निवासी को ललकार कर सभी को चकित कर दिया. वह बखूबी लड़ा लेकिन उसकी दाहिनी बांह चूल से बाहर आ गयी. वह हमेशा ईमानदारी का पक्ष लेनेवाला था.

कारीगर हमेशा या तो शेखी बघारते या पश्चाताप करते अथवा किसी के सिर दोष मढ़ते नजर आते. कितनी ही चीजें थी जो जीवन में कटुता बढ़ाती थीं और जिन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता था. लेकिन कोई हाथ न हिलाता. दानीदोव खून थूकता मर गया. कोई उसे अस्पताल नहीं ले गया.

मेरे जन्म दिन पर कारीगरों ने मुझे संत अलेक्सी की एक छोटी-सी प्रतिमा भेंट की. मुंशी ने मुझे बाड़े की छत से बर्फ बटोरकर तहखाने में जमा देने को कहा. मैं फावड़े से बर्फ डालता रहा. लेकिन तहखाने का दरवाजा खोलना भूल गया. बर्फ के ढेर में दरवाजा ढूंढने की कोशिश में फावड़ा टूट गया. मुंशी ने इस पर फावड़े का टूटा हुआ माथा मेरे पांवों पर मारा.

"अहाता साफ करना मेरी नौकरी में नहीं है," मैंने कहा और जवाब में बर्फ का ढेला उसके मुंह पर दे मारा.

कई बार वह जानबूझकर रेजगारी फर्श पर गिरा देता. मैंने कहा, "रेजगारी का जाल बिछाकर तुम मुझे फांस नहीं सकते."

मुंशी की मंगेतर पावेल मुझसे ऐसी पहेलियां बूझती जिनके जवाब गंदे होते. एक दिन उसने मुझे सिखाना चाहा कि चुंबन किस तरह किया जाता है. मैंने उसे सावधान किया तो वह बिगड गयी. उसने कहा कि उसे कोई डर नहीं. इतने भारी दहेज में उसे बीस पति मिल सकते हैं.

मैंने भाग जाने का निश्चय कर लिया था. पता नहीं क्यों फारनस पहुंच जाने को मेरा मन कर रहा था कि तभी नानी की बहन के लड़के (भूतपूर्व मालिक) से भेंट हो गयी. उन्होंने मुझे मेले में मजदूरों पर निगरानी रखने का काम स्वीकार करने के लिए कहा. कारीगरों से मैंने विदा ले ली.

मेले के मैदान में बसंत की बाढ़ का पानी भरा था. मैं और मालिक नाव में जा रहे थे. मालिक मुझे बता रहा था, "यहां मेले का चौकीदार रहता है. अगर कोई अन्य चोर नजर नहीं आता, तो खुद चोरी करने लगता है."

मुर्गाबियां मारते हुए उसने मुझसे पूछा, "तुम्हारा रोजा अभी तक टूटा या नहीं." और फिर अपनी प्रेमिका के बारे में बताना शुरू किया जब कि वह तेरह वर्ष का था. उसने वह किस्सा पत्नी को नहीं पता चलने दिया था. उसका कहना था कि पत्नी ऋतु की भांति है, जिसे बदला नहीं जा सकता.

रानी मारगोटवाले फ्लैट में एक बड़ा परिवार रहता था. उनसे मुझे पुस्तकें मिलने लगीं. डिकेंस और वाल्टर स्काट के उपन्यास मैं चाव से पढ़ता. किसी से पीछे न रहने के लिए मैं भी एक लड़की से प्रेम करने लगा. कुंड की सैर करने के लिए मैं तख्ता खींचकर लाया. लेकिन तख्ते पर पांव रखते ही वह फिसल गयी. कीचड़ से लथपथ उसने समझा कि मैंने जानबूझकर धक्का दिया है और यह किस्सा खत्म हो गया.

मालिक ने अपनी सहायता के लिए मेरे सौतेले पिता को बुला लिया. घर की स्त्रियां मेरे सौतेले पिता से जली रहतीं. मुझे वह अक्सर सलाह देता, "अच्छा हो कि तुम यह जगह छोड़ दो."

"लेकिन मजदूर और कारीगर मुझे अच्छे लगते हैं."

"किस मानी में?"

"वे दिलचस्प होते हैं."

एक दो दिन वह काम पर नहीं आया. फिर एक दिन मुझे संदेश मिला. पिता अस्पताल में था. मेरे पहुंचने पर वह बुरी तरह छटपटाया और खत्म हो गया.

रोज सुबह छः बजे मैं मेले के मैदान की ओर चल देता. वहां कुछ दिलचस्प लोग थे. ओसिप जिसकी जुबान छुरी की भांति तेज थी, शिशिलन जो कि पलास्तरसाज था, मेरा मालिक उन्हें और वे मेरे मालिक को धोखा देने के लिए कड़वी-मीठी बातों का सहारा लेते. मैं उन लोगों को अपने से बड़ा और ज्ञान का धनी समझता था, जो मेरे लिए दुर्लभ था. फिर भी मुझे उन पर चौकसी करनी पड़ती, मानो वे चोर हों.

शिशिलन की पत्नी देहात में रहती थी. गरीबी में जकड़े उस समाज की स्त्रियां कुछ फालतू आय के लिए खिलौना बनने को तैयार थीं. लेकिन वह चुपचाप निकल जाता. पूछे जाने पर उसने कहा, "अगर पति इधर उधर मुंह मारता है तो पत्नी इसका हमेशा पता लगा लेती है."

मेरा मालिक खुराक के लिए मुझे पांच कोपेक देता. इतने में मैं अक्सर भूखा रह जाता. ओसिप मुझे कहता, "कोई रोटी खाता है और तुम पुस्तकें खाते हो."

शिशिलिन पीने का आदी नहीं था. थोड़ी पीकर कहता, "मेरे भाइयो, हमसे जो बनता है, थोड़ा-बहुत काम कर लेते हैं और इतना भोजन मिल जाता है कि भूखों मरने की नौबत नहीं आती."

मैंने उन लोगों को बताया कि मेरे पास बढ़ई लोगों के बारे में एक किताब है...किताब सुनकर रंगसाज ने कहा, "इन लेखकों के पास कुछ काम तो है नहीं, सो दूसरों की आंख में उंगली डालते फिरते हैं."

ओसिप चालीस साल तक जमींदारों का बंधक रहा था. उसने कहा कि कोड़ों की मार ने उसकी चमड़ी पर जो लिखावट लिखी है, वह क्या किसी किताब से कम है? फिर उसने कहा, "जमींदार और दहकान में भारी अंतर नहीं होता. हम दोनों एक हैं, सिवा इसके कि वह ऊंचाई पर है और अपनी किताबों से सीखता है, और मैं अपनी कमर पर पड़े निशानों से."

■ लुनाचार्स्की व गोर्की : मास्को, 1929

■ समकालीनों की दृष्टि में गोर्की

आदर्शों के प्रति अटूट विश्वास

■ लुनाचार्स्की

सोवियत सरकार के सार्वजनिक शिक्षा के प्रथम जन-कमिसार तथा प्रमुख मार्क्सवादी सिद्धांतकार अनातोली लुनाचार्स्की मैक्सिम गोर्की के अभिन्न मित्रों में थे. यहां प्रस्तुत है गोर्की के संबंध में उनके कुछ विचार

मैक्सिम गोर्की की सबसे बड़ी विशेषता उनके जीवन की गतिशील दिशा थी, जो धरातल से या यों कहिए कि रूसी समाज की क्रांति-पूर्व की सबसे निचली अवस्था से प्रारंभ होकर शीर्ष तक गयी है. विश्व-इतिहास में बहुत ही कम लोगों ने यह अनुभव प्राप्त किया है. मैक्सिम गोर्की का जन्म एक श्रमिक वर्ग के परिवार में हुआ, कालांतर में वे अधिक गहरायी तक गये; लगभग अधिक गहरे धरातल तक, जिसका उन्होंने अपनी कृतियों में अत्यधिक ओजपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है. उन्होंने शारीरिक श्रम के अत्यधिक कठोर स्वरूप का अनुभव किया था. उन्हें इस बात की जानकारी थी कि बेरोजगार रहना और आशा की बिना एक भी किरण के जीवन व्यतीत करना कैसा होता है. उन्होंने अपनी कष्टसाध्य युवावस्था में भूख, अपमान तथा प्रतारणाओं का भी अनुभव किया था. इसके बाद उन्होंने प्रगति की, जैसे वे अपने पंखों के सहारे हो गये और विश्व-ख्याति की दिशा में एक वज्र की भांति तेजी से बढ़े और अब हमारे देश के सर्वहारा वर्ग ने विश्व की प्रतिध्वनि के अनुसार उन्हें अपने अत्यधिक प्रिय लेखक के रूप में घोषित कर दिया है और वे अब महान प्रवक्ता हो गये.

वस्तुत: तलछट के अनुभव से उन्हें अधिकांश मानवजाति द्वारा जिये जा रहे अधिक दमनात्मक-जीवन का पूर्ण ज्ञान था...और जिस जीवन को पूर्व जारशाही रूस की अधिकांश जनता जी रही थी. उन्होंने इसके समूचे कड़वेपन और अशिष्टता को अनुभव किया : अपने समीप के हजारों-लाखों लोगों द्वारा अनुभव किये जा रहे इसी तरह के उदाहरण का प्रत्यक्ष जायजा लिया. मैक्सिम गोर्की में उनके बचपन से ही मानव के प्रति कटुता ओर अत्याचार के विरुद्ध जो भावना पैदा हो रही थी, वह अधिक प्रमुखता के साथ प्रस्तुत हुई है. उन्होंने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि इस तरह का विषाक्त वातावरण कैसे विकसित हुआ, जो अन्य परिस्थितियों में श्रेष्ठ लोगों को पैदा कर सकता है. उन्होंने यह भी देखा कि उनकी इच्छाएं किस प्रकार खंडित हुईं, किस प्रकार मानव-प्रतिरूप समाप्त हो सकता है.

गोर्की की कृतियों में निराशा और अन्याय की भावना प्रमुखता के साथ चित्रित है. विश्व के प्रति उनका प्रत्यक्ष ज्ञानबोध गहन, भयाक्रांत तथा घृणास्पद था. लेकिन इसके प्रतिकूल मानव की खुशहाली व उसके आदर्श के प्रति उनका विश्वास अभूतपूर्व था.□

■ **प्रस्तुति—उदयनारायण सिंह**

याकोव की भांति ओसिप भी मेरे अंतर्मन की गहराइयों में समा गया. रविवार के दिन मैं शहर से दूर 'लखपति बाजार' पहुंच जाता. ओसिप के साथ में एक बार —'इंद्रपुरी' में टकियल वेश्याओं के काठ बाजार में गया, जहां अंधेरी और गंदी कोठरी में मैंने एक नंगी तातार लड़की खड़ी देखी. लखपति बाजार में जीवन धारा से छिटके हुए लोग बसते थे. ओसिप ने वहां जाने से मुझे मना किया. उसकी राय थी कि वहां जाने के बाद सीधे जेल या अस्पताल की हवा खानी पड़ती है. जाड़ों के दिनों में मेले के मैदान का काम लगभग खत्म हो चुका था. मालिक मुझसे कहता था कि मेरी शिक्षा का बाकायदा प्रबंध होना चाहिए था, लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है...रविवार की रात कहवाघर पहुंच जाता. वहां क्लेश्चोव बढ़िया गाता था. वह कहता कि गाना तो सभी गा सकते हैं जिनके पास गला है, लेकिन उसकी आत्मा को वही व्यक्त कर सकता है. कारखाने के मालिक से उसने साफ कहा कि गाना मुर्गों की दंगल नहीं है.

मालिक से पता चला कि ओसिप मेरी सभी बातें उन्हें बता देता है. उन्होंने कहा कि मैं उन लोगों का सुधार करना चाहता हूं लेकिन मेरे द्वारा दी गयी सत्य की दुहाई वहां कोई नहीं सुनेगा. उस मुर्दा नगर में तीन गर्मियां बीत गयीं. मालिक पांच रूबल महीने के बदले जान तक निचोड़ने की ताक में था. मजदूर कारीगर जब भी मौका मिलता आंख बचाकर कुछ न कुछ उड़ा ले जाते. मेला उठ जाने पर मालिक दुकानों का चक्कर लगाता. दुकानदारों की पीछे छूटी चीजों को गोदाम में पहुंचा देने को कहता. फिर उनमें से कुछ चीजें घर ले जाता.

ओसिप से मैंने पूछा कि मेरी सारी बातें मालिक को क्यों बताता है? उसने कहा कि मालिक को सब मालूम होना चाहिए कि मेरे दिमाग में क्या फितूर भरे हैं.

अभी पंद्रहवें वर्ष में ही मैंने पांव रखा था, लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता कि मैं काफी बड़ा हो गया हूं. मेरे दिमाग का कोठा उस अंधे गोदाम की भांति था जिसमें दुनिया भर की चीजें भरी थीं, जिन्हें छांटने और करीने से रखने की मुझमें सकत न थी.

उन दिनों एक पोर्टर को मैंने पीट डाला. वह एक लड़की को टांगों से पकड़कर ठेला गाड़ी की भांति खींचता हुआ ले जा रहा था. इस घटना के बाद उस पोर्टर ने कई बार मुझे धमकाया और पिट गया. फिर उसने मुझसे पूछा कि क्या मुझे लड़की पर तरस आ गया था. मेरे हां कहने पर उसने पूछा कि क्या मुझे लड़की पर तरस आ गया था. मेरे हां कहने पर उसने पूछा कि क्या मुझे बिल्लियों पर भी तरस आता है?

मैंने कहा, "हां."

कुछ दिनों बाद उसने एक बिल्ली को जोर से खंभे से मारकर मेरे पांव पर पटक दिया. मैं फिर उससे भिड़ गया. यह मेरे जीवन की भयानकताओं में से एक थी.

इधर चाचा याकोव से मेरी अच्छी बातचीत हुई. मैंने कहा, "जीने का ढंग और ढब मैं भी नहीं जानता. जीना एक पुरानी आदत है, जिससे पीछा नहीं छूटता." चाचा के गांव जाने के बाद मैंने सोचा, 'अगर मैं कुछ नहीं करता तो खत्म हो जाऊंगा.'

मैं कजान के लिए रवाना हो गया कि वहां अध्ययन करने का कोई न कोई साधन निकल ही आयेगा. □

• **संक्षिप्त रूपांतर : तरसेम गुजराल**

■ गोर्की की कथा रचनाएं : पांच

भंडाफोड़

प्रतिशोधपूर्ण न्याय का जो चित्र मैंने यहां दिया है यह मेरी कल्पना की देन नहीं है. नहीं! नहीं! दुर्भाग्यवश यह कोई मनगढ़ंत किस्सा या किंवदंति भी नहीं है. यह जीवन से लिया गया चित्र है जिसे मैंने स्वयं 15 जुलाई, 1891 के दिन निकोलायेवस्की जिले के खेरसोन गुबर्निया के कांदीबोवका गांव में स्वयं अपनी आंखों से देखा था.—रूस में व्याप्त एक ऐसी कुप्रथा का आंखों देखा हाल जिसने गोर्की को विचलित कर दिया—

जोर-जोर से चीखते-चिल्लाते लोगों का हुजूम गांव की सड़क के दोनों ओर बने सफेदी-पुते मकानों को पीछे छोड़ता बढ़ा चला जा रहा था. धीमी गति से आगे बढ़ रहे इस मजमे के आगे-आगे एक मरियल-सा घोड़ा सिर झुकाये चल रहा था. घोड़ा जब भी अपना अगला पांव उठाता उसका सिर कुछ इस तरह डुबकी खाता मानो वह अभी मुंह के बल आगे की ओर गिर पड़ेगा और उसकी थूथनी सड़क की धूल चाटती नजर आयेगी. और जब वह अपने पिछले पांव को हरकत में लाता तो उसका पृष्ठ भाग इस तरह डगमगाता मानो वह अभी ढेर हो जायेगा.

एक मादरजात बीस वर्षीय ठिगनी-सी युवा स्त्री को कलाइयों से गाड़ी के डैशबोर्ड में ठीक गाड़ीवान के सामने वाले तख्ते से बांधा गया था. वह गाड़ी के बगल-बगल चल रही थी. उसके घुटने कांप रहे थे. काले और अस्त-व्यस्त बालों से घिरा उसका सिर ऊपर की ओर उठा हुआ था और फटे दीदे सूनी अमानवीय दृष्टि से शून्य में ताक रहे थे. उसका बदन काली और नीली

धारियों से, निशानों से भरा था, कुमारी कन्याओं-सी उसकी बायीं छाती में गहरा घाव था और उसमें से खून की धार निकल रही थी, खून की एक लाल लकीर उसके पेट के ऊपर से होती हुई नीचे बायीं टांग के घुटने तक खिंची थी और उसकी नाजुक टांगों की पिंडलियों पर धूल के थक्के चढ़े थे. ऐसा लगता था जैसे उस स्त्री के शरीर से खाल की एक लंबी डोरी उतार ली गयी हो. उसका बदरंग और सूजा हुआ पेट इस बात का जीता-जागता प्रमाण था कि उसे निश्चित रूप से मुंगरी से पीटा या जूते की एड़ियों से रौंदा गया था.

स्त्री के लिए भूरी धूल में एक से दूसरा डग घसीटना मुश्किल हो रहा था. उसका समूचा बदन ऐंठ रहा था. बदन की ही तरह चोटों और खरोंचों से भरी उसकी टांगें कैसे उसका बोझ संभाले थीं, कैसे वह केवल कुहनियों के बल अपने आप को घिसटने से बचाए हुए थी यह देखकर आश्चर्य हो रहा था.

सफेद रंग की रूसी बंडी और काले रंग की अस्त्राखानी टोपी पहने लंबे कद का एक देहाती गाड़ी में खड़ा था. टोपी के नीचे से चटक रंग के लाल बालों का एक गुच्छा उसके माथे पर झूल रहा था. देहाती एक हाथ में घोड़े की लगाम और दूसरे हाथ में एक हंटर थामे था जिसे वह बाकायदा पहले घोड़े पर और फिर छोटे कद की उस स्त्री पर झटकार रहा था. स्त्री इससे पहले ही इतनी मार खा चुकी थी कि पहचानी ही नहीं जा रही थी. देहाती की आंखें अंगारा बनी हुई थीं, उनमें प्रतिशोध की विजयी भावना की चमक थी जिसमें उसके बाल हरी परछाइयां डाल रहे थे. बंडी की आस्तीन ऊपर तक चढ़ी होने से उसकी लाल रोएंदार मांसल बांहें साफ दिखाई दे रही थीं. उसका मुंह खुला था जिससे सफेद पैने दांतों की दो पांतें चमक रही थीं. देहाती रह-रहकर बैठी हुई आवाज में चिल्ला उठता था. "ले, यह ले कुतिया! हा-हा-हा! और ले, यह और ले!"

स्त्री और गाड़ी के पीछे लोगों की भीड़ चीखती, चिल्लाती, हंसती, आवाजें कसती, सीटी बजाती, कोंचती-उकसाती, खिल्लियां उड़ाती चल रही थी. बच्चे इधर से उधर लपक-झपक रहे थे. कभी-कभी उनमें से कोई एक दौड़कर आगे आकर स्त्री पर अपशब्दों की बौछार करता और बाकी भीड़ ठहाका मारकर इसका आनंद लेती. भीड़ पर छाये हंसी के उस दौर में हंटर हवा में सनसनाने की पतली आवाज गुम हो-हो जाती. भीड़ में सम्मिलित स्त्रियों के चेहरे असाधारण उछाह से लहरा रहे थे और उनकी आंखें प्रसन्नता से चमक रही थीं. पुरुष गाड़ी में खड़े देहाती को लक्ष्य कर चिल्ला-चिल्लाकर अश्लील बातें बोल रहे थे, जवाब में देहाती भट्ठ-सा पूरा मुंह बाये, उनकी ओर मुड़-मुड़कर हंस रहा था

सहसा हंटर सनसनाकर स्त्री के शरीर से टकराया. लंबे और पतले हंटर ने उसके कंधों का चक्कर काटा और बांहों के नीचे की चमड़ी में धंस गया. तभी अचानक देहाती ने एक झटका दिया फलस्वरूप स्त्री एक तेज चीख मारकर पीठ के बल धूल में गिर पड़ी. उसके गिरते ही भीड़ के लोग उछलकर आगे बढ़े और उन्होंने उसके इर्द-गिर्द झुक कर उसे ढक-सा लिया.

घोड़ा क्षण-भर को ठिठककर खड़ा हो गया मगर दूसरे ही क्षण वह फिर डगमगाता-सा लुढ़क चला और वह लांछित स्त्री भी उसके पीछे-पीछे घिसटने लगी. घोड़ा रह-रहकर अपने कोढ़ियल सिर को इस तरह हिलाता मानो कह रहा हो- 'घोड़ा होना भी कितने दुर्भाग्य की बात है कि लोग उसे अपने किसी भी घिनौने काम में जोत देते हैं!'

आकाश-दक्खिनी आकाश-एकदम स्वच्छ और साफ था. बादलों का कहीं चिह्न भी नजर नहीं आ रहा था और सूरज जी खोलकर धरती पर अपनी गर्म किरणों की बौछार कर रहा था.

प्रतिशोधपूर्ण न्याय का जो चित्र मैंने यहां दिया है यह मेरी कल्पना की देन नहीं है. नहीं! नहीं! दुर्भाग्यवश यह कोई मनगढ़ंत किस्सा या किंवदंति भी नहीं है. इस न्याय-विधान को 'भंडाफोड़' कहा जाता है और इसके द्वारा पति अपनी विश्वासघातिनी कुलटा स्त्रियों को दंडित करते हैं. यह जीवन से लिया गया चित्र है. यह उन प्रथाओं में से एक है जो हमारे यहां प्रचलित हैं और इसे 15 जुलाई, 1891 के दिन, निकोलायेवस्की जिला के खेरसोन गुबर्निया के कांदीबोवका गांव में मैंने खुद अपनी आंखों से देखा था.

अपने जन्म प्रदेश वोल्गा में मैंने यह सुना अवश्य था कि पतियों के साथ विश्वासघात करनेवाली पत्नियों को नंगा करके उनके बदन पर कोलतार पोता जाता है और पंख चिपका दिये जाते हैं. यह भी मैं जानता था कि कुछ अधिक सूझ-बूझवाले पति और ससुर और भी आगे बढ़कर विश्वासघात करनेवाली पत्नियों पर गर्मियों के दिनों में शीरा पोतकर उन्हें पेड़ों से बांध देते हैं और कीड़े-मकोड़े काट-काटकर उनके बदन में घाव कर डालते हैं. कभी-कभी ऐसी स्त्रियों के हाथ-पांव बांधकर उन्हें चींटियों-दीमकों की बांबियों के पास डाल दिया जाता है.

लेकिन वह सब मैंने सुना भर था. मगर अब अपनी आंखों से यह अमानवीय दृश्य देखकर मेरी यह धारणा पुख्ता हो चली थी कि ऐसे जाहिल और हृदयहीन लोगों के बीच ऐसा होना सचमुच संभव है जिन्हें 'कुत्ता कुत्ते को खाये' वाली जीवन प्रणाली ने लालच और ईर्ष्या से धधकते जंगली जानवरों में परिवर्तित कर दिया है! □

—प्रस्तुति : कांता चौधरी

■ गोर्की के विचार

कहावत का जन्म

मैंने लोकोक्तियों या दूसरे शब्दों में सूक्तियों के रूप में चिंतन करके बहुत कुछ सीखा है. मुझे वह घटना याद आती है. मेरा यार याकोव सोल्दातोव चौकीदार था और मजाक उसे इतने ही पसंद थे जितने दूसरे लोगों को. एक दिन वह नयी झाड़ू से सड़क बुहार रहा था. याकोव ने मेरी ओर ताका, आंख मारी और बोला, "झाड़ू बढ़िया पाई, किंतु न पूरी करे सफाई, हम तो सड़क बुहारें, पड़ोसी लाकर कूड़ा डालें."

मैंने देखा कि उसने बात सच कही है. अगर पड़ोस वाले सड़क का अपना भाग ठीक रखें तो भी हवा आसपास की गलियों से गर्द उड़ा ही लायेगी. अगर शहर की सारी सड़कें साफ कर दी जायें तो भी गर्द के बादल खेतों और आसपास की सड़कों या पड़ोस के शहरों से उड़ आयेंगे. अवश्य ही आदमी को अपने घर के आसपास का इलाका साफ रखना चाहिये. परंतु अगर पूरी गली, पूरे शहर और समस्त संसार में ऐसा ही किया जाये, तो आदमी का श्रम अधिक कारगर होगा. इसी ढंग से कहावतों को खोलकर रखा जाता है. कहावत का जन्म किस प्रकार होता है, इसका एक उदाहरण यह है. एक बार जब नीज्नी नोवगोरोद में हैजा फैला तो वहां के किसी आदमी ने यह अफवाह उड़ाई कि डाक्टर रोगियों को मार देते हैं. गवर्नर बरानोव ने उसकी गिरफ्तारी का आदेश दिया और उसे अस्पताल में हैजे के रोगियों की सेवा करने के लिए भेज दिया. कहा जाता है कि कुछ दिन बाद उस व्यक्ति ने गवर्नर को उत्तर दिया, "जब सच्चाई से सिर टकराता है तो आदमी झूठ नहीं बोल पाता है."

बरानोव जरा अक्खड़, पर बेवकूफ आदमी नहीं था और मेरा ख्याल है कि इस तरह की बातें कह सकता था. फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि यह किसने कहा था? □

('मैंने लिखना कैसे सीखा' निबंध से)

प्रस्तुति : अ.पा.

गोर्की और सोवियत सिनेमा

फिल्मी परदे पर गोर्की का कथा-संसार

■ सुरेंद्र मनन

सन् 1895 के अंत में, पेरिस में, सर्वप्रथम सिनेमा का सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ.

1896 में गोर्की का एक पत्र 'ओडेसा न्यूज' में प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने तकनीक के इस नये आविष्कार और आने वाले समय में जनता पर सिनेमा के व्यापक प्रभाव की चर्चा की थी. चलचित्र की इस खोज में उन्होंने अपार संभावनाएं देखते हुए अपने पत्र में इस बात पर जोर दिया था कि चलचित्र को विज्ञान और प्रगति में निश्चय ही सहायक होना चाहिए. इस कला का उपयोग विकास कार्यों के लिए किया जाना चाहिए.

गोर्की की यह दूरअंदेशी दरअसल कला के इस नये विकसित रूप से गहरी संबद्धता जाहिर करती है. गोर्की ही नहीं, जनजीवन से निकट से जुड़े अन्य अनेक संस्कृतिकर्मियों ने भी सिनेमा की शक्ति की पहचान और कला के इस गतिशील रूप की सार्थक भूमिका निश्चित करने की दिशा में प्रयास किए. यही कारण था कि प्रारंभिक सोवियत सिनेमा का नेतृत्व करने वाले लोग विभिन्न कला रूपों-रंगमंच, चित्रकला, साहित्य आदि से संबंधित थे. रूसी क्रांति के बाद के दौर में जन-जीवन, सामाजिक संबंधों और कर्मव्यवहार में ही नये तत्वों का समावेश नहीं हुआ बल्कि कला के क्षेत्र में भी वह एक निर्णायक दौर था. दूसरे दशक में, सोवियत सिनेमा के इतिहास में, उत्कृष्ठ कलाकृतियों का सृजन किया गया. उनका कलात्मक महत्व आज भी कम नहीं हुआ.

सोवियत सिनेमा के विकास में गोर्की का योगदान अविस्मरणीय है. यह एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है. गोर्की के अधिकांश अग्रज, और समकालीन भी, अपनी तमाम वैचारिक और कलात्मक उपलब्धियों के बावजूद अपने रचनात्मक कर्म में आलोचनात्मक यथार्थवाद की परिधि में ही कमोबेश सीमित थे. वे अपनी कलात्मक रुचियों और संवेदनाओं को जीवन के सकारात्मक तत्वों पर पूरी तरह से केंद्रित नहीं कर पाये—जो वास्तव में इतिहास के हर दौर में विद्यमान रहते हैं. जबकि एक व्यक्ति, एक रचनाकार, एक पत्रकार, एक सामाजिक के रूप में गोर्की की तमाम गतिविधियां, नयी ऐतिहासिक स्थितियां में इसी ओर अभिमुख है. इसीलिए उनकी कृतियों पर बनी फिल्मों ने सोवियत कला के विकास और समाजवादी यथार्थवादी की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की. इन फिल्मों ने लंबे समय तक सोवियत सिनेमा के विकास में दिशा निर्देश किया.

गोर्की के विश्वप्रसिद्ध उपन्यास 'मां' को 1926 में फिल्माया गया. निर्देशक पुदोवकिन की यह महत्वाकांक्षी फिल्म थी जिससे उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई. 'मां' फिल्म को उत्कृष्ट कलाकृति का दर्जा दिया गया और फिल्म इतिहास में इसे एक 'क्लासिक' माना गया. फिल्म में, जारशाही रूस में एक पददलित स्त्री की क्रमशः विकसित होती सामाजिक चेतना को बड़े प्रामाणिक ढंग से फिल्माया गया है. वह एक ऐसी स्त्री है जिसने सारी उम्र जुल्म सहते गुजारी लेकिन वही जीवन के अंतिम दिनों में मजदूरों के एक जुलूस का नेतृत्व करती है. रूसी क्रांतिकारी मजदूरों के जीवंत चित्र इस फिल्म की विशेष उपलब्धि हैं. फ्रांस के एक फिल्मकार ने टिप्पणी की थी कि यह फिल्म अन्य देशों की अनेक फिल्मों को पीछे छोड़ जाती है. इटली के निर्देशक विसकोंती के अनुसार 'मां' जैसी फिल्म वह धुरी है जिसके गिर्द सिनेमा में यथार्थवाद घूमता है. इसी प्रकार प्रसिद्ध जापानी निर्देशक इवासाकी ने कहा कि यह फिल्म सोवियत क्रांतिकारी सिनेमा का शिखर है और साथ ही मूक फिल्मों के युग की एक उत्कृष्ट कलाकृति है.

दूसरे दशक में गोर्की की आत्मकथा के तीन खंडों—'मेरा बचपन', 'जनता के बीच' और 'मेरे विश्वविद्यालय' को पटकथा में रूपांतरित किया गया. यह तीनों फिल्में मार्कदोंसकोये द्वारा निर्देशित की गयीं और विश्व प्रसिद्ध हुईं. क्रांतिपूर्ण रूस के जन जीवन और उस समय के सामाजिक तनाव का व्यापक चित्रण इन फिल्मों में हुआ. इस फिल्म-त्रयी में एक ऐसे बच्चे के जरिये, जो अपने मां-बाप खो चुका है, एक नाबालिग और फिर युवक के माध्यम से अमीरी-गरीबी, अच्छाई-बुराई और जीवन की जटिलता को बड़े ही तीक्ष्ण ढंग से एक दार्शनिक, त्रासद गहराई के साथ व्यक्त किया गया है. 'मेरा बचपन' के बारे में फ्रांसीसी प्रेस में चर्चा की गयी कि इस फिल्म में मार्क इस जीवंत और गीतात्मक

'मां' फिल्म के दो नाटकीय दृश्य

गोर्की की महान कृति 'मां' पर १९२६ में फिल्म बनी थी. तब से उनकी आत्मकथा के खंडों तथा अन्य रचनाओं पर कई फिल्में बनी हैं. प्रस्तुत है इन्हीं फिल्मों का एक आकलन

माहौल को चित्रित कर पाने में सफल रहे हैं जिसका वर्णन गोर्की ने अपनी रचना में किया. यह गीतात्मकता ही 'जीवन में अन्याय, बुराई' की प्रतिकारण शक्ति है. जर्मन प्रेस ने लिखा कि फिल्म के अभिनेताओं और निर्देशक द्वारा रचे गये सिनेपात्र गरीबी, दरिद्रता, दुख में आकंठ डूबे हैं. लेकिन इस निराशा के बावजूद व मनुष्य में विश्वास की भावना जगाते हैं. 'जनता के बीच' का नायक एलेक्सी बहुत-सी विषम और कटु परिस्थितियां का सामना करना है लेकिन अपनी ईमानदारी, ऊंचे आदर्शों प्रेम, आम जनता के प्रति सहानुभूति से विचलित नहीं होता. उसके अनुभव उसके व्यक्तित्व को और भी मजबूत बनाते हैं. स्वीडन प्रेस ने लिखा है कि यह एक महान फिल्म है. उपन्यास की ही तरह फिल्म एक एपिक है. इसके सभी चरित्र जीते जागते और संपर्ण परिवेश प्रामाणिक है.

'मेरे विश्व विद्यालय' में एलेक्सी एक छात्र है, पेतन्योव के साथ वह एक कमरे में रहता है. पेतन्योव एक क्रांतिकारी है. जल्द ही पुलिस उसे पकड़ ले जाती है और एलेक्सी बेघर हो जाता है. यहीं वह राजनैतिक आंदोलन के संपर्क में आता है. जारशाही के विरुद्ध वह मजदूरों को संगठित करता है. उसे एक बे काम भी मिल जाता है लेकिन मालिक द्वारा मजदूरों पर किए जा रहे अत्याचार का विरोध करने पर उसे निकाल दिया जाता है. अत्यंत कष्टदायी स्थितियों और असहनीय तनाव के कारण वह आत्महत्या करना चाहता है लेकिन बेकरी के उसके साथी उसे दमन के खिलाफ लड़ने का हौसला और इरादा देते हैं.

गोर्की की कहानियों पर आधारित एक अन्य बहुचर्चित फिल्म 'एक बस्ती बंजारों की' है. 24वेंसेन सेबेस्तियन अंरराष्ट्रीय फिल्मोत्सव में इस 'फिल्म' को 'गोल्डन शेल' प्राप्त हुआ. फिल्म का कथानक बंजारों के जीवन को लेकर बुना गया है. बेसबिंया की अनंत दूरियों में एक बंजारा टोला घूम रहा है. उनमें एक बहुत सुंदर और आकर्षक बंजारिन राडा भी है. घोड़े चुराने वाले लुयकु को उससे प्रेम हो जाता है लेकिन उसका एक पुराना मित्र लुयकु को समझाता है कि पैसे और स्त्री से प्यार करो—यह भ्रांत है. दुनिया भर की शराबों में सबसे असरदार-स्वतंत्रता है. लेकिन लुयकु उसकी सलाह पर ध्यान नहीं देता. वह पैसे से प्यार करता है और इसके लिए घोड़े चुराकर बेचता है. अंत में उसे पकड़ लिया जाता है लुयकु का मित्र अपनी जान की कीमत पर उसे बचा लेता है. शोकाकुल लुयकु राड़ा के टीले में आता है. राड़ा बहुत गर्वीली और दंभी है. सबके बीच वह लुयकु को अपमानित करती है. और कहती है कि प्रणय निवेदन में लुयकु सबकी उपस्थिति में उसने सामने झुके. लुयके के लिए यह असहनीय है. वह राडा के चाकू घोंप देता है. बदले में वह राडा के पिता के हाथों मारा जाता है.

यह फिल्म लोत्यान द्वारा निर्देशित की गयी थी. बंजारों की संस्कृति और स्वतंत्रता तथा भावप्रणव प्रेम का यह एक आत्मीय चित्र है. तीसरे दशक में गोर्की की अन्य अनेक रचनाएं फिल्माई गयीं. इनमें 'शत्रु' (निर्देशक—अलेक्सेंद्र इवानोवस्की) 'आर्तामानवज' (निर्देशक ग्रिगोरी रीशल) आदि प्रमुख हैं. इन फिल्मों ने ही सोवियत सिनेमा के विकास की आधार भूमि तैयार की है. □

■ समकालीनों की दृष्टि में गोर्की

'क्लोज-अप' में दर्ज गोर्की

□ सर्जेइ आइसेंस्टीन

आइसेंस्टीन रूसी सिनेमा के पितामह कहे जाते हैं. सर्वहारा के सिनेमा की नींव उन्होंने ही रखी थी. 'स्ट्राइक', 'ग्रेट अक्टूबर' और 'बैटलशिप पोटेमकिन' जैसी फिल्मों ने फिल्मों की शैली को एक नया मुहावरा दिया. रंगों के प्रयोग के लिए उनकी फिल्म 'इवान द टैरीबल' आज भी याद की जाती है. हालांकि गोर्की की रचनाओं पर आइसंस्टीन ने कोई फिल्म नहीं बनायी लेकिन रचनात्मक स्तर पर दोनों एक दूसरे के काफी निकट हैं.

गोर्की के जीवन के अंतिम वर्षों में मैं कई बार उनसे मिला. वे मुलाकातें सचमुच कभी भुलाई नहीं जा सकतीं. बहुत विचारोत्तेजक और घनिष्ठ मुलाकातें थीं वे. अब तो उन यादों को मैंने और भी संजोकर रखा है क्योंकि उन्हें दुहराने का अवसर अब नहीं मिल सकेगा. गोर्की की रुचियां कितनी विविध थीं. किसी शत्रु या विश्वासघाती व्यक्ति के बारे में बातें करते समय कितनी सरलता से वे व्यंग्य कसते थे. और कभी-कभी तो अत्यंत कटु भी हो जाते थे. जीवन के किसी भी तथ्य, घटना को चित्रित करने में—उसके विशिष्ट और अभिलक्षक रूपकों की पहचान कर पाने में उन्हें कैसा कमाल हासिल था. ऐसे व्यक्तियों से अपने निजी संबंधों की यादों का कितना विशाल भंडार उनके पास था, जो हमारी पीढ़ी के लिए क्लासिक हैं. लोकगीतों का उनका ज्ञान कितना आश्चर्यजनक था!

सर्वहारा के इस महानतम लेखक की ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें मैं कभी भूल नहीं पाऊंगा.

लेकिन यहां मैं गोर्की की उस विशेषता के बारे में चर्चा करना चाहूंगा जो हमारे युग की कलात्मक विनयशीलता के संदर्भ में अत्यंत महत्व की है, यह विशेषता, रचनात्मक विचारों के उस असाधारण दिवंगत व्यक्ति की विस्मयकारी विनम्रता है.

यह कोई आडंबर न होकर उनकी जन्मजात विशेषता थी. व्यक्ति रचनाकार, कलाकार गोर्की की बहुमूल्य विशेषता. उनकी विनम्रता वास्तव में उनकी रचनात्मक ईमानदारी और जिम्मेदारी की भावना का अविभाज्य अंग थी. और गोर्की की यह विशेषता मेरे मस्तिष्क में एक विशाल 'क्लोज-अप' की भांति सुरक्षित हो चुकी है.

सन 1934 की गर्मियों की बात है. गोर्की के कुछ अंतरंग मित्र उनके यहां इकट्ठा हुए थे. बातचीत गृहयुद्ध के दिनों की हो रही थी. गोर्की, उस दौर में बेघर हुए बच्चों की शिक्षा और एक फिल्म-सिनेरियो तैयार करने की अपनी योजना के बारे में बता रहे थे (पटकथा-अपराधी). जो फिल्में इस विषय पर बनी थीं, उन्हें लेकर गोर्की बहुत असंतुष्ट थे. लेकिन असहमति के बावजूद इन फिल्मों की आलोचना करने की बजाय वह खुद एक अलग किस्म का काम करना चाहते थे. तभी मैं उनकी उस भव्य विशेषता को पहचान पाया जो एकदम मन को छू लेने वाली थी. हम नवयुवक, जो उनकी प्रतिभा के कायल थे, यह महसूस करते हुए बेचैनी और उत्साह से अधीर हो रहे थे कि इस महान सर्जक ने अपनी नयी रचना सुनाने के लिए हमें चुना है. स्वयं गोर्की हमसे भी ज्यादा उत्तेजित थे. अपनी धीर गंभीर लेकिन गूंजती आवाज में पांडुलिपि पढ़ने से पहले उन्होंने पन्नों को उंगलियों में दबाया. गोर्की जो विश्वकीर्ति के लेखक थे और आज के क्लासिक, उनकी उंगलियां उत्तेजना से कांप रही थीं. उन क्षणों की उत्तेजना, जब वे अपनी कृति से अलग हो रहे थे, वे क्षण जब हमारे जरिये वह कृति लाखों पाठकों, श्रोताओं तक पहुंच रही थी...वास्तव में उस गहरी जिम्मेदारी का अविस्मरणीय उदाहरण थी जिसे वह सच्चा कलाकार अपने हर रचनात्मक प्रयास के समय शिद्दत से महसूस करता था.

किसी प्रकार की तुलना करके मैं इस विशेषता पर जोर नहीं देना चाहता. हमारे आसपास और हमारे ही बीच ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं. अनेक ऐसे उदाहरण भी हैं कि रूसी जनता—जिसके लिए हम लोगों ने अपना हर कर्म, प्रयास समर्पित किये हैं और ऐतिहासिक विजयों की ओर बढ़ रहे हैं—उस जनता के प्रति हमारा प्यार पर्याप्त रूप से गहरा और सच्चा नहीं है. पांडुलिपि के पन्नों को पकड़े गोर्की की कांपती उंगलियां हमें याद दिलाती हैं कि एक सच्चे कलाकार में ईमानदारी और विनम्रता इस तरह से अविभाज्य है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता.

इस संबंध में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन मैं अपनी बात संक्षिप्त करना चाहूंगा—जैसे बेलोशियन स्टेशन पर गोर्की ने अपना भाषण बीच में ही छोड़ दिया था. वहां हजारों लोग गोर्की का स्वागत करने के लिए इकट्ठे हुए थे जो अरसे बाद विदेश से घर लौटे थे. ''मैं बोल नहीं पाऊंगा,'' गोर्की ने तब आंखों में आंसू भरकर कहा था, ''मैं लिखूंगा....''

हां, लिखने के सिवाय कोई चारा नहीं—जब हम अत्यंत दुख के साथ यह महसूस करते हैं कि गोर्की के साथ अब बातें नहीं कर पायेंगे. लेकिन उनकी आवाज, उनकी रचनाओं में युगों तक गूंजती रहेगी. □

प्रस्तुति : सुरेंद्र मनन

■ गोर्की की कथा रचनाएं : छः

एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी

बड़े दिन की कहानियों में एक छोटे गरीब लड़के और एक छोटी गरीब लड़की के बर्फ-पाले में जमकर मर जाने के किस्से तो ढेरों लिखे गये हैं चूंकि सभी लेखक धनी बच्चों के मनोरंजन के लिए ऐसे किस्से लिखते रहे हैं... मगर याहं प्रस्तुत है गोर्की की वह अद्वितीय कहानी जिसका छोटा नायक और छोटी नायिका नितांत प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद आज भी जीवित हैं...

एक आम रिवाज हो गया है कि बड़े दिन की कहानियों में कुछ छोटे लड़कों और लड़कियों को बर्फ-पाले में जमा दिया जाता है. बड़े दिन की प्रतिष्ठित कहानी के ये बेचारे बच्चे—गरीब छोटा लड़का या गरीब छोटी लड़की—किसी प्रासाद की खिड़की के रास्ते शानदार दीवानखाने में जगमग करते बड़े दिन के पेड़ को मुग्ध भाव से देखते रहते हैं और इसके बाद घोर निराशा में डूबे बर्फ-पाले में जमकर मर जाते हैं.

इन लेखकों के भले इरादों की मैं कद्र करता हूं. बावजूद उस निर्ममता के, जिसके साथ वे अपने नन्हें नायक-नायिकाओं का टिकट कटाते हैं. मैं जानता हूं कि ये लेखक इन गरीब छोटे बच्चों को इसलिए बर्फ में जमा देते हैं कि छोटे धनी बच्चों को उनके अस्तित्व की याद दिलायी जा सके. लेकिन जहां तक मेरा संबंध है, इतने शुभ लक्ष्य के लिए भी किसी छोटे गरीब लड़के या छोटी गरीब लड़की को बर्फ में जमाकर मारना मेरे बूते से बाहर है.

मैं खुद कभी बर्फ-पाले में जमकर नहीं मरा और न मैंने कभी किसी छोटे गरीब लड़के या छोटी गरीब लड़की को जमकर मरते देखा. इसलिए मुझे डर है कि जमकर मरने की वेदना का चित्रण करने का मेरा प्रयत्न—अगर मैंने किया—कहीं हास्यास्पद बनकर न रह जाये. इसके अलावा यह कुछ बहुत ही अटपटा भी मालूम होता है कि एक जीवित प्राणी को केवल इसलिए मार दिया जाये कि एक दूसरे जीवित प्राणी को उसके अस्तित्व की याद दिलायी जा सके.

यही कारण है कि मुझे एक ऐसे छोटे लड़के और एक ऐसी छोटी लड़की की कहानी कहना ज्यादा पसंद है, जो बर्फ-पाले में जमकर नहीं मरे.

बड़े दिन से ठीक पहले की शाम थी. छह बजे थे. हवा बर्फ के बादल उड़ाती चल रही थी. ये ठंडे पारदर्शी बादल, झिलमिल के चूरे की तरह हल्के और कमनीय, हर जगह सपाटे लगा रहे थे —राह चलतों के चेहरों से टकराते, गालों में बर्फ की सुइयां-सी चुभाते और घोड़ों के सिरों पर हिम-कणों की बौछार करते. घोड़े अपने सिरों को झटकते, जोरों से हिनहिनाते और अपने नथुनों से भाप के बादल छोड़ते. बिजली के तारों पर पाला जमा हुआ था और वे सफेद रेशमी रस्सी की भांति दिखायी देते थे. आसमान साफ और सितारों से अटा था. वे इतनी तेजी से चमक रहे थे, मानो किसी ने बड़े दिन के उपलक्ष में उन्हें ब्रास-पालिश से चमका दिया हो, हालांकि यह एक असंभव बात थी.

सड़क पर लोगों की भारी चहल-पहल थी और खूब शोर हो रहा था. बीच में घोड़े थिरक रहे थे और लोग पटरियों पर चल रहे थे. कुछ लोग उतावली में थे. तो कुछ फुरसत में. उतावली में इसलिए कि उन्हें चिंताओं और जिम्मेदारियों का बोझ ढोना था और उनके पास गरम कोट नहीं थे, और फुरसत में इसलिए कि वे चिंताओं या जिम्मेदारियों के बोझ से मुक्त थे और उनके पास गरम कोट—यहां तक कि फर वाले कोट भी थे.

इन्हीं लोगों में से एक—जो चिंताओं से मुक्त था और जो फर का कोट पहने था, सो भी ऐसा, जिसमें बहुत ही खूबसूरत कालर लगा था—बहुत ही कायदे से पटरी पर चल रहा था. अचानक इस भद्र पुरुष के ठीक पैरों के नीचे चिथड़ों और गूदड़ में लिपटी दो छोटी-छोटी गेंदें-सी लुढ़कती दिखायी दीं और साथ ही दो नन्हीं आवाजें सुनायी दीं :

"दया के सागर...." एक छोटी लड़की ने सुर छेड़ा.

"राजाओं के राजा...." एक छोटे लड़के ने उसके सुर में सुर मिलाया.

"हम गरीबों का भी कुछ ध्यान करो, कुछ तो दो, मालिक!"

"एक कोपेक. रोटी के वास्ते. त्यौहार के वास्ते." उन्होंने अपना कोरस संपन्न किया.

यही मेरे नायक और नायिका थे, छोटे गरीब बच्चे. लड़के का नाम था मिश्का प्रीश्च और लड़की का कात्का रियाबाया.

चूंकि उक्त भद्र पुरुष ने रुकने की जहमत नहीं उठायी, इसलिए बच्चे उसके पैरों के नीचे डुबकियां लगाते और उसके सामने आ जाते. कात्का आशा से दम साधे फुसफुसाकर कहती, "एक मिनट, मालिक, एक मिनट..." और मिश्का उस भद्र पुरुष की राह छेंकने में कोई कोशिश बाकी न छोड़ता.

जब वह भद्र पुरुष इस सबसे ऊब उठा तो उसने अपने फर वाले कोट के पल्ले खोले, अपना बटुआ बाहर निकाला, नाक के पास तक उसे ले गया, नथुने फड़काते हुए एक सिक्का उसमें से बाहर निकाला और बहुत ही छोटे तथा अत्यंत गंदे हाथों मे से एक में—जो सामने फैला था—उसे ठूंस दिया.

चिथड़े-गूदड़ की वे दोनों गेंदें पल भर में उस भद्र पुरुष के रास्ते से लुढ़क कर एक फाटक में जा रुकीं. लड़का और लड़की वहां कुछ देर तक एक-दूसरे से चिपके खड़े रहे और चुपचाप सड़क पर ऊपर-नीचे नजर दौड़ाते रहे.

"बूढ़ा शैतान! हमारी ओर कमबख्त ने देखा तक नहीं!" छोटा गरीब लड़का कुत्सा से भरे विजयी अंदाज में फुसफुसा उठा.

"वह मोड़ के उधर, गाड़ीवानों के यहां गया है." लड़की बोली, "लेकिन मूजी ने दिया क्या?"

"दस कोपेक." मिश्का ने लापरवाही से कहा.

"तो अब कुल कितने हो गये?"

"सतहत्तर कोपेक."

"ओह, इतना? तब तो आज जल्दी ही घर लौट चलेंगे, क्यों? ठीक है न? बड़ी ठंड है."

"ऐसी क्या जल्दी है." मिश्का ने लड़की के उत्साह पर ठंडा पानी डालते हुए कहा, "और देखो, ज्यादा खुल कर काम न करना. अगर पुलिसवाले ने देख लिया तो पकड़ कर ऐसी मरम्मत करेगा कि बस! अरे देखो, वह बजरा चला आ रहा है. चलो, चलें."

यह बजरा एक मोटी स्त्री थी जो फर का कोट पहने थी. इससे पता चलता है कि मिश्का बहुत ही शैतान लड़का था, बहुत ही गंवार और अपने से बड़ों की इज्जत न करने वाला.

"दया की देवी...." वह मिनमिनाया.

"मां मरियम के नाम पर..." कात्का ने साथ दिया.

"छिः! कमबख्त तीन कोपेक से ज्यादा नहीं उगल सकी, बूढ़ी चुड़ैल!" मिश्का ने उसे कोसा और फिर लपक कर फाटक पर पहुंच गया.

बर्फ के बादल अब भी सड़क पर सपाटा लगा रहे थे और हवा और ज्यादा तेज होती जा रही थी. टेलीग्राफ के तार भनभना रहे थे और सड़क के उस ओर, कहीं दूर से, किसी स्त्री की गूंजती हुई हंसी सुनायी दे रही थी.

"क्या चची अनफिसा आज रात को फिर नशे में धुत नजर आयेगी?" कात्का ने पूछा और अपने साथी के बदन से और अधिक चिपक गयी.

"मालूम तो ऐसा ही होता है." मिश्का ने निश्चित स्वर में जवाब दिया, "और उसे रोक भी कौन सकता है? वह जरूर धुत्त होगी."

"चलो, घर चलें." कात्का ने कहा.

"तूने तो नाक में दम कर दिया!" मिश्का फूट पड़ा, "पता नहीं, घर जाने की तेरे सिर पर ऐसी क्या धुन सवार हुई है?"

"वहां इतना ठंडा नहीं है." कात्का ने संक्षेप में सफाई देते हुए कहा, "कुछ तो गरमाई मिलेगी."

"वहां, बड़ी गरमाई मिलेगी!" मिश्का ने उसे कोंचा, "और जब वे सब इकट्ठे होकर तुझे नाच नचायेंगे, तब? तब कैसा मालूम होगा? या फिर, जैसा कि पिछली बार हुआ था, अगर उन्होंने तेरे गले में जबरदस्ती वोदका उंडेल कर तुझे छत तक उछालना शुरू कर दिया, तो? घर! वाह!"

और उसने एक ऐसे आदमी के अंदाज में अपने कंधों को सिकोड़ा, जो जानता है कि वह क्या है और जिसे अपनी बातों के सही होने में रत्ती भर शक नहीं है. कात्का ने बल खाकर बरबस जम्हाई ली और फाटक के एक कोने में ढह गयी. तुम बस चुपचाप बनी रहो, अगर ठंड लगे तो बत्तीसी भींच लो और जी को कड़ा रखो. तब नहीं लगेगी. तुम और मैं, दोनों मिलकर किसी दिन खूब मौज करेंगे, यह कौन बड़ी बात है. मैं केवल यह चाहता हूं कि..." उसने अपनी बात अधूरी छोड़ दी ताकि उसकी साथिन उत्सुकता से भर उठे. लेकिन वह उत्सुकता का जरा-सा भी भाव दिखाये बिना कसमसा कर और भी दोहरी हो गयी. मिश्का ने कुछ चिंतित होकर उसे चेताया, "देखो कात्का, सोना नहीं. कहीं पाला न मार जाये. सुन रही हो न?"

"डरो नहीं, मुझे पाला-वाला कुछ नहीं मारेगा." कात्का ने कहा. उसके दांत ठंड के कारण किटकिटा रहे थे.

अगर मिश्का न होता तो कात्का निश्चय ही पाले में जम कर मर जाती. लेकिन उस छोटे आवारा लड़के का दृढ़ निश्चय था कि बड़े दिन के अवसर पर वह ऐसी भद्दी बात नहीं होने देगा.

"पसरो नहीं, उठ कर बैठो. पसर जाना तो और भी बुरा है. सीधे सतर रहने से आदमी बड़ा दिखता है और उसे ठंड नहीं दबोचती. बड़ों के सामने ठंड की नहीं चलती. मिसाल के लिए घोड़ों को देखो. वे पाले में कभी नहीं जमते. आदमी घोड़ों से छोटे हैं. सो वे हमेशा जमते रहते हैं. बात मानो, उठ बैठो. पूरा एक रूबल हो जाये तो समझें कि हां, आज का दिन भी कुछ है!"

कात्का, जिसका सारा बदन कांप रहा था, उठ बैठी.

"भयानक ठंड है." वह फुसफुसायी.

ठंड वास्तव में अत्यंत भयानक हो चली थी. बर्फ के बादलों ने क्रमशः गहरे भूरे बगूलों का रूप धारण कर लिया था. कहीं वे खंभों की शक्ल में दिखायी पड़ रहे थे और कहीं लंबी चादरों की शक्ल में, जिनमें हिम-कण हीरों की भांति जड़े थे. जब वे सड़क के लैंपों के ऊपर से मंडराते हुए निकलते या दुकानों के चमचमाते शो-केसों के सामने से गुजरते तो बहुत ही

खूबसूरत मालूम होते. लेकिन हमारे छोटे नायक और छोटी नायिका की इस सारे सौंदर्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी.

"ओहो!" मिश्का ने मानो अपने बिल में से थूथनी बाहर निकालते हुए कहा, "यह तो पूरा रेवड़ चला आ रहा है. उठो कात्का, उन्हें पकड़ें."

"दया के सागर..." तीर की तरह सड़क पर पहुंच कांपती आवाज में छोटी लड़की मिनमिनायी.

"कुछ देते जाओ, मालिक!" मिश्का ने चिरौरी की और फिर एकाएक चिल्ला उठा, "भागो, कात्का, भागो!"

"भुतने! जरा हाथ तो लगने दो! फिर देखो, तुम्हारी क्या गत बनाता हूं. शैतान कहीं के!" लंबे कद वाले पुलिस के एक सिपाही ने बमक कर कहा, जो अचानक पटरी पर प्रकट हो गया था. "गायब हो गये शैतान के बच्चे!" वह भुनभुनाया और सड़क पर नजर डालते हुए भले स्वभाव से मुस्करा उठा.

और 'शैतान के बच्चे' पत्ता-तोड़ भाग रहे थे और हंस रहे थे. कात्का के पांव बार-बार उसके चिथड़ों में उलझ जाते थे और वह गिर पड़ती थी. "हाय राम, फिर गिर पड़ी!" अपने पांवों पर फिर खड़ी होने के लिए जूझते वह कहती, पीछे की ओर मुड़ कर भय से देखती और बरबस हंसते हुए पूछती, "कहां गया वह मरदूद?"

मिश्का हंस-हंस कर दोहरा हुआ जा रहा था. कात्का की लुढ़कनियों ने उसमें भारी उछाह का संचार कर दिया था. उसने कहा, "बस, ज्यादा भागने की जरूरत नहीं. अब उसका बाप भी हमें नहीं पकड़ सकता. वैसे वह इतना बुरा नहीं. एक बार मैं भाग रहा था कि एकदम अचानक-खट्टाक! सीधे उसके पेट में जा धंसा और मेरा सिर जोरों से उसके डंडे से टकरा गया."

"मुझे याद है. इतना बड़ा गुमटा पड़ गया था!" कात्का ने कहा और एक बार फिर हंसते-हंसते दोहरी हो गयी.

"बस करो अब. बहुत हंस चुकीं," मिश्का ने भारी मुंह बना उसे रोका, "अब मैं जो कहता हूं. वह सुनो."

दोनों, गंभीर और चिंतित मुद्रा बनाये, साथ-साथ चलने लगे.

"मैं वहां तुमसे झूठ बोला. दस नहीं, उस खूसट ने मेरे हाथ में बीस कोपेक खोंसे थे. और उससे पहले भी मैं तुमसे झूठ बोला—इस डर से कि कहीं तुम फिर घर चलने की रट न लगाने लगो. आज का दिन बहुत अच्छा रहा. जानती हो, कितना मिला? एक रूबल और पांच कोपेक. है न बहुत?"

"और नहीं तो क्या!" कात्का ने सांस छोड़ी, "चाहो तो इससे तुम कबाड़ी बाजार से जूते खरीद सकते हो."

"जूते, उंह! वे तो मैं यों ही उड़ा कर तुम्हें दे सकता हूं. जरा ठहर जाओ. कितने ही दिनों से जूतों की एक जोड़ी पर मेरी नजर है. मौका लगने की देर है, साफ उड़ा लाऊंगा. लेकिन बात सुनो, अब जरा कहवाखाने में चलें. क्यों ठीक है न?"

"चची को फिर पता चल जायेगा और वह हमारी मरम्मत करेगी, जैसा कि तब हुआ था..." कात्का ने आशंका से कहा, लेकिन कहवाखाने में जाकर गरमाने का मोह इतना प्रबल था कि उसे छिपाना मुश्किल था.

"हमारी मरम्मत करेगी? नहीं, इसकी नौबत नहीं आयेगी. हम ऐसे कहवाखाने में चलेंगे जहां एक भी पंछी न पहचान सके कि हम कौन हैं."

"सच्ची?" कात्का ने उछाह में भर कर कहा.

"अच्छा तो सुनो, हम क्या करेंगे. सबसे पहली और सबसे बड़ी बात तो यह कि हम आधा पौंड सासेज लेंगे—आठ कोपेक के. फिर आधा पौंड सफेद रोटी—पांच कोपेक की. तेरह कोपेक तो ये हुए. इसके बाद तीन-तीन कोपेक की दो मीठी रोटियां लेंगे—छह कोपेक ये हुए. इस तरह उन्नीस कोपेक हो गये. फिर एक केतली चाय—छह कोपेक की. पूरे पच्चीस कोपेक—जरा सोचो तो! और हमारे पास बाकी बच रहेंगे..."

मिश्का अचकचा कर चुप हो गया. कात्का ने उसे शंका भरी नजर से देखा और कहा, "इतना खर्च कर डालोगे?"

"बोलो नहीं, चुपचाप सुनो. यह ज्यादा नहीं है. इसके अलावा आठ कोपेक की चीजें हम और खायेंगे. कुल तैंतीस कोपेक. और जब यह सब करना ही है तो फिर कहना-सुनना क्या? बड़े दिन का त्यौहार है आखिर, हम भी क्यों न मनायें? सो हमारे पास बाकी बचेंगे....सतहत्तर कोपेक....उस बूढ़ी खूसट को और क्या चाहिए? इतना काफी है उस शैतान की खाला के लिए. चलो चलें. जल्दी करो."

हाथ में हाथ डाले, उछलते और रपटते, वे पटरी पर बढ़ चले. जब-तब बर्फ का बादल ऊपर से उन पर झपटता और अपनी पारदर्शी चादर में उन्हें लपेट लेता, लेकिन भोजन और गरमाई की आशा में वे उसे चीर कर आगे बढ़ जाते.

"सुनो," कात्का ने हांफते हुए कहा क्योंकि तेजी से चलने के कारण उसकी सांस फूल आयी थी, "तुम बुरा मानो चाहे भला, अगर उसे मालूम हो गया तो मैं साफ कह दूंगी कि यह सब तुम्हारी करतूत है....तुम हर बार बच जाते हो और मैं अकेली भुगतती हूं. वह हमेशा मुझको ही पकड़ लेती है और तुमसे कहीं ज्यादा मारती है...समझ गये न? मैं सब कह दूंगी."

"जाओ, जो जी में आये कह देना." मिश्का ने गरदन हिलायी, "अगर वह मारेगी तो देखा जायेगा. मैं सब भुगत लूंगा."

मुंह से सीटी बजाता, अपना सिर पीछे की ओर ताने हुए, वह वीर-भाव से अकड़ कर चल रहा था. उसका चेहरा दुबला था. उसकी आंखों में शैतानी भरी थी और उनमें आम तौर से ऐसा भाव झलकता था जो उसकी छोटी उम्र से जरा भी मेल नहीं खाता था. उसकी नाक नुकीली और कुछ मुड़ी हुई थी.

"यह लो, कहवाखाना आ गया. एक नहीं, दो. बोलो, किसमें चला जाये?"

"छोटे वाले में. लेकिन आओ, पहले किराने की दूकान पर चलें."

खाने की सारी चीजें खरीदने के बाद उन्होंने छोटे कहवाखाने में प्रवेश किया. कहवाखाना धुएं, भाप और एक तेज खट्टी गंध से भरा था. आवारा, भिखमंगे, गाड़ीवान और सैनिक अंधेरे में बैठे थे और अत्यंत गंदे वेटर मेजों के बीच मंडरा रहे थे. चीख-चिल्लाहटों, गानों और गालियों का शोर मचा हुआ था.

कोने में एक खाली मेज पड़ी थी. मिश्का ने उसे देखा और फुर्ती से उधर बढ़ा. उसने अपना कोट उतार कर रख दिया और उसके बाद काउंटर के पास पहुंचा. कात्का भी, लजीली नजरों से इधर-उधर देखते हुए अपना कोट उतारने लगी.

"क्यों मिस्टर, चाय मिलेगी?" काउंटर को अपनी मुट्ठियों से धीरे-धीरे बजाते हुए मिश्का ने वहां बैठे आदमी से पूछा.

"चाय? मिलेगी क्यों नहीं? थोड़ा कष्ट करो. उधर जाकर कुछ गरम पानी ले लो. पर देखो, कोई चीज टूटे-फूटे नहीं. अगर तोड़-फोड़ की तो ऐसा सबक सिखाऊंगा कि याद करोगे."

लेकिन मिश्का पानी के लिए लपक चुका था.

दो मिनट बाद वह अपनी साथिन के साथ बैठा कागज में तंबाकू लपेट कर भरे-पूरे अंदाज में अपने लिए सिगरेट बना रहा था—उस गाड़ीवान की भांति, जो दिन में अच्छी मजदूरी कर चुका हो. कात्का मुग्ध भाव से उसे देख रही थी. उसके हृदय पर इस बात का रोब छाया हुआ था कि वह लोगों के बीच

कितने बढ़िया और सहज ढंग से व्यवहार करता है. कहवाखाने के इस कानफोड़ हो-हल्ले के बीच वह सात जनम भी अपने आपको संभाले नहीं रख सकती. और कुछ नहीं तो एक यही डर उसके सिर पर सवार रहता कि उन्हें किसी भी क्षण कान पकड़ कर यहां से बाहर निकाल दिया जायेगा. लेकिन, चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाये, मिश्का के सामने वह अपने इन भावों और आशंकाओं को प्रकट नहीं होने दे सकती. सो वह अपने सन के रंग वाले बालों को सहलाने और सीधे-सादे तथा अकृत्रिम अंदाज में अपने इधर-उधर देखने लगी. ऐसा करने के प्रयास में उसके मैले गालों में रंग की बाढ़ उतर आयी और अपनी अचकचाहट छिपाने के लिए वह अपनी नीली आंखों को सिकोड़ने लगी.

इस बीच मिश्का अहाते के चौकीदार सिगनेई की आवाज और शब्दों की नकल करते हुए उसे भाषण देने लगा था. यह चौकीदार मिश्का को बहुत ही प्रभावशाली आदमी मालूम होता था, हालांकि वह अक्सर नशे में धुत्त रहता था और अभी-अभी चोरी के अपराध में तीन महीने की जेल काट कर आया था. उसके लहजे और शब्दों की नकल करता मिश्का कात्का से कह रहा था :

"हां तो, मिसाल के लिए, समझ लो कि तुम भीख मांगने निकली हो. अब भीख कैसे मांगी जाती है? केवल यह चिचियाते रहना कि दया करो, दया करो, बिल्कुल बेकार है. यह कोई तरीका नहीं है. तुम्हें जो करना चाहिए वह यह कि उस मरदूद के पांवों से उलझ जाओ, इस तरह कि वह घबरा जाये और डरने लगे कि कहीं वह लड़खड़ा कर तुम्हारे ऊपर न गिर पड़े."

"यह तो मैं कर लूंगी," कात्का ने दबे स्वर में सहमति प्रकट की.

"बहुत ठीक!" उसके साथी ने सराहना से सिर हिलाते हुए कहा, "यही असली चीज है. अब मिसाल के लिए, चची अनफिसा को लो. चची अनफिसा क्या है? सबसे पहली बात तो यह कि वह पियक्कड़ है. और इसके अलावा..." और मिश्का ने, सराहनीय साहस के साथ, खुल कर बताया कि चची अनफिसा इसके अलावा और क्या है.

कात्का ने सिर हिला कर चची के बारे में उसके मूल्यांकन से पूर्ण सहमति जतायी.

"तुम उसका कहना नहीं मानतीं. यह ठीक नहीं है. तुम्हें, मिसाल के तौर पर, कहना चाहिए—'मैं अच्छी लड़की बनूंगी, चची, तुम्हारी बात का मैं ध्यान रखूंगी..' दूसरे शब्दों में यह कि उसके मुलायम मक्खन लगाती रहो और इसके बाद जो मन में आये करो. यह सही तरीका है."

मिश्का चुप हो गया और रोबीले अंदाज में अपना पेट खुजलाने लगा, जैसे कि अपना भाषण दे चुकने के बाद सिगनेई करता था. जब उसे और कोई विषय नहीं सूझा तो उसने अपने सिर को हल्का-सा झटका दिया और बोला, "हां तो अब खाना चाहिए."

"आओ, शुरू करें", कात्का ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की.

सीलन की गंधभरे रोशनीविहीन इस कहवाखाने के एक अंधेरे कोने में वे अपना सांझ का खाना खाने लगे. गंदे गीतों और भद्दी गालियों की आवाज पृष्ठ-संगीत का काम कर रही थी. दोनों बड़ी लगन से, अपनी पसंद और नापसंद का परिचय देते और बीच-बीच में कुछ रुकते हुए सच्चे रसज्ञों की भांति खा रहे थे. और अगर कात्का, शालीनता की भावना को भूल कर, लालच के मारे अपने मुंह में इतना बड़ा निवाला भर लेती कि उसके गाल कुप्पा जैसे फूल आते और उसके दीदे बाहर झांकने लगते, तो शांत और स्थिर मिश्का दुलार के स्वर में कहता, "ऐसी जल्दी क्या है, रानी साहिबा?" तब उस भारी-भरकम निवाले को निगलने की उतावली में, उसका दम घुटने-सा लगता.

यही मेरी कहानी का अंत है. बिना किसी क्षोभ या पछतावे के मैं इन बच्चों को बड़े दिन की यह रात बिताने के लिए अकेला छोड़ सकता हूं. आप यह निश्चित समझिए कि उनके बर्फ में जम कर मरने का खतरा जरा भी नहीं है. वे अपने पूरे रंग में हैं. आखिर उन्हें बर्फ-पाले में जमा कर मारने से मेरा—या इस दुनिया का—क्या भला होगा?

■ [illegible] की लघु रचनाएं

तूफान का अग्रदूत

समुंदर की सफेद-चमकीली सतह के ऊपर झंझा काले बादलों को बुला रही है. समुंदर और बादलों के बीच बिजली की तरह उड़ रहा है तूफान का पूर्व सूचक पक्षी—पितरेल.

कभी वह अपने परों से समुंदर की लहरों को छूता है तो कभी तीव्र गति से बादलों की ओर झपटता है, वह चिल्लाता है—पक्षी की उस हिम्मतभरी चिल्लाहट में बादल खुशी की गूंज सुनते हैं. उस चिल्लाहट में तूफान के प्रति तीव्र ललक है. बादल इस चिल्लाहट में गुस्से की गरमी, आवेश की ज्वाला और विजय की दृढ़ इच्छा अनुभव करते हैं.

समुंदर की चिड़िया तूफान से पहले डरकर शोर करती है—वे शोर करती हैं, समुंदर के ऊपर चक्कर काटती हैं और तूफान के डर से छुटकारा पाने के लिए समुंदर की गहराई में छुपने की तैयारी करती हैं.

लून पक्षी भी डर कर शोर करते हैं—जीवन संघर्ष से अनभिज्ञ, लहरों के शोर से डर जाते हैं ये लून पक्षी.

मूर्ख पेंगुइन भी डर कर चर्बी से ढके अपने शरीरों को चट्टानों के बीच छुपाते हैं—सिर्फ गर्वीला पितरेल ही फेन से सफेद हो गये समुंदर पर स्वच्छंद और निर्भय उड़ान भरता है.

बादल अधिकाधिक काले हो रहे हैं और समुंदर की सतह पर उतरते जा रहे हैं. लहरें तूफान के स्वागत में गाती हैं, ऊपर उड़ती और लपकती हैं.

घनघोर गर्जना हो रही है. लहरें झंझा से लड़ती हैं, गुस्से में झाग उगलते हुए कराहती हैं. लीजिए—झंझा ने बहुत-सी लहरों को अपनी भुजाओं में कस लिया और गुस्से से पागल हो पत्थरों पर पटक दिया. उन विशाल दूधिया आकारों को टुकड़े-टुकड़े कर जलकणों में छितरा दिया.

तूफान का पूर्वसूचक पितरेल बिजली की तरह ललकारता हुआ, उड़ रहा है—बादलों को चीरता, लहरों की फेन छूता.

देखो वह दैत्य की तरह उड़ रहा है. तूफान के घमंडी काले दैत्य की तरह—और वह हंसता है, रोता है....वह बादलों पर हंसता है और खुशी से रोता है.

वह बुद्धिमान दैत्य काफी पहले से ही बादलों के गुस्से भरे गर्जन में थकान अनुभव कर रहा है. उसे पता है कि बादल सूरज को नहीं छिपा पायेंगे—नहीं छिपा पायेंगे.

हवा भीषण शोर करती है....बादल जोर-शोर से गरज रहे हैं....

समुंदर के ऊपर बादल नीली लपटों से चमकते हैं. बिजली की समुंदर की गहराई में गुम होती बिजली की चमक अग्निसर्पों-सी लगती है.

तूफान! बहुत जल्द आयेगा तूफान!

क्रोध से उफनते समुंदर के ऊपर बिजली की चमक के बीच बड़ी हिम्मत से उड़ रहा है तूफान का पूर्वसूचक—गर्वीला पितरेल पक्षी और विजय का वह मसीहा पूरी ताकत से कह रहा है....

आये तूफान! खूब जोर-शोर से उमड़-घुमड़ कर आये तूफान! □

□ रूपांतर : अनिल श्रीवास्तव

मुझे यह बहुत ही बड़ी और भारी मूर्खता मालूम होती है कि बच्चों को बर्फ में जमा कर मारा जाये—खास तौर से उस हालत में, जबकि वे निश्चय ही किसी न किसी दिन मरेंगे, लेकिन इससे कहीं अधिक सीधे और साधारण तरीके से. □

संक्षिप्त रूपांतर : सुधा उपाध्याय

■ गोर्की के संस्मरण

निजनी सीक्रेट पुलिस का चीफ ग्रेशनर एक कवि था. उसकी कविताएं कुछ रूढ़िवादी पत्रिकाओं, मेरे ख्याल में शायद 'नीवा और रोडिना' में भी छपी थीं.

मुझे अभी भी कुछेक पंक्तियां याद हैं—

''स्टोव से उठकर एक चाह घिसटती है, बाहर के दरवाजे से भी गुजरती है, हालांकि यह चीज हमारी आत्मा को पंगु बनाती है, फिर भी जब वह होती है तो जिंदगी रंगीन होती है. इस चाह के बिना मैं कितना अकेला हूं. बिना मनुष्यों-पशुओं के यह दुनिया कितनी नीरस होगी.''

उसने एक महिला की एल्बम में एक बार एक योनोत्तेजक पद्य आरंभ किया: ''ऐन दरवाजे और खंभे के सामने तीस साल का एक लड़का, उसका चेहरा इतना परिचित है...बाप रे. यह तो मैं ही हूं.''

इसके बाद कुछ अश्लील और भद्दी उपमायें लगी हुई थीं.

बहरहाल, उसी ग्रेशनर को उन्नीस साल के एक किशोर ने मार डाला. किशोर का नाम एलैक्जेंडर निकिफ्रोव था. वह एक अनुवादक निओ निक्रिफोव का बेटा था, जो एक प्रसिद्ध तालस्तास्यी और अनुवादक था. इस घटना से लिओ हिल उठा. क्योंकि उसके चारों बेटे एक-एक करके किसी न किसी दुर्घटना का शिकार हो गये थे. सबसे बड़ा, एक सामाजिक कार्यकर्ता जेल की तकलीफों और दिल की बीमारी से मर गया. दूसरा अपने कपड़ों पर पैट्रोल छिड़ककर जिंदा जल मरा. तीसरे ने जहर खा लिया और चौथे पुत्र साशा ग्रेशनर को सीक्रेट पुलिस आफिसर के दरवाजे के बिल्कुल पासवाली सड़क पर ही दिन दहाड़े मार डाला. ग्रेशनर एक महिला की बाहों में बाहें डाले घूम रहा था. तभी साशा उसके पास पहुंचकर चिल्लाया, ''ओह पुलिसवाले.''

और जैसे ही ग्रेशनर 'ओह' करनेवाले की तरफ मुड़ा, निक्रिफोव ने उसके चेहरे और छाती पर निशाना लगा दिया.

साशा तुरंत पकड़ा गया और उसे फांसी की सजा सुना दी गयी.

लेकिन निजनी जेल का कोई भी अपराधी वहां के जल्लाद के घृणास्पद कार्य को नहीं कर सकता. वह जल्लाद अंततः पुलिस अफसर बन गया. यह एक-दो बार गर्वनर ब्रेनाफ के लिए खाना भी बना चुका था और पहले दर्जे का शराबी और शेखीबाज था. अपने आपको एक प्रसिद्ध खाका खींचनेवाले का छोटा भाई बताता था. इसने चिड़ीमार ग्रिश्का को 25 रूबल रिश्वत देकर साशा को फांसी पर लटकाने के काम पर लगाया. ग्रिश्का पियक्कड़ों में एक ही था. उसके घने गुच्छेदार बाल थे. दुबला-पतला छरहरा होने के

गोर्की, रेखांकन : हरिपाल त्यागी

जल्लाद

निजनी जेल का कोई भी अपराधी वहां के जल्लाद के घृणास्पद कार्य को नहीं कर सकता. वह जल्लाद अंततः पुलिस अफसर बन गया...—अक्तूबर क्रांति के पहले का रूस, उसका व्यवस्था-तंत्र और समाज में शासक-वर्ग के सिपहशालारों की स्थिति को रेखांकित करता गोर्की का एक संस्मरण—

साथ-साथ वह ताकतवर था. उसके गालों पर घोड़े के गलमुच्छों की तरह बालों के घने गुच्छे थे. पैंतीस साल के उस आदमी की कंटीली भौंहें और सपनीली आंखें चमकती रहती थीं. निक्रफोव को फांसी पर लटकाने के बाद उसने एक लाल स्कार्फ खरीदा और अपनी लंबी गर्दन के टेंटुएं के गिर्द लपेट लिया. थोड़ी देर बाद वोदका पानी छोड़कर वह जोर-जोर से खांसने और चिल्लाने लगा था.

''ग्रिश्का आज तुम इतने खुश क्यों नजर आ रहे हो?'' ऐसे में उसके मित्र पूछते.

''मैं....मैं आज एक काम में बहुत व्यस्त हूं. सरकार के खुफिया काम में.'' वह जवाब दिया करता.

एक दिन गलती से जब उसके मुंह से यह निकल गया कि उसने एक आदमी को फांसी पर लटकाया है तो उसके दोस्तों ने उसकी खूब निंदा की और पीटा. इस घटना के बाद उसने पुलिस के अफसर कैदविन को एक शिकायत भेजी कि वह सरकारी जल्लाद है और उसे लाल पैंट और लाल धारीवाला कोट पहनने की इजाजत दी जाये, जिससे कि शहर के जाहिल लोग समझें कि मैं क्या हूं और अपने गंदे हाथ न केवल मुझसे दूर रखें, बल्कि मुझे छूने का साहस भी न जुटा पाएं.

कैदविन ने अनेक हत्यारों को ग्रिश्का के हाथ से फांसी दिलवाई थी. एक बार ग्रिश्का मास्को में भी किसी को फांसी देने गया. लौटने पर उसे मालूम पड़ा कि उसका महत्व कितना है. लेकिन निजनी पहुंचते ही वह डा. स्मिनोफ से मिलने गया. डा. स्मिनोफ एक दक्षिणी कट्टरवादी पार्टी ब्लैक हंड्रेड के सदस्य थे. वहां जाकर उसने शिकायत की कि शायद एक हवा का बुलबुला उसकी छाती में घुस गया है. और उसे हर वक्त ऐसा लगता है कि वह आकाश में उड़ा जा रहा है. ''यह बुलबुला इतना शक्तिशाली है कि मुझे जमीन पर खड़े होने के लिए किसी न किसी चीज को पकड़े रहना पड़ता है. मैं बार-बार अपने को कूदने से रोके रखता हूं. सिर्फ इस डर से कि लोग मुझ पर हसेंगे. यह पहली बार तब हुआ जब मैं कुछ गुंडों को फांसी पर चढ़ानेवाला था. मुझे लगा मेरे सीने में कुछ बज रहा है और मेरे अंदर फूलता जा रहा है. अब यह इतना बढ़ चुका है कि मुझे रातों को नींद नहीं आती. मुझे छत अपनी तरफ खींचती लगती है. जब कुछ समझ में नहीं आता है तो खुद को भारी बनाने के लिए जितने ज्यादा से ज्यादा कपड़े पहन सकता हूं पहन लेता हूं. अपनी बाहों पर और जेबों में ईंटें भर लेता हूं. लेकिन इससे कोई मुक्ति नहीं मिलती. मैं अपने सीने और पेट पर मेज रखकर भी देख चुका हूं. पैरों को पलंग से भी बांध चुका हूं. लेकिन कुछ नहीं होता. मैं उसी तरह से उड़ता रहता हूं. मेरी मदद करो. मुझे काटकर, वह बुलबुला बाहर निकाल दो. नहीं तो मैं मर जाऊंगा.'' डाक्टर ने ग्रिश्का को सलाह दी कि वह किसी स्नायुतंत्र विशेषज्ञ के पास जाये. लेकिन ग्रिश्का ने मना कर दिया. गुस्से से भरकर वह बोला, ''यह सब मेरे दिल में हो रहा है. दिमाग में नहीं.''

कुछ दिनों बाद वह छत से गिर पड़ा. उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी. अंतिम समय में वह बार-बार डाक्टर निफोंट डोलोगोपोल्फ से पूछ रहा था, ''क्या मेरी शव यात्रा बैंडबाजे के साथ निकलेगी?'' मरने से कुछ मिनट पूर्व वह बड़बड़ाया था, ''ऊपर, बिल्कुल वहीं अब मैं जा रहा हूं.'' □

प्रस्तुति : क्षमा

वे तीन

क्या जीवन के क्रूर बंधनों से यूं ही छुटकारा पाया जा सकता है...? कैसे हैं इस उपन्यास के तीनों नायक जो जीवन के बंधनों से छूटकर अलग हो जाना चाहते हैं...! तब फिर जीवन जीने की कला कैसी होनी चाहिए? क्रांति से पहले के रूसी समाज का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करने वाले गोर्की के महत्वपूर्ण उपन्यास 'वे तीन' का संक्षिप्त रूपांतर—

कैर्जेनेत्स के जंगल में फैली कई कब्रें हैं. पुरातन पीर-फकीरों की हड्डियां यहां दफन हैं. अंतीपा नामक एक फकीर की कहानी इस इलाके के लोग अक्सर इस तरह से सुनाते हैं.

अंतीपा लून्यौव एक कठोर स्वभाव का धनी किसान था. पचास साल का होते-होते उसे जाने क्या सूझी कि वह संन्यास लेकर जंगल में कुटिया बनाकर रहने लगा. वह न किसी से बोलता न कभी किसी से मिलता.

एक दिन एक पुलिस अफसर अपने कारिंदों के साथ जंगल में आ पहुंचा. अंतीपा की कुटिया तुड़वा डाली और उसे घसीट कर जमीन पर गिरा दिया. अंतीपा ने फुसफुसाने के लहजे में सर्वशक्तिमान ईश्वर से उन्हें क्षमा कर देने को कहा और प्राण छोड़ दिये. इस समय उसका बड़ा लड़का—याकोव तेईस साल का था और तेरेंती महज अठारह साल का. याकोव की हरकतें और लक्षण बिल्कुल ठीक न थे. वह न तो ईसाइयों के धर्म समाज में शरीक होता, न ही बुजुर्गों का कहा मानता. शराब और फैशन में डूबा रहता. एक दिन उसने एक पड़ोसी गांव की यतीम सुंदरी से शादी भी कर डाली. एक साल तक तो सब ठीक-ठाक रहा पर इसके बाद ही उसकी मां चल बसी. मृत्यु-भोज के समय याकोव ने गांव के मुखिया को ही पीट डाला. याकोव के साथ-साथ अब पूरे परिवार से ही गांव वाले नफरत करने लगे. पिटाई के जुर्म में याकोव को सजा हो गयी. इसके बाद तो याकोव और भी बिगड़ गया.

जब वह चालीस साल का था तो गांव में आग लग गयी. लोगों ने इसका इल्जाम भी याकोव पर ही लगाया. बस, फिर क्या था...उसे देश निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया. उसकी पत्नी विक्षिप्त हो गयी थी. उसका बेटा इल्या और पत्नी अब तेरेंती पर ही बोझ बन गये. पूरी संपत्ति तो खत्म हो चुकी थी. बचा था तो बस, एक घोड़ा और तेतालीस रूबल. हारकर तेरेंती ने अपनी भाभी को एक औरत के संरक्षण में डेढ़ रूबल महीना देकर रख छोड़ा और इल्या के साथ जिले के सबसे बड़े कस्बे की ओर चल दिया. यहां उसका संबंधी पेत्रुखा फिलिमोनोव रहता था.

वे लोग कस्बे के एक सिरे पर बने बड़े मकान में रहने लगे. इस पुराने मकान के हर कोने में कोई न कोई बसा हुआ था. आंगन के एक कोने में मकान के सभी बच्चे ग्रांदाद येरमी को घेरकर बैठ जाते, फिर वह बार-बार कहने पर अपनी कहानी शुरू कर देता. पेत्रुखा का बेटा याकोव पूरे मन से कहानी सुनता. इल्या जल्दी ही उसका दोस्त बन गया था.

....बहुत जल्द इल्या को यह अहसास हो गया था कि गांव की जिंदगी कस्बे से कहीं अच्छी है. यहां तो आंगन से बाहर भी नहीं निकल सकते.

कुबड़े तेरेंती और ग्रांदाद की अच्छी दोस्ती हो गयी थी. एक दिन ग्रांदाद ने इल्या की पढ़ाई का पूरा खर्चा उठाने का प्रस्ताव रखा. वह तेरेंती की मदद करना चाहता था, "तुम इल्या को मुझे सौंप दो. मैं इसकी पढ़ाई का पूरा खर्च उठाऊंगा. मेरे साथ लीरा-लत्ता बीनने में मदद कर दिया करेगा यह...बस!"

ग्रांदाद की देख-रेख में इल्या खुश था. हर सुबह वह उसे जगाकर अपने साथ ले जाता. लीरे-लत्ते, कागज हड्डियां, लोहा या चमड़ा...जो कुछ मिलता, दोनों बटोर लाते. इल्या ग्रांदाद से तरह-तरह के सवाल करता रहता. ग्रांदाद उसकी हर जिज्ञासा को शांत करता. शाम को जब इल्या घर लौटता तो उसे लगता जैसे वह बड़ा आदमी हो गया है.

पावेल जरूर उसे छेड़ता, "अबे मेहतर, दिखा क्या उठा के लाया है?"

...पर एक दिन पावेल का पिता सवेल भी पावेल की पिटाई करते हुए कह रहा था, "तेरी उम्र के लड़के अपने लायक खुद कमा रहे हैं. तू है कि तुझे पेट भरने और मस्ती करने के अलावा कोई काम ही नहीं."

इल्या ने चाहा कि पावेल के प्रति सांत्वना व्यक्त करे पर वह उल्टा उससे

भिड गया.

एक दिन इल्या याकोव के साथ स्कूल से लौटा तो देखा सवेल ने अपनी पत्नी का खून कर दिया है. पावेल बेचारा भी बिन मां का हो गया. उधर ग्रादाद की तबियत भी बिगड़ती जा रही थी. एक दिन वह भी चल बसा. तेरेंती और पेत्रुखा को जब पता लगा तो वे सीधे ग्रादाद के शव के पास जा पहुंचे. दरवाजा भीतर से बंद कर लिया. इल्या दरारों से झांकता रहा. इल्या ने देखा—उसका चाचा जल्दी-जल्दी तकिया सिल रहा है.

पेत्रुखा की फुसफुसाने की आवाजें, मरते हुए आदमी की सांसें, सीने की आवाज और नाली में गिरते पानी की आवाज मिलकर ऐसी लग रही थीं...जैसे इल्या के तमाम एहसास खत्म हो गये हों. इसके बाद वह एकदम

बदल गया.

कुछ दिनों बाद ही मोची पर्रफिश्का की पत्नी भी चल बसी. अब वह और अधिक शराब पीता. लिहाजा उसकी बेटी माशा को देखने वाला भी कोई न था. लुहार का यतीम बेटा पावेल आवारा लड़कों की तरह घूमता रहता था. याकोव ऊट-पटांग किस्म की किताबें पढ़ता रहता.

एक दिन तेरेंती ने इल्या को मछलियों के व्यापारी स्त्रोगनी के पास नौकरी दिलवा दी. अब इल्या की जिंदगी एक नीरस चक्र में घूमने लगी. पांच बजे उठकर घर-भर के जूते चमकाता. दुकान पहुंचकर साफ-सफाई करता. दुकान खोलकर ग्राहकों की सेवा में जुट जाता. दोपहर के भोजन के बाद प्रायः वह खाली रहता. इल्या को सेल्समैन मिखेल अच्छा न लगता. सेल्समैन कार्प भला आदमी था...वह किसी भी शनिवार को प्रार्थना में जाना न भूलता. पर इल्या को वह भी पसंद न था. उसे पसंद था तो बस, अपना मालिक—स्त्रोगनी.

रविवार को उसे गिरजाघर भेजा जाता. चाचा से छः महीने में दो बार मिल पाता. उसका चाचा पहले से कुछ ज्यादा कुबड़ा हो गया था. पेत्रुखा सीटी जोर से बजाने लगा था...और याकोव शिकायत करता कि उसका पिता रह-रहकर उसे व्यापार करने को कहता रहता है. जबकि वह किताबें पढ़ते रहना चाहता था. किताबें, जो उसे दूसरी ही दुनिया में पहुंचा देतीं. इल्या को यह भी पता चला कि माशा बेसहारा होकर भीख मांगने लगी है...

कुछ सप्ताह तो ऐसे ही बीत गये...पर एक दिन एक अजीब घटना घटी. इल्या को सच बोलने के जुर्म में, ईमानदारी के जुर्म में, मालिक ने नौकरी से अलग कर दिया. दरअसल, मालिक के पूछने पर इल्या ने सच-सच बता दिया था कि दस रूबल का नोट मिखेल ने चुराया था....और यह भी कि कार्प भी चोरी करता है. आधा रूबल इल्या के हाथ में था और वह मालिक के घर से बाहर निकल रहा था. इस वक्त मालिक की पत्नी कह रही थी, "हे भगवान, इसने तो अफसोस तक जाहिर नहीं किया!"

पेत्रुखा के घर लौटकर इल्या को गर्व महसूस हुआ. पर फिश्का ने उसे शाबाशी दी. माशा उसे देख बहुत खुश हुई. याकोव ने उसे कहानी सुनानी शुरू कर दी. पेत्रुखा आश्चर्यचकित था. तेरेंती जरूर चिंतित था, "अगर तुम अपने को संभाल लो, तो मैं यह जगह छोड़ दूं! मैं महापापी हूं, धार्मिक पुरुषों के दर्शन कर आता."

आखिरकार इल्या ने बिसाती का काम शुरू कर दिया. गले में पेटी लटकाये वह आवाजें लगाता फिरता—"साबुन, मोम, हियरपिन, धागा, सुई...ले लो!"

वह सपने देखता कि शाम को कभी दुकान बंद करके वह साफ-सुथरे कमरे में बैठकर चाय पियेगा. किताबें पढ़ेगा. लड़कियां उसकी तरफ ललचायी नजरों से देखा करेंगी...पर जब दिन भर की असफलता के बाद वह थककर किसी रेस्तरां या फुटपाथ के किनारे जा बैठता तो उसे पुलिस वालों की क्रूरता, ग्राहकों का संदिग्ध व्यवहार याद आ जाता और वह गहरी चिंता में डूब जाता.

एक दिन इल्या की नजर पावेल ग्राचोव पर पड़ी. फटी पेंट की जेबों में हाथ घुसाये वह मस्ती में घूम रहा था.

पावेल ने बातचीत के दौरान बताया कि "जिंदगी जितनी बेहतर गुजारी जा सकती है गुजार देते हैं. मिल गया तो खा लिया, वरना कोई बात नहीं." तो इल्या उसी के विषय में सोचता हुआ घर लौटा.

शाम का वह अधीरता से इंतजार करता. घर पहुंचते ही वह सीधा माशा के कमरे में जा पहुंचता. याकोव, माशा और इल्या साथ बैठकर चाय पीते.

छुट्टी के एक दिन जब इल्या घर लौटा तो उसका चेहरा पिटा हुआ और शरीर दर्द से कराह रहा था. दरअसल, एक सिपाही ने उसे सर्कस के बाहर माल बेचने की इजाजत दे दी थी. इसके बदले में उसने एक साबुन और दर्जन भर हुक ले लिए थे. पर थोड़ी देर बाद ही एक दूसरा सिपाही आया और लगा डंडा बजाने. उसे थाने ले जाया गया. शाम तक बेचारा बंद रहा.

शराबघर से शोर की आवाजें आ रही थीं. इल्या बाहर निकला तो एक औरत ने उसे अपने साथ आने का इशारा किया. यह मतील्सा नाम की एक आवारा थी. दिमाग फिरते ही इल्या उसके लिए बियर और खाने का सामान खरीद ले गया. पर जब बातचीत के दौरान उस औरत ने कहा कि इल्या और याकोव के साथ रहकर माशा जल्द ही खराब हो जायेगी. उसे बरबादी का

रास्ता चुनना पड़ेगा.... तो इल्या को वहां बैठना मुश्किल हो गया. वह दरवाजा बंद करके नीचे उतर आया.

दूसरी शाम फिर उसे एक औरत मिली. इस नये मनोरंजन पर खर्च बहुत होता था. वह सोचता,चोर ईमानदार लोगों से बेहतर जिंदगी जीते हैं. यह बात उसने याकोव से भी कह डाली. याकोव से बातों-बातों में यह चर्चा भी हो ही गयी कि किस तरह से इल्या के चाचा और याकोव के पिता ने ग्रांदादका पैसा चुराया!

जब इल्या को शराबघर के दुर्गंधभरे वातावरण में रह पाना कठिन हो गया तो वह यूं ही गलियों में घूमता-घामता रहा.

कुछ दिन बाद ही उसकी मुलाकात पावेल से हुई. शाम की ठंड में भी वह एक पतली-सी कमीज पहने हुए था.

"कैसे हो?" इल्या ने पूछा.

"जी रहा हूं, बस!" पावेल ने बताया, "हम कभी करीबी दोस्त नहीं रहे पर तुम मिलते हो तो तबियत खुश हो जाती है!"

पास के रेस्त्रां में बैठकर बियर का ऑर्डर दे दिया गया. इल्या ने पावेल की कविताएं सुनीं, सराहना की. पावेल भी खुश हो गया. इल्या के लिए विश्वास कर पाना कठिन हो रहा था कि कविताएं इसी लड़के ने लिखी हैं.

"हम लोग कहां बढ़ रहे हैं?"

"सिदोरिखा के मकान पर..."

"हम सबका एक ही रास्ता है!"

"पर मुझे किसी वजह से जाना पड़ता है वहां! मेरी प्रेयसी वीरा पहले डाक्टर के यहां रसोई में काम करती थी. डाक्टरनी ने देखा तो वीरा को घर से निकाल दिया. वीरा बहुत तेज निकली. वह भाग गयी...जब भी मुझे, किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उसे चूमे जाने का खयाल आता है...लगता है जैसे पिघला हुआ सीसा उड़ेल दिया हो किसी ने मेरे भीतर...." पावेल ने विस्तार से बताया

"क्या तुम उसे छोड़ नहीं सकते?"

"छोड़ दूं?" पावेल करीब-करीब चिल्ला ही दिया.

इल्या ने लड़की को देखा तब कहीं उसकी समझ में यह विस्मय आया. वह यह सोचकर उदास हो गया कि उसे ऐसा कोई साथी नसीब नहीं.

वीरा के पास ही इल्या का परिचय ओलिंपियाडा से हुआ. लंबे कद की सुंदर लड़की. गाल ताजे और गुलाबी. सिर पर काले बालों का पफ. वह ओलिंपियाडा के साथ हो लिया.

वीरा उसे पसंद थी. पावेल और वीरा में झगड़ा हो जाता तो इल्या ही समझौता कराता. उधर ओलिंपियाडा भी उसे ले चलने को आ जाती. इल्या उसके पीछे-पीछे चलता हुआ सोचता—यह वही औरत है जो गंदे हाथों द्वारा मंथी-मसली पड़ी थी. ओलिंपियाडा को दुख था कि इल्या ने स्कूल जल्दी छोड़ दिया, "तुम यह फेरी का धंधा छोड़कर कोई और काम करो! मैं बूढ़े पोल्योत्कोव के पास जाकर रहने लगूंगी तो तुम्हारी मदद भी कर सकूंगी."

"क्या वह पांच हजार देगा?" इल्या ने पूछा.

"हां!"

वह जो चाहती थी, सौदागर पोल्योत्कोव ने उसे दिया. थोड़े ही दिन बाद इल्या ओलिपियाडा के नये मकान के फर्श पर बैठा बिछे हुए कालीन को देखते हुए अपनी प्रेयसी का भाषण सुन रहा था.

मनचाही चीज की खोज में जुट जाने की कला इल्या ने ओलिंपियाडा से ही सीखी. वह उससे प्रेम करता है या नहीं, इस बारे में वह निश्चित नहीं था...पर उसे उसकी जरूरत तो थी ही.

एक शाम जब वह अपने काम से लौटा तो देखा कि परफिश्का और याकोव बैठे शराब पी रहे हैं. इल्या को देख याकोव चिल्लाया, "इल्या, मेरे पिता ने मुझे पीटा..." उसका होंठ सूजा हुआ था.

बाद में परफिश्का ने बताया, "पेत्रुखा से जब तेरेंती ने कहा कि वह धार्मिक दर्शनों के लिए तीर्थों पर जाना चाहता है तो यकोव ने कहा कि उसे भी जाने दिया जाये. इस पर पेत्रुखा ने पूछा कि वह क्यों जाना चाहता है, तो याकोव ने बताया कि वह अपने पिता की आत्मा के लिए प्रार्थना करेगा...इस पर पेत्रुखा ने उसे बहुत मारा."

इल्या ने नोट किया कि उसके चाचा तेरेंती को याकोव से कोई सहानुभूति नहीं थी, "मुझे तुमसे कुछ बात करनी है!" तेरेंती ने कहा.

"क्या बात है?" इल्या ने पूछा.

"मैंने कुछ रूबल बचायें हैं...दो सौ में से सौ तुम्हें देना चाहता हूं."

"पर मैं तुम्हारा चोरी का पैसा नहीं लूंगा." इल्या को लगा वह चाचा से इससे अधिक की आशा करता था.

"मैंन तुम्हें अपना बेटा समझा. तुम्हारे भविष्य के लिए ही यह बचाया...अगर तुम ये रूबल नहीं लोगे तो भगवान मुझे कभी माफ नहीं करने वाला!"

"क्या मैंने कभी तुम्हें ग्रांदाद का पैसा चुराने को कहा था?" सौ रूबल लेकर वह क्या करता! वह मतीत्सा के कमरे की तरफ चला गया. वहां माशा की दुर्दशा देख उससे न रहा गया. उसने ओलिंपियाडा के यहां जाकर माशा के लिए काम की बात करनी चाही. जिस वक्त वह ओलिंपियाडा के निवास पहुंचा बूढ़ा खूसट उसके सामने आ पहुंचा. बड़ी मुश्किल से अपने को फेरीवाला बताकर ओलिंपियाडा से पैसे लेने का बहाना बनाया....पर कोई बात न हो सकी. मन ही मन वह बूढ़े सौदागर के प्रति प्रतिशोध से भर उठा था.

दूसरे दिन जब उसे बूढ़े सौदागर पोल्येत्कोव की दुकान नजर आयी तो वह पुराने सिक्के बदलवाने के बहाने वहां जा पहुंचा. बूढ़े के व्यवहार ने उसे फिर उत्तेजित कर दिया. बस, इल्या ने उसका गला दबा दिया और माल-मत्ता लेकर बाहर निकल आया.

देखते ही देखते पूरे इलाके में हड़कंप मच गया. इल्या भीड़ से निकल कर गिरजाघर की सीढ़ियों पर जा बैठा. जब पोल्येत्कोव का शव बाहर निकाल लिया गया तो वह उठा और घर की तरफ चल दिया.

घर पहुंचा तो माशा उससे जिद करने लगी कि वह अपने चाचा से उसे अपने साथ ले जाने की सिफारिश कर दे. माशा जब पीछे ही पड़ गयी तो इल्या ने 'हां' कर दी. बस, फिर क्या था, माशा ने कूदते हुए दोनों बाहें उसके गले में डाल दीं.

इसी समय याकोव भी भीतर आ गया, " अरे, यह कैसी खुशी मनायी जा रही है भाई!"

याकोव हाल ही में पढ़ी एक ऐसी किताब का जिक्र करने लगा जिसमें सृष्टि के आरंभ का ब्यौरा था. इल्या चाय के लिए इनकार कर अपने कमरे में चला आया.

दूसरे दिन सुबह उठकर उसने मुस्कराकर सिर हिलाया. अगर वह समर्पण न कर दे तो पुलिस उसे नहीं पकड़ पायेगी.

शाम को ही उसे ओलिंपियाडा का संदेश-पत्र मिला, "बाथ हाउस के निकट नौ बजे मुझे मिलो!"

इल्या निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचा तो उसकी प्रेयसी ने उसे समझाया, "देखो अगर पुलिस पूछे तो तुम कहना कि तुम मुझे अक्सर मिलते हो. सच सच. अगर वे बूढ़े आदमी के बारे में पूछें तो कह देना, तुम उसे जानते भी नहीं...काश तुमने मुझसे कहा होता—'मुझे या उसे चुन लो!'...तुम भी मुझसे, औरों की तरह मतलबी संबंध रखते हो."

बातों-बातों में जब इल्या ने ओलिंपियाडा को बता ही दियां कि हत्या स्वयं उसने की है तो वह उत्साह के अतिरेक में उसे अंधाधुंध चूमने लगी.

दूसरे दिन इल्या को लगा कि शिकारी कुत्ते उसे सूंघते फिर रहे हैं. याकोव इशारे से बुलाकर उसे माशा के कमरे में ले गया. वहां उसने बताया कि उसके पिता से पुलिस इल्या के बारे में पूछताछ कर रही थी. पर इल्या बेपरवाही से चुप्पी लगा गया.

अगले रोज उसे फिर एक संदेश मिला. इल्या के लिए संदेश था कि पुलिस को उसकी प्रेयसी ने उसके विषय में विस्तार से बता दिया है. डरने की कोई बात नहीं.

आखिरकार पुलिस ने उसे पूछताछ के लिए बुलवा ही लिया. ओलिंपियाडा के निर्देशानुसार इल्या ने बगैर घबराये इस तरह जवाब दिये

■ गोर्की के संस्मरण

एक छात्र की दलील

एक छात्र मैनकाफ ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी. मास्को की अदालत में अंतिम बार बोलते हुए उसने कहा, "वह मरकर शहीद बन गयी है. स्वर्ग में अब तक वह एक पवित्र आत्मा बन गयी होगी.. जबकि मैं खुद इस पृथ्वी पर पूरी जिंदगी भर पश्चाताप का सलीब ढोऊंगा. तब आप मुझे क्यों दंड दे रहे हैं. जबकि मैं स्वयं ही अपने आपको इतना बड़ा दंड दे चुका हूं. पहले की ही तरह अब भी मैं मीठे सेब और अंडे खा सकता हूं. लेकिन उनमें वह मिठास और खुशबू नहीं रही. कोई भी चीज मुझे अब सुखी नहीं करती. तब....तुम सब मुझे सजा देने पर क्यों तुले हो?"

प्रस्तुति : क्षमा

कि इंस्पैक्टर कुछ न कहलवा पाया. पर पूछताछ के बाद जब इल्या बाहर आया तो पसीने से सराबोर उसके शरीर पर ठंडी-ठंडी हवा लगी. आधे घंटे के भीतर वह सीधा ओलिंपियाडा के घर पर जा पहुंचा.

"सुनो, हम दोनों इस कस्बे से कहीं और चलें!" ओलिंपियाडा ने प्रस्ताव रखा:

"नहीं, मैं बिल्कुल नहीं जाऊंगा! देखें आगे क्या होता है?"

"जाना तुम इसलिए नहीं चाहते कि तुम मुझसे डरते हो."

कुछ दिनों बाद इल्या को खबर मिली कि पोल्येत्कोव की हत्या के सिलसिले में पुलिस को एक लंबे कद के व्यक्ति की तलाश है.

सभी जगहों पर इस हत्या की चर्चा चल रही थी....पर धीरे-धीरे इल्या के भय ने अब अनिश्चितता का रूप ले लिया था.

याकोव से वह ऊब चुका था. पेत्रुखा का यह गंदा और आलसी बेटा जब-तब किताबों पर ही बातचीत करता रहता.

कभी इल्या ओलिंपियाडा की बांहों में पनाह ढूंढता तो कभी वीरा से मिलने भी चला जाता.

ओलिंपियाडा उससे बूढ़े के बारे में बात अवश्य करती. जब इल्या बहुत चिढ़ जाता और जाने को होता तो वह मनुहार करती और उसके सामने तमाम कपड़े उतारकर खड़ी हो जाती, "देखो, क्या मैं सुंदर नहीं हूं. तुम चाहो तो मेरी गर्दन काट लो. मैं हंसती ही रहूंगी."

एक बार तेरेंती ने इल्या से पूछा, "तुम्हारे बारे में जो अफवाहें उड़ रही हैं...!"

"ईर्ष्या!"

बेहतर होगा तुम कहीं और रहने लगो. पेत्रुखा ने कहा है कि उसके यहा बदमाशों के लिए कोई जगह नहीं है."

"उस भटियारे को बोलो कि अपना मुंह बंद रखे!"

बात आयी-गयी हो गयी. याकोव से मुलाकात होती तो चर्चा यही होती कि पेत्रुखा कैसा अजीब आदमी है. इल्या कहता, "पूरे समाज में हर आदमी दूसरे को ठग रहा है."

याकोव कहता, "इल्या, तुम और मैं तो गलत जगह पैदा हो गये. तुम दूसरों की आलोचना करके मन की भड़ास तो निकाल लेते हो. मुझसे यह भी नहीं हो पाता. कहीं दूर भाग जाना चाहता हूं."

परफिश्का और मतीत्सा जिस तरह शराब पीकर झूम रहे थे और माशा का कहीं पता नहीं था...याकोव और इल्या को यह यकीन हो गया कि जरूर इन दोनों ने मिलकर या तो माशा की शादी रचा डाली है या फिर उसे बेच ही दिया है.

अगले दिन इल्या को परफिश्का ने बताया कि माशा की शादी खोनोव नामक पचास वर्षीय दुकानदार से कर दी गयी है. खोनोव ने परफिश्का को अपने घर आने से रोक दिया है. यह जरूर कहा है कि कभी-कभार वह चाहे तो दुकान पर आ सकता है. पीने के लिए वह एक कोपेक दिया करेगा. परफिश्का को पीने की बुरी लत लग गयी थी. उसने इल्या से भी पांच कोपेक झटक लिये, "भगवान पूछेगा, तो कहूंगा—बच्चा पैदा हुआ और शराबी मरा!"

उसी शाम इल्या को पेत्रुखा का मकान छोड़ देना पड़ा. याकोव ने शराब पीकर पेत्रुखा को भला-बुरा कहा तो उसने याकोव की जमकर पिटाई कर दी. अब क्या था इल्या ने कह-सुनकर उसे अस्पताल भिजवाया और स्वयं पांच रूबल में एक कमरा इलाके के संतरी के यहां ले लिया.

इल्या गया तो अस्पताल में याकोव को देखने था....पर पावेल से भी वहीं मुलाकात हो गयी. वीरा के संसर्ग से उसे यौन रोग हो गया था.

इल्या ने जिस घर में रहना शुरू किया था उसकी मालकिन—तात्याना बहुत सहृदय किस्म की युवती थी. दो दिन के भीतर ही उसने अपनी जिंदगी के विषय में इल्या को सब कुछ बता दिया. वह और उसका पति बहुत जल्दी अमीर बन जाना चाहते थे. तात्याना का पति किरिक जब शाम को घर लौटता तो दिन भर की तमाम घटनाएं सुनाता. कितने कागज तैयार किये. पुलिस के चीफ कमिश्नर या दूसरे बॉस ने उससे आज क्या कहा!

यह सुनते-सुनते कभी-कभार इल्या एकदम उदास भी हो जाता.

चंद रोज बाद ही इल्या को एक खत मिला जिसमें ओलिंपियाडा ने हमेशा के लिए स्वयं को भुला देने की बात कही थी. लिखा था, कि एक अंगूठी अपनी निशानी बतौर भेज रही है...उसे इल्या जरूर पहन ले. वह अनानिन से शादी कर रही है.

इल्या ने खत अपनी मुट्ठी में भींचा, उसे लगा कि उसने ज्यादती की है ओलिंपियाडा के साथ.

एक दिन इल्या गिरजाघर गया. पर वहां उसका मन न लगा. सोचता रहा कि उसकी अनुपस्थिति में अगर घर की तलाशी ले ली गयी तो? घर लौटा तो घबराहट के मारे उसका रंग उड़ा हुआ था.

तात्याना समझी कि यह ओलिंपियाडा के खत की वजह से नर्वस हुआ जा रहा है. दरअसल, तात्याना ने वह खत पढ़ लिया था. वह इल्या को समझाने-बुझाने लगी.

एक दिन पति-पत्नी ने उसे बुलाया और दुकान खोलने के लिए उसकी आर्थिक मदद करने की पेशकश की. इल्या भी राजी हो गया कि कुछ पैसा अपने चाचा से भी ले लेगा.

इन दिनों इल्या की मनःस्थिति बड़ी विचित्र थी. उसे ऐसी कहानियां बिलकुल अच्छी न लगतीं जिनमें जीवन का यथार्थ होता.

पावेल स्वयं को अस्पताल की बजाय जेल में बंद महसूस करता.

याकोव को बाद में पता चला कि वह तपेदिक का रोगी है. पर वह अस्पताल में बेहद खुश था और वहीं बने रहना चाहता था.

इल्या वहां पहुंचा तो याकोव गिरजाघर के मोटे कर्मचारी को बाइबिल सुना रहा था.

देर तक तीनों के बीच पापी, पाप और बाइबिल पर चर्चा होती रही. इल्या बातचीत से उकता गया तो अभिवादन कर उठ खड़ा हुआ. पर उसके अंतस पर गिरजाघर के कर्मचारी का गंभीर चेहरा बैठ गया था.

यही शाम थी जब तात्याना और उसके पति ने इल्या को दुकान खोलकर व्यवसाय शुरू करने की पेशकश की.

खुशी में तीनों ने शैंपेन ली और 'हुर्रा'!' करते हुए पीने लगे.

कई दिन तक इल्या और तात्याना अपनी नयी योजना पर विचार करते रहे. दुकान के लिए तात्याना ने जगह भी खोज ली थी.

इल्या खुशी-खुशी में अपने मित्रों से मिलने अस्पताल जा पहुंचा. पावेल से भेंट हुई.

"कल जा रहा हूं!" पावेल ने बताया, "सवाल यह है कि वीरा मुझसे शादी

करने को तैयार होगी या नहीं!"

"ध्यान रखना कहीं यह रोग तुम्हें फिर से न हो जाये!" इल्या ने चेतावनी दी, "मैं तो कहता हूं, तुम सीसे की दुकान खोल लो! मैं तुम्हारी मदद करद दूंगा!"

"तुम मुझे कुछ रूबल दे दो ताकि मैं वीरा को लेकर किसी दूसरे शहर चला जाऊं!"

याकोव बहुत उदास था. उसने बताया, "पिता कल आये थे. वे एक और शराब की दुकान खोलना चाहते हैं. मुझे वहां काम करना होगा!"

याकोव ने इल्या से यह भी पूछा कि वह माशा से मिला या नहीं! इल्या उदास हो गया. याकोव उसे बताता रहा कि गिरजाघर का वह मोटा कर्मचारी जीना चाहता है पर वह बच नहीं पायेगा. इल्या लौटने लगा तो याकोव ने फिर उसे माशा से मिल लेने को कहा.

इल्या घर लौटा तो काफी रात हो चुकी थी. खिड़की में प्रकाश नहीं था तात्याना ने दरवाजा खोला, "दरवाजा जल्दी बंद कर दो! मैंने कपड़े नहीं पहने हैं. पति बाहर गया हुआ है. कितनी देर कर दी. कहां गये थे तुम?"

दरवाजा बंद करके पलटा तो तात्याना सामने खड़ी थी. इल्या पीछे कहा हटता! उसने अपने हाथ उठाये और तात्याना के कंधों पर रख दिये तात्याना भी उससे सट गयी. अब इल्या उसके साथ अपने कमरे में आ गया

उस शाम जब इल्या समावर के पास बैठा था तो उस पावेलके शब्द याद आये. उसे लगा कि वह तात्याना के एजेंट के तौर पर काम कर रहा है

एक बार तो उसने कह ही दिया, "तात्याना, तुम बेशर्म हो!"

वह हंस दी. इल्या के प्रति उसके मन में अवज्ञा और उपेक्षा और बढ़ गयी.

इन्हीं दिनों इल्या का परिचय ग्राविक की बहन से हुआ.

एक दिन दुकान बंद करने के वक्त ही पावेल आ गया. उसने बताया, "वीरा चली गयी." वह प्रतिशोध से भरा हुआ था.

कुछ दिनों बाद, दुकान बंद करने के वक्त एक मरियल-सी औरत ने प्रवेश किया. यह माशा थी, "वह मेरी जान लेकर रहेगा...मेरा पीछा कर रहा होगा. मुझे छोड़ेगा नहीं. मैं उसे चौथी बार छोड़कर आयी हूं...मैं तो कुएं में कूद जाना चाहती थी...पर उसने मुझे पकड़ लिया. मेरी छातियों को चिमटे से पकड़ कर खींचने लगा...मेरे कंधे देखो," उसने कपड़ा सरकाया, "पूरे शरीर का यही हाल है. वह मेरी बगल के बाल भी खींच लेता है. मैं नहीं समझ पाती कि मुझे क्या करना चाहिए."

"मुकदमा दायर कर दो!" इल्या ने झुंझलाते हुए कहा, "मैं कल ही थाने जाऊंगा."

सुबह पावेल आया तो उसने बताया कि वीरा को जेल भेज दिया गया है. उसकी बातों से लग रहा था कि वह बुरी तरह से झुंझलाया हुआ है. बातचीत धीरे-धीरे कहा सुनी में बदल ही रही थी कि इल्या के नौकर ग्राविक की बहन आ पहुंची.

इल्या ने उसे माशा और पावेल से परिचित कराते हुए तमाम दिक्कतें बयान कर दीं. पहली बार ग्राविक की बहन ने इतनी देर तक बातचीत में हिस्सा लिया. उसके व्यवहार से स्पष्ट था कि वह स्वरितनिर्णय में विश्वास रखती है. माशा को वह डाक्टर को दिखाने को ले गयी और पावेल से ग्राविक के साथ शाम को घर आने को कहा. पर वह इस बात से खुश थी कि इल्या ने उससे एक मनुष्य के नाते व्यवहार किया. उसके भाई के बॉस के नाते नहीं

ग्राविक से दुकान बंद रखने को कहकर इल्या टहलने निकल गया. वह दरअसल, अपने अन्य परिचितों से ग्राविक की बहन सोन्या की तुलना कर रहा था. विचारों में खोया-सोया इल्या पुराने कब्रिस्तान जा पहुंचा. वहां उसने पोल्येत्कोव की कब्र पर थूकते हुए अपने मन की भड़ास निकाली.

याकोव की याद जाने कहां से आ गयी थी आज! इल्या याकोव के शराब-खाने की ओर जा निकला. वहां पर्रफिश्का अपनी चिरपरिचित मुद्रा में चिल्ला रहा था. याकोव अब शराबखाने में जुते किसी बैल सरीखा लगा हो, तपेदिक जरूर उसके साथ था. उसे याकोव के प्रति अरुचि हो गयी. वह ग्राविक की बहन के बारे में सोचता रहता.

एक दिन उसे पावेलने बताया कि माशा ग्राविक के यहां खुश है. वे लोग बहुत खयाल रखते हैं उसका. वीरा के मुकदमे की पैरवी भी वे कर रहे हैं.

एक दिन ग्राविक की बहन दुकान में आयी तो इल्या से उसकी कहा-सुनी हो गयी. दरअसल, वह इल्या की मुनाफाखोरी पर खुश नहीं थी. नाराज होकर ग्राविक को साथ ले वह घर चली गयी. पावेल को यह घटना पता लगी तो वह बहुत नाराज हुआ. सीधा इल्या के पास जा पहुंचा. पर इल्या का दिमाग तो ठिकाने पर था नहीं. उसने न तो पावेल से सीधे मुंह बात की...न ही अपनी हिस्सेदार तात्याना को मुंह लगाया.

अब तक इल्या का चाचा तेरेंती तीर्थयात्रा से लौट चुका था. इल्या ने मन ही मन सोचा, 'तात्याना जैसी औरत के साथ मैं अब काम नहीं कर सकता. मैं आत्महत्या कर लूंगा!'

दो दिन बाद 23 तारीख थी. इल्या को वीरा के मुकदमे की याद आयी. वह खुश हुआ कि दुकान से बचने का एक बहाना तो मिला. जल्दी-जल्दी चाय पीकर वह सीधा अदालत की ओर चल पड़ा.

अदालत की कार्यवाही और हालत देखकर इल्या बुरी तरह विक्षुब्ध हो उठा. उसने देखा कि निर्णय करने वाले तमाम लोग ऐसे हैं जो स्वयं अपराधी और भ्रष्ट हैं. पेत्रुखा और ग्रोमोव जैसे लोग. वीरा से जिस तरह के सवाल-जवाब किये जा रहे थे...वे निहायत फूहड़ और हास्यास्पद थे.

इल्या के मन में एक विचित्र खयाल उभरा. उसने सोचा—यदि मैं भी अपना अपराध मान लूं तो ये लोग तुरत-फुरत सजा सुना डालेंगे. खुद पेत्रुखा जैसा अपराधी ऐश करता रहेगा.

वीरा उस वक्त कांपते हुए अजीबोगरीब तरह से चिल्ला रही थी.

पावेल करीब-करीब पागलों की तरह से दीवार से टिका खड़ा था. वह अपील करने की सोच रहा था.

इल्या को सहसा याद हो आया कि आज तात्याना का जन्म दिन है. वह सीधा तात्याना के यहां जा पहुंचा. पर वहां उसके भीतर का गुबार कुछ इस तरह से फूट निकला कि पार्टी का सारा माहौल बदल गया.

इल्या ने अदालत का अपना अनुभव सुनाया. वह बुरी तरह से भंडाफोड़ करने में लगा था, "क्या आप लोग यकीन करेंगे कि जो लोग अदालत में उस लड़की के केस का फैसला कर रहे थे...वे ही जाने कितनी बार उसे इस्तेमाल भी कर चुके थे..."

यह सुनकर एक सज्जन बेहद नाराज हो गये, "इस तरह से, जूरी के सदस्यों का अपमान करने का आपको कोई हक नहीं."

"बंद करो, तुम निरे मूर्ख हो!" किरिक ने इल्या के पास आकर धमकाया.

इल्या चौंका और उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया. पर इसके बाद का दृश्य उपस्थित मेहमानों को चौंकाने के लिए काफी था. इल्या पूरे आवेश में अपने और तात्याना के शारीरिक संबंधों का बखान कर रहा था. उसके कहने का तरीका बड़ा अव्यवस्थित था. पर वह सभी कुछ खुलासा किये दे रहा था. यहां तक कि उसने यह भी कह डाला था कि उसी ने पोल्येत्कोव की हत्या की थी.

देखते ही देखते पुलिस आ पहुंची. पूछताछ के बाद अब इल्या पुलिस द्वारा ले जाया जा रहा था. दृश्य एकाएक बदल गया था. किरिक घबरा रहा था कि कहीं इल्या पुलिस के सामने कुछ और न बक दे.

"मैं तुम्हें हथकड़ी नहीं लगाता...पर तुम भाग मत जाना!" इंस्पेक्टर ने इल्या को समझाया. चलते-चलते अचानक इल्या को एक पत्थर की ठोकर लगी और वह गिरते-गिरते बचा. वह सोच रहा था—अब पेत्रुखा मेरा जज बनेगा. ...वह आगे को उछला और सरपट भाग लिया. हवा उसके कानों में सनसना रही थी.

"आओ पकड़ो मुझे." वह ऊंची आवाज में चिल्लाया और तेजी से दौड़ता चला गया. अचानक अंधेरे में, उसके सामने पत्थर की दीवार आ गयी.

दो परछाईयां तेजी से दीवार के पास पहुंचीं.

"इसका तो सिर फट गया!" एक सिपाही फुसफुसाया.

दूसरा सिपाही खड़ा हो गया और छाती पर सलीब का निशान बनाते हुए उखड़े हुए स्वर में बोला, "भगवान, इसकी आत्मा को शांति दे!" □

संक्षिप्त रूपांतर : अलका पांडे

गोर्की की जगह लेने वाला कोई नहीं रहा

— प्रेमचंद

प्रेमचंद और गोर्की समकालीन लेखक थे. प्रेमचंद का गोर्की के साहित्य से परिचय अंग्रेजी माध्यम से हुआ और इस शताब्दी के तीसरे दशक में गोर्की की कृतियों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद होने आरंभ हो गये. गोर्की के प्रति उनकी श्रद्धा का ज्ञान गोर्की के देहांत के बाद होता है, जब वे गोर्की के देहांत पर आयोजित शोक-सभा में पढ़ने के लिए, बीमारी के बावजूद, अपना लेख लिखने में लग जाते हैं.

शिवरानी देवी ने इस घटना का बड़ा यथार्थपूर्ण वर्णन किया है. बनारस से प्रकाशित होने वाले दैनिक अखबार 'आज' कार्यालय में शोक-सभा आयोजित की गयी थी. प्रेमचंद को इसकी अध्यक्षता करनी थी और गोर्की पर अपना लेख पढ़ना था. एक रात को शिवरानी देवी की आंख खुल गयी तो देखा कि प्रेमचंद जमीन पर बैठे गोर्की पर लेख लिख रहे हैं. इस पर शिवरानी बोली, "आप यह क्या कर रहे हैं?"

प्रेमचंद, "कुछ नहीं."

शिवरानी, "नहीं, कुछ तो लिख रहे हैं."

प्रेमचंद, "परसों 'आज' ऑफिस में गोर्की की मृत्यु पर मीटिंग होने वाली है."

शिवरानी, "जब तबीयत ठीक नहीं तो भाषण कैसे लिखा जायगा?"

प्रेमचंद बोले, "जरूरी तो हुई है. बिना लिखे काम नहीं चलेगा. अपनी खुशी से काम करने में आराम या तकलीफ का बोध नहीं होता. जिसको आदमी कर्त्तव्य समझ लेता है, उसके करने में मनुष्य को कुछ भी तकलीफ नहीं होती. इन कामों को आदमी सबसे ज्यादा जरूरी समझता है."

शिवरानी बोली, "यह मीटिंग है कैसी?"

प्रेमचंद बोले, "शोक-सभा है."

शिवरानी बोली, "वह कौन हिंदुस्तानी थे?"

प्रेमचंद बोले, "यही तो हम लोगों की तंगदिली है. गोर्की इतना बड़ा लेखक था कि उसके विषय में जातीयता का सवाल ही नहीं उठता. लेखक हिंदुस्तानी या यूरोपियन नहीं देखा जाता. वह जो लिखेगा, उससे सभी को लाभ होता है."

शिवरानी ने कहा, "ठीक. उसने हिंदुस्तान के लिए कुछ लिखा?"

प्रेमचंद बोले, "तुम गलती करती हो रानी! लेखक के पास होता ही क्या है, जिसे वह अलग-अलग बांट दे. लेखक जो तपस्या करता है, उससे जनता का कल्याण होता है. वह अपने लिए कुछ भी नहीं करता."

शिवरानी बोली, "यहां वालों को तो पहले अपनों की पूजा करनी चाहिए. आगरे का कवि-सम्मेलन आपको याद नहीं रहा क्या? जब हरिऔध जी को भरी सभा में कुशब्द कहा गया था. आप ही उस पर बिगड़े भी थे. और लोग तो चुप रह गये थे."

प्रेमचंद गंभीर होकर बोले, "इनमें लेखकों और पाठकों का दुर्भाग्य है, क्योंकि जब तक उनके दिलों में उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम न हो, तब उनके उपदेश वे कैसे ले ही सकते हैं?"

शिवरानी से इसी प्रकार बात करते-करते सवेरे के चार बज गये. शिवरानी ने देखा कि लिखते समय उनकी आंखों में आंसू थे. प्रेमचंद, सुबह हुई तो शोक-सभा में जाने के लिए तैयार होने लगे. शिवरानी उन्हें कमजोरी के कारण रोकना चाहती थीं, परन्तु प्रेमचंद की तबीयत बिना जाये मान नहीं रही थी. इस पर श्रीपतराय को उनके साथ भेजा, परन्तु प्रेमचंद अपनी अस्वस्थता के कारण भाषण पढ़ना तो दूर, खड़े भी नहीं हो सके. इस पर उनका लिखित भाषण किसी अन्य व्यक्ति ने पढ़ा. प्रेमचंद घर लौटे तो सीढ़ियों से ऊपर न चढ़ा गया. ऊपर पहुंचकर चारपाई पर लेट गये. शिवरानी से बोले, "गोर्की के मरने से मुझे बहुत दुख हुआ. मेरे दिल में यही आ रहा है कि गोर्की की जगह लेने वाला कोई नहीं रहा."

प्रेमचंद इसके बाद कई दिनों तक गोर्की की चर्चा करते रहे. उनकी दृष्टि में गोर्की के समकक्ष कोई दूसरा लेखक नहीं था. हमारा दुर्भाग्य यह है कि प्रेमचंद का गोर्की की शोक-सभा के लिए लिखा भाषण अभी तक अनुपलब्ध है. यह एक ऐसा महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसकी खोज अवश्य ही की जानी चाहिए. □

प्रस्तुति : डा. कमल किशोर गोयनका

■ गोर्की के विचार

कल, आज और कल का भारत

"संसार के अन्य सभी देशों की तुलना में भारत के लोगों ने ही सबसे पहले आदर्श की खोज शुरू की थी और उसकी सैद्धांतिक खोज में वे ही सबसे आगे गये."

"मानव जाति का इतिहास यूनान और रोम से नहीं, भारत और चीन से आरंभ करना चाहिए."

"तीस करोड़ भारतीयों को अंग्रेज लार्ड और व्यापारी फूटी आंखों नहीं सुहाते और वे अधिकाधिक यह समझते जा रहे हैं कि इंग्लैंड के दास होने की भूमिका भगवान ने उनके लिए निर्धारित नहीं की है."

"भारत में राष्ट्रीय क्रांति ने अपने को काफी ठोस रूप में प्रकट किया है और बहुत पहले, अतीत में भी, सिपाहियों के विद्रोह को भी इस तरह स्पष्ट करना बहुत कठिन है कि भारतीय निरंकुश शासन के अभ्यस्त हैं."

"भारत में इस बात का विश्वास दिलाने वाली आवाज अधिकाधिक जोर पकड़ती जा रही है कि अब वह समय आ गया है, जब भारतीयों के लिए सामाजिक और राजनैतिक निर्माण-कार्य अपने हाथ में लेना जरूरी हो गया है, कि भारत में अंग्रेजी राज के दिन पूरे हो चुके हैं."

प्र. क. कि. गो.

■ रूस के नवनिर्माण की चिंता में निमग्न गोर्की, लेनिन एवं उनके अन्य सम्मानधर्मी.

गोर्की आज रूस के ही नहीं पूरी दुनिया के आजादीपसंद लोगों का गौरव हैं. समाज और उसमें सक्रिय परस्पर विरोधी शक्तियों को समझने के लिए उनकी कथा-रचनाओं ने ही नहीं शफाक विचारों ने भी साहित्य का वह राजमार्ग तैयार किया जिस पर जनता के सुखों-दुखों, स्वप्नों, संघर्षों और आस्थाओं से जुड़े नये रचनाकार निर्द्वंद्व होकर आगे बढ़ सके. यहां प्रस्तुत है उनके विचारों के महत्वपूर्ण संकलन 'व्यक्तित्व का विघटन' का सार-संक्षेप.

व्यक्तित्व का विघटन

समष्टि कभी अमरत्व की खोज नहीं करती, क्योंकि उसे तो अमरत्व प्राप्त है ही. लेकिन जब व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है तो वह अपने अंदर अपने अस्तित्व को चिरंतन बनाने की प्यास अनिवार्यतः जगा लेता है. जनसाधारण की सृजनशीलता तो एक सहज उद्रेक होतीं है, जो प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की आंतरिक इच्छा से प्रस्फुटित होती है, जबकि व्यक्ति अपनी प्रभुता और सत्ता का अधिकार लोगों से जबरदस्ती एकमात्र ईश्वर कीं कल्पना मनवाकर करता है. सृजनशीलता से व्यक्तित्व का निर्माण होता है, जबकि अपना अधिकार मनवाने की जबरदस्ती से व्यक्तिवाद पैदा होता है.

व्यक्तिवाद ने जब सत्ताधारी वर्ग के रूप में अपनी स्थिति मजबूत कर ली, जिसे दूसरों को दबाने का अधिकार था, तो उसने एक अनित्य ईश्वर की सृष्टि की और जनसाधारण को 'मैं' की देवतुल्य प्रकृति स्वीकार करने के लिए मजबूर किया तथा स्वयं भी अपनी सृजनात्मक शक्तियों में एक अडिग विश्वास पैदा कर लिया. लेकिन अपने विकास की चरम अवस्था में पहुंचकर निरपेक्ष स्वतंत्रता प्राप्त करने की व्यक्ति की परिचेष्टा चिरंतन ईश्वर की अपनी ही कल्पना के विरुद्ध जा पड़ी. सत्ता की प्यास मिटाने के लिए, व्यक्तिवाद को मजबूर होकर, अपने उस अविनश्वर ईश्वर की हत्या करनी पड़ गयी, जो उसकी सत्ता कीं नींव था और उसके अस्तित्व को औचित्य प्रदान करता था. उसी क्षण से ईश्वरतुल्य एकांतिक 'मैं' का ह्रास तेजी से शुरू हो गया, क्योंकि वह किसी बाह्य शक्ति की मदद के बिना सृजनशील होने में असमर्थ थी और इस प्रकार जीवित रहने में भी असमर्थ थी—क्योंकि जीवित रहना और सृजन करना अविच्छिन्न प्रक्रियाएं हैं.

सभी जानते हैं कि समष्टि की एकता को तोड़ने में और एक आत्मनिर्भर 'मैं' की सृष्टि में व्यक्तिगत संपत्ति की कितनी बड़ी भूमिका रही है. इस प्रक्रिया में हमें यह भी देखना चाहिए कि लोगों को शारीरिक और नैतिक गुलामी में डालने के अलावा व्यक्तिगत संपत्ति ने जनता की सामूहिक शक्ति का भी ह्रास किया है और समष्टि की उस भव्य, काव्यमय और सहज मनःशक्ति का भी क्रमशः नाश किया है, जिसने महान कलाकृतियों से विश्व को समृद्ध किया है.

मिल्टन और दांते, मिकीविक्ज, गेटे और शिलर तभी कल्पना के दिव्य शिखरों तक उड़ान भर सके, जब उनकी आत्मा समष्टि की

सृजनशीलता से आलोकित हुई और उन्होंने लोककाव्य से प्रेरणा ग्रहण की जो विवेक और सामान्य ज्ञान का इतना गहरा, इतना अनेकरूपी और पुष्कल स्रोत है. व्यक्ति यदि अपने ही साधनों पर निर्भर करे, समष्टि से उसका संपर्क न रहे, और जो विचार लोगों को एकजुट करते हैं, उनके प्रभावों से अलग रहे, तो वह अकर्मण्य और रूढ़िवादी हो जाता है और जीवन का विरोधी बन जाता है.

हम देख सकते हैं कि आज के मनुष्य में क्षुद्र चीजों का ही सृजन करने की क्षमता बाकी रही है और उसकी आत्मा की भयंकर निरर्थकता तो और भी द्रष्टव्य है. ऐसी स्थिति में हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमारा भविष्य क्या होगा, विचार करना चाहिए कि अतीत हमें क्या सिखा सकता है और उन कारणों को समझना चाहिए जो व्यक्ति को एक दुर्निवार विनाश की ओर खींच रहे हैं.

व्यक्तिवाद जिस समय अपनी मृत्युशैया पर अंतिम सांसें गिन रहा था, उस समय पूंजीवाद अपनी इच्छा के विरुद्ध समष्टि की पुनर्सृष्टि कर

हम देख सकते हैं कि आज के मनुष्य में क्षुद्र चीजों का ही सृजन करने की क्षमता बाकी रही है और उसकी आत्मा की भयंकर निरर्थकता तो और भी द्रष्टव्य है. ऐसी स्थिति में हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमारा भविष्य क्या होगा, विचारना चाहिए कि अतीत हमें क्या सिखा सकता है और उन कारणों को समझना चाहिए जो व्यक्ति को एक दुर्निवार विनाश की ओर खींच रहे हैं.

रहा था और सर्वहारा वर्ग को एक ठोस नैतिक शक्ति में बलात् ढाल रहा था. धीरे-धीरे, किंतु क्रमशः बढ़ती हुई गति से, इस शक्ति को यह चेतना प्राप्त होती गयी कि विश्व की महान समष्टि-शक्ति होने के नाते स्वतंत्र रूप से जीवन का पुनर्निर्माण करने का दायित्व उस पर ही है.

व्यक्तिवादियों को इस शक्ति का उदय ऐसा लगता है जैसे क्षितिज पर तूफानी बादलों की काली घटा घिर आयी हो. यह शक्ति उनको उतनी ही डरावनी लगती है, जितनी शारीरिक मृत्यु, क्योंकि उनके लिए यह शक्ति सामाजिक मृत्यु की सूचक है. उनमें से हरेक का विचार है कि उसकी 'मैं' विशेष सुविधाओं और विशेष प्रशंसा की हकदार है, जबकि यह सर्वहारा वर्ग, जो संसार में तो एक नया जीवन फूंकने के लिए कटिबद्ध है, लेकिन 'आत्मा के इन अभिजात प्रतिनिधियों' के बीच अपनी सहानुभूति बांटने का इरादा नहीं रखता. इस स्थिति के प्रति जागरुक होने के कारण ये सज्जन सर्वहारा वर्ग से दिली नफरत करते हैं.

आध्यात्मिक रंकता की स्थिति में पहुंचकर, विसंगतियों के जाल में फंसकर और हमेशा समृद्धि के आरामदेह कोने में शरण लेने की हास्यास्पद तथा दयनीय चेष्टाओं में पड़कर, व्यक्तिवाद विघटित हो रहा है और उसकी मानसिकता निरंतर क्षुद्र से क्षुद्रतर होती जाती है. इस बात की अनुभूति से और निराशा के आतंक से घबराकर, जिसे वह चाहे स्वीकार करता हो या अपने आपसे भी छिपाता हो, व्यक्तिवाद विक्षिप्त की तरह मुक्ति की तलाश में इधर-उधर भटकता फिर रहा है. वह कभी आधिभौतिक तत्वज्ञान में डुबकी लगाता है, कभी पापाचार की कीचड़ में धंस जाता है; कभी ईश्वर की खोज करता है, तो कभी शैतान में यकीन करने लगता है. उसकी समस्त खोज और व्याकुलता उसकी आसन्न मृत्यु की पूर्वसूचक है और उसी दुर्निवार भविष्य की ओर संकेत करती है, जिसकी स्पष्ट चेतना उसे चाहे न हो, लेकिन जिसका अनुभव वह तीखे रूप में करने लगा है.

आज का व्यक्तिवादी एक घबराहटभरे अवसाद के चंगुल में फंस गया है. वह अपना आपा और विवेक खो बैठा है और जीवन पर अपनी पकड़ कायम रखने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहा है. लेकिन उसकी शक्ति दम तोड़ रही है और अब उसके पास अपनी चालाकी और धूर्तता के अलावा और कोई सहारा नहीं रहा, जिसे कुछ लोग 'मूर्खों का विवेक' कहकर पुकारते हैं, अपने पूर्व व्यक्तित्व का मात्र खोल ओढ़े, आत्मा में थकान और मन में व्यग्र करनेवाली आशंकाएं लिये, वह अब कभी समाजवाद से इश्क फरमाता है तो कभी पूंजीवाद की खुशामद करता है, जबकि उसके अंदर आसन्न मृत्यु की पूर्वचेतना उसकी क्षुद्र और बीमार 'मैं' के विघटन की रफ्तार को और भी तेज कर देती है. उसकी निराशा अब अक्सर एक भयंकर अनास्था का रूप ले लेती है और व्यक्तिवादी कल तक जिसकी पूजा करता आया था, आज उसको उन्मादी की तरह नकारने और जलाने लगता है, क्योंकि नकारात्मकता की स्वाभाविक परिणति इस तरह की उच्छृंखलता और गुंडागर्दी में ही होती है.

मैं इस शब्द का प्रयोग करके उन लोगों का अपमान नहीं करना चाहता, जो पहले से ही अपमानित किये जा चुके हैं, न तिरस्कृत लोगों का तिरस्कार करना चाहता हूं—जिंदगी स्वयं बड़ी कठोरता से उनके साथ ऐसा व्यवहार करती रही है—नहीं, मेरा मंतव्य केवल यह है कि उच्छृंखलता और गुंडागर्दी दरअसल व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक ह्रास का ही परिणाम होती है, जो कि उसके व्यक्तित्व के चरम विघटन का अकाट्य प्रमाण पेश करती है.

उच्छृंखल या गुंडा व्यक्ति ऐसा प्राणी होता है जिसमें सामाजिक भावना लेशमात्र भी नहीं होती. वह ऐसा प्राणी होता है जो अपने आस-पड़ोस की दुनिया से कोई ताल्लुक महसूस नहीं करता, हर प्रकार के जीवन-मूल्यों से बेखबर होता है और धीरे-धीरे अपने आपको नष्ट होने से बचाने की सहज वृत्ति भी खो देता है. यहां तक कि वह अपने जीवन की कीमत से भी बेखबर हो जाता है. ऐसा व्यक्ति स्थिर मन से सोचने में असमर्थ होता है और बड़ी मुश्किल से अपने विचारों में संगति बिठा पाता है.

उसके विचारों की अस्थिरता और उसके विचित्र तथा कभी-कभी जुगुप्सा पैदा करने वाले कार्यों के मूल में दरअसल दुनिया और जनसाधारण के प्रति नफरत, सहज किंतु नपुंसक शत्रुता और एक बीमार मन की निराशावादिता होती है. उसका बाह्य-बोध विकृत हो जाता है. इसलिए वह जिंदगी के काफिले के बहुत पीछे किसी तरह अपने को घसीटता हुआ चलता है. वह रास्ता भूल जाता है और कोशिश करके भी उसे नहीं पा सकता. उसकी चीत्कारें बेकार जाती हैं, क्योंकि वे क्षीण होती हैं. उसके वाक्य असंगत होते हैं और शब्द फीके होते हैं. उसकी अपीलें भी बेकार होती हैं, क्योंकि उसके गिर्द उसके ही जैसे लोगों का जमाव होता है, जो स्वयं उतने ही नपुंसक और अर्द्धविक्षिप्त होते हैं. उसकी तरह वे भी कभी किसी की मदद नहीं करते. उसकी तरह वे भी उतनी ही नफरत से उसके पदचिह्नों पर थूकते हैं, जो अपनी मंजिल पर आगे बढ़ गया है; उसकी निंदा करते हैं, जिसको समझ नहीं पाते, और जो उनके अनुकूल नहीं है, उसका मजाक उड़ाते हैं. तात्पर्य यह कि वे उस सब पर थूकते हैं जो सक्रिय है, जिसमें सृजन की भावना जाग्रत है, जो अपने महान कारनामों की ज्योति से विश्व को अलंकृत करता है और जिसके अंदर भविष्य में विश्वास की आग जलती है.

आज के बहुत-से लेखक शायद इस बात से इनकार नहीं करेंगे कि उनके निकट अपनी मातृभूमि का विचार एक गौण वस्तु है, कि सामाजिक समस्याएं उनके अंदर उतनी तीव्र सृजनात्मक प्रेरणा नहीं जगातीं, जितनी प्रेरणा व्यक्ति के अस्तित्व की पहेलियां, कि उनके लिए कला ही मुख्य चीज है—ऐसी तथाकथित मुक्त कला, जो देश की नियति, राजनीति और दलों से ऊपर है और दिन, वर्ष या युग के प्रश्नों में कोई रुचि नहीं रखती. ऐसी भी कला हो सकती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है, क्योंकि विश्व का कौन ऐसा विवेकशील प्राणी होगा, जो चेतन

या अचेतन रूप से किसी भी सामाजिक समूह से संबद्ध होने से इनकार करेगा? उसके हितों से अपने को बंधा हुआ महसूस नहीं करेगा? और अगर वे हित उसकी आकांक्षाओं से मेल खाते हैं तो उनकी रक्षा नहीं करेगा तथा जो समूह उसके विरुद्ध हैं उनसे संघर्ष नहीं करेगा? जो जन्म से गूंगे-बहरे हैं, उन्हें इस नियम का अपवाद माना जा सकता है. मनोगत भ्रांतियों से पीड़ित लोग भी इस नियम के दायरे में नहीं आते, और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, उच्छृंखल और गुंडे भी अपने आपको इस दायरे के बाहर रख सकते हैं, यद्यपि गरीब बस्तियों और सड़कों के गुंडों का भी अपना दल या संगठन होता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि सामाजिक समूहों की अनिवार्यता की चेतना उच्छृंखल व्यक्तियों की आत्मा में भी अभी तक पूरी तरह मर नहीं सकी है.

तर्क की खातिर आइये थोड़ी देर के लिए हम यह मान लें कि ऐसी 'मुक्त' कला भी होती है, जो पूरी तरह आत्म-निरपेक्ष और विषयपरक हो. लेकिन इस बात के प्रमाण देने की जरूरत नहीं कि ऐसी कला की वकालत करनेवाले क्रांति और क्रांतिकारियों के मामले में आत्म-निरपेक्ष और विषयपरक नहीं पाये जाते. उनकी दृष्टि में एक क्रांतिकारी की मनोवृत्ति उपेक्षा की वस्तु ही नहीं है, बल्कि एक अज्ञात, अजनबी और उनकी मनोभावना से प्रतिकूल, विरोधी चीज भी है. मेरा अनुमान है कि हमारे जमाने के अधिकतर प्रमुख लेखक इस बात से इनकार नहीं करेंगे कि क्रांतिकारी की मनोवृत्ति उन्हें कतई पसंद नहीं है और इस मनोवृत्ति का वे अपने ढंग से सदा विरोध करते आये हैं.

अपने इन अग्रणी नेताओं का अनुकरण करके छोटे-मोटे लेखकों ने भी अब क्रांतिकारियों की एड़ियों पर कंकड़ फेंकने शुरू कर दिये हैं. प्रतिभा और कौशल के अभाव में वे अनर्गल रूप से और मनमाने ढंग से सदा ऐसे तर्कों का सहारा लेते हैं जो क्रांतिकारी के नैतिक चरित्र को धुंधला या गंदा कर सकते हों, जबकि आज के जमाने में शायद क्रांतिकारी का नैतिक चरित्र ही एक उज्ज्वल और निर्मल चीज बाकी रह गयी है.

ये लेखक कीचड़ उछालने के इस कार्य को पूर्ण वस्तुपरकता का रूप देने की कोशिश करते हैं. वे बड़े आकस्मिक और निस्संग भाव से क्रांतिकारी पर कीचड़ उछालते हैं. उसे एक थके-मांदे, मूर्ख और असभ्य प्राणी के रूप में चित्रित करके वे कृत्रिम सहानुभूति-प्रदर्शन के पीछे अपनी फूहड़ दुर्भावनाओं को छिपाने की कोशिश करते हैं, जिस तरह बीमार नर्स रोगियों के प्रति अपनी घृणा को छिपाती है.

इस दुखदायी स्थिति का कारण केवल यही हो सकता है कि ये लेखक अनचेते ही उस जाहिल व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के सम्मोहन में फंस गये हैं जो हर चीज को कलुषित कर देता है, क्योंकि यह सम्मोहन पूरी आत्मा पर आच्छादित हो जाता है. साहित्यकार का हृदय अब सरस्वती की वीणा

■ मूल्यांकन

गोर्की लेखक का नहीं विचार का नाम है

ऐसे लेखक कभी-कभी ही हो पाते हैं जो अपने वक्त और भूगोल की सरहदें लांघकर सांस्कृतिक दुनिया की विराट ताकत बन जाते हैं. जैसे ज्यां पाल सार्त्र बीसवीं शताब्दी के एक अद्वितीय अनुभव हैं तो अपने गजानन माधव मुक्तिबोध एक असंभव प्रतिभा. जैसे प्रेमचंद एक रचनाकार नहीं बीसवीं सदी के भारत की निर्मम हकीकत हैं. ठीक इसी तरह मैक्सिम गोर्की एक लेखक का नहीं, एक विचार का नाम है, ऐसा विचार जो निराशा और निस्सहायता के दुर्दांत क्षणों में हमारे भीतर एक दुर्दम आशावाद को खड़ा करता है.

एक बार सख्त बीमारी की हालत में भी प्रेमचंद गोर्की की शोकसभा के लिए अपना भाषण लिख रहे थे. प्रेमचंद की बुरी हालत देख उनकी पत्नी ने टोका कि वह कौन हिंदुस्तानी थे. प्रेमचंद का जवाब था: "गोर्की इतना बड़ा लेखक था कि उसके बारे में देश या जाति का सवाल ही पैदा नहीं होता."

और यह सही है कि गोर्की आज रूस के ही नहीं पूरी दुनिया के आजादीपसंद लोगों का गौरव हैं. वह आजाद आदमी की ऐसी पुकार हैं जिसे सुनकर जालिम हुक्मरानों और जन विरोधी ताकतों के पांव लड़खड़ाने लगते हैं.

अपने एक आलोचक, जिसने गोर्की पर नफरत के प्रचार का आरोप लगाया था, को जवाब देते हुए गोर्की ने स्पष्ट किया था: 'आप मुझ पर नफरत के प्रचार का इल्जाम लगाते हैं और मुझे सलाह देते हैं कि मैं प्यार का प्रचार करूं. शायद आप सोचते हैं कि मैं मजदूरों से कहूं, पूंजीपतियों को प्यार करो, क्योंकि ये आपकी ताकत चूसते हैं. उन्हें इसलिए प्यार करो क्योंकि वे व्यर्थ ही तुम्हारी धरती के खजानों को बर्बाद करते हैं. और उन लोगों से प्यार करो जो तुम्हारे लोहे के भंडार को बंदूकें बनाने में बर्बाद करते हैं. उन बदमाशों को प्यार करो जिनकी वजह से तुम्हारे बच्चे भुखमरी से सूखते जाते हैं. उन लोगों को प्यार करो जो खुद ऐशो इशरत की जिंदगी बसर करने के लिए तुम्हें लूटते और बर्बाद करते हैं."

कहना गलत नहीं होगा कि समाज और उसमें सक्रिय परस्पर विरोधी शक्तियों को समझने के लिए गोर्की के ऐसे दुविधारहित और शफ्फाक विचारों ने ही साहित्य का वह राजमार्ग तैयार किया जिस पर जनता के सुखों-दुखों, स्वप्नों, संघर्षों और आस्थाओं से जुड़े नये रचनाकार निर्द्वंद्व होकर आगे बढ़ सके और रचना के जरिये मानव मुक्ति के सरोकारों को शक्ल दे सके.

अपनी रचनाओं के जरिये गोर्की ने ही सबसे पहले हमें व्यापक जन समूह के पक्ष में खड़ी उस रचनाशीलता का मॉडल सौंपा जो कला और शिल्प के स्तर पर भी जनविरोधी आग्रहों का विकल्प बन सकी.

कामू, काफ्का, कीर्केगार्द और अन्य पश्चिमी लेखकों से उधार लेकर हिंदी में बरसों तक जो अस्तित्ववादी अंधेरा फैलाया गया और जिसकी कराह आज भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाती है उस पर गोर्की ने 1909 में ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमला बोल दिया था. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसलिए कि तब तक उनकी आवाज लगभग पूरी दुनिया में गौर से सुनी जाने लगी थी. उन्होंने लिखा, "आज का व्यक्तिवादी एक घबराहट भरे अवसाद के चंगुल में फंस गया है...आत्मा में थकान और मन में व्यग्र करने वाली आशंकाएं लिये वह कभी समाजवाद से इश्क फरमाता है तो कभी पूंजीवाद की खुशामद करता है. वह ऐसा व्यक्ति है जो जिंदगी भर पागलपन की सीमा पर मंडराता रहता है. उसके विचारों की अस्थिरता और उसके विचित्र और कभी-कभी जुगुप्सा पैदा करने वाले कामों के मूल में दरअसल संसार और जनसाधारण के प्रति नफरत, सहज किंतु नपुंसक शत्रुता और एक बीमार मन की निराशावादिता होती है. उसका बाह्यबोध विकृत हो जाता है इसलिए वह जिंदगी के काफिले के बहुत पीछे किसी तरह अपने को घसीटते हुए चलता है...हमें प्रकृति की अक्लमंदी का शुक्रगुजार होना चाहिए कि निजी या व्यक्तिगत किस्म का अमरत्व नहीं होता. हम सभी अनिवार्यतः मर जायेंगे ताकि इस पृथ्वी पर हमसे अधिक बलवान, हमसे अधिक सुंदर और हमसे ज्यादा ईमानदार लोग हमारा स्थान ले सकें, ऐसे लोग जो एक नयी और शानदार जिंदगी का निर्माण करेंगे...भविष्य के लोगों का उल्लासपूर्ण अभिनंदन."

भविष्य के प्रति यह आस्था और समूह के प्रति यह विश्वास ही आज के वर्गचेतस रचनाकारों को उस अंधेरे में गिरने से बचाता है जिस अंधेरे में दूसरा ही नरक होता है.

—धीरेंद्र अस्थाना

नहीं रहा, जिसके तार जीवन के स्वरों—उसके हास्य, उसके आंसुओं और चीत्कारों से झंकृत होते हैं. अपने गिर्द होनेवाली घटनाओं के प्रति मनुष्य की संवेदनशीलता घटती जा रही है और उसके हास्य में, जो अब कभी-कभी ही सुनायी देता है, थकान के बीमार स्वर रहते हैं और निर्भयता तथा वीरता के जिस भाव को वह कभी पवित्र समझता था, उसे अब निराशाजनित उच्छृंखलता में परिवर्तित कर लिया है.

साहित्यकार अब शब्दकार बनता जा रहा है. सत्य और चिंतन-निरीक्षण के उत्तुंग शिखरों से गिरकर वह क्षुद्र स्तर की परेशानियों के दलदल में फंस गया है. उसकी निगाहें अब नीरस घटनाओं पर टिक गयी हैं, जिनको वह बाहर से उधार लिये हुए विचारों की मदद से समझने की कोशिश करता है और उन शब्दों में उनकी अभिव्यक्ति देता है, जिनके अर्थ उसके लिए विदेशी हैं. कला का रूप उसके निकट अधिक महत्वशाली बनता जा रहा है, इसलिए उसके शब्दों में अब जैसे शीत बसता जा रहा है और विषयवस्तु नगण्य होती जा रही है, भावना की रहा, बल्कि उसके टूटे कांच का एक छोटा-सा टुकड़ा मात्र रह गया है. पारद-मिश्रित धातु का लेप जो कभी सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करता था, उस टुकड़े से उतर गया है. सड़क की धूल से अंटा पड़ा यह कांच का टुकड़ा संसार में जीवन की शालीनता और महानता को प्रतिबिंबित करने में सर्वथा असमर्थ है. वह अधिक से अधिक सड़क की जिंदगी के असंबद्ध जीवन और बरबाद आत्माओं के छिटपुट टुकड़ों को ही प्रतिबिंबित कर पाता है.

हमारे देश में एक नयी किस्म का लेखक पैदा हुआ है—एक पब्लिक मसखरा, एक विदूषक किस्म का लेखक जो सस्ते मनोरंजन के भूखे जाहिल व्यक्तिवादी लोगों की विकृत रुचियों को गुदगुदाने का काम करता है. ऐसा व्यक्ति 'देश' की सेवा नहीं, बल्कि 'पब्लिक' की सेवा करता है. उसकी सेवा ऐसे आदमी की सेवा नहीं है कि जिसे अपनी साक्षी देने और अपना निर्णय सुनाने के लिए आमंत्रित किया गया है, बल्कि उसकी सेवा इस प्रकार की है जैसे एक मेंढक-भक्षी गरीब आदमी अपने धनी मालिक की खिदमतगारी

पुराने लेखकों की विशेषता यह थी कि उनके विचार व्यापक और सार्वजनीन अर्थवत्ता रखते थे, उनके पास एक संगत और सामंजस्यपूर्ण विश्व-दृष्टि थी और जीवन के प्रति उनमें अपार उल्लास था. हमारा यह असीम संसार उनकी दृष्टि की परिधि में था. आजकल के लेखक का 'व्यक्तित्व' केवल उसके लेखन के ढंग में ही सीमित है, जबकि उसका वास्तविक व्यक्तित्व दिन-प्रतिदिन अमूर्त, धुंधला और सच कहें तो दयनीय होता जा रहा है.

सचाई भी विरल हो गयी है और उसमें उदात्त कुछ भी नहीं रहा. इन पंखों के कट जाने पर विचार निर्जीव होकर दैनंदिन जीवन की क्षुद्रताओं की दलदल में धंसता जा रहा है, विघटित हो रहा है और धुंधला, सुस्त तथा बीमार हो गया है. यहां भी निर्भीकता के स्थान पर हमें निस्तेज हिंसा ही मिलती है. सच्चे आक्रोश का स्थान प्रलापकारी ईर्ष्या ने छीन लिया है. घृणा चारों ओर निगाहें फेंकती हुई भद्दे कंठ से फुसफुसाती है.

पुराने लेखकों की विशेषता यह थी कि उनके विचार व्यापक और सार्वजनीन अर्थवत्ता रखते थे, उनके पास एक संगत और सामंजस्यपूर्ण विश्व-दृष्टि थी और जीवन के प्रति उनमें अपार उल्लास था. हमारा यह असीम संसार उनकी दृष्टि की परिधि में था. आजकल के लेखक का 'व्यक्तित्व' केवल उसके लेखन के ढंग में ही सीमित है, जबकि उसका वास्तविक व्यक्तित्व—उसके भावों और विचारों का योगफल—दिन-प्रतिदिन अमूर्त, धुंधला और सच कहें तो दयनीय होता जा रहा है. लेखक अब विश्व का दर्पण नहीं करता है. वह पब्लिक में अपने आपको ही मुंह बिचकाता है और स्वयं अपना मखौल उड़ाता है. पब्लिक के कहकहे और उसका अनुमोदन निश्चय ही उसे अपने आत्मसम्मान से ज्यादा प्यारा है.

जिस तरह बलूत का विशाल और शक्तिशाली वृक्ष दलदली जमीन में पैदा नहीं हो सकता, क्योंकि वह दुर्बल और बीमार किस्म के बर्च और नन्हे-नन्हे फर के पेड़ों को ही उगा सकती है, उसी तरह ह्रासग्रस्त यह परिवेश ऐसी महान और प्रचंड प्रतिभा को प्रस्फुटित होने से रोक देता है, जो दैनंदिन जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर गरुड़-दृष्टि से देश और संसार की बहुविध घटनाओं को देख सके, ऐसी प्रतिभा जो भविष्य के पथ और उन महान लक्ष्यों को आलोकित कर सके जो हम जैसे लघु मानवों को उड़ने के लिए पंख प्रदान करते हैं.

जाहिल व्यक्तिवाद अमरबेल जैसा पौधा है, जिसमें आत्म-प्रजनन की अपार क्षमता है, यह ऐसी बेल है जो जिस पेड़ से भी लिपटती है, उस पर चारों ओर छाकर उसका दम घोंटने की कोशिश करती है. जरा कल्पना कीजिए कि कितने महान कवियों को इसने बरबाद किया है. यह सारे संसार का एक अभिशाप है. यह व्यक्तित्व को अंदर से ही खा जाता है, जिस तरह गिडार फल को खा जाती है. यह ऐसी जंगली सरकंडों की झाड़ी है जिसकी अनवरत खर-खर सौंदर्य की घंटियों और जीवन के उल्लसित सत्य के सबल स्वरों को नीचे दबा देती है. यह एक बहुत अतल दलदल है जो अपने बदबूदार गर्तों में प्रतिभा और प्रेम, कविता और विचार, कला और विज्ञान को खींच लेती है.

हम देखते हैं कि मानवजाति के भीमकाय शरीर के इस सड़े हुए घाव ने व्यक्तित्व को पूरी तरह नष्ट कर दिया है और मनुष्य को एक विशेष प्रकार के खतरनाक, उच्छृंखल जंतु में परिवर्तित कर दिया है; ऐसा प्राणी बना दिया है जिसके विचारों में कोई आंतरिक संगति नहीं है, जिसके दिमाग और स्नायुओं का संतुलन नष्ट हो चुका है, जिसके कान अपनी अंधवृत्तियों की य़प-य़प और अपने हृदयावेगों की कुत्सित फुसफुसाहटों के अलावा और किसी भी स्वर को सुनने में असमर्थ हैं.

जाहिल व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के ही कारण हम प्राचीन काल के महान व्यक्तित्वशाली व्यक्तियों से चलकर आज उच्छृंखल गुंडे तक पहुंच गये हैं. लेकिन गुंडा तो स्वयं जाहिल व्यक्तिवाद की ही संतान है, उसके ही वीर्य से जन्मा है. इतिहास ने पहले से ही उसके लिए एक पितृघाती की भूमिका नियत कर दी है और वह पितृघाती ही बनकर रहेगा. जिस पिता ने उसको पैदा किया था, उसकी ही वह हत्या करेगा.

क्योंकि यह नाटक हमारे दुश्मन के घर में खेला जा रहा है, इसलिए हम अट्टहास करते हुए खुशी से इसे देख सकते हैं, लेकिन हमें दुख सिर्फ इस बात से होता है कि जाहिल व्यक्तिवाद स्वयं अपने पितृघाती बेटे के विरुद्ध जो लड़ाई कर रहा है, उसमें योग्य और प्रतिभाशाली लोग भी खींच लिये गये हैं. संवेदनशील और प्रतिभावान लोगों को तेजी से विघटित होनेवाले परिवेश से उठनेवाली सड़ांध के जहर से नष्ट होते देखकर दुख होता है.

हमारे निकट विश्व-संस्कृति का इतिहास उदात्त और सुरीले षट्पदी छंदों में लिखा ग्रंथ है. हम जानते हैं कि वह समय आयेगा जब सब स्त्री और पुरुष बीते युगों की उपलब्धियों का अभिनंदन करेंगे और अखिल ब्रह्मांड के भीतर हमारी पृथ्वी को वह गौरवशाली स्थान प्राप्त होगा जहां मृत्यु पर जीवन की विजय का महान दृश्य घटित हुआ है, एक ऐसा गौरवशाली स्थान जहां पर निश्चय ही कला के लिए जीने की, शान-शौकत और वैभव की सृष्टि करने की एक स्वतंत्र कला का अभ्युदय होगा. □

संक्षिप्त रूपांतर : रमेश उपाध्याय

■ गोर्की की कथा रचनाएं : आठ

नोनसिया

यह बात जग जाहिर है कि खेल, काम और प्रेम...सभी चीजों में मजबूत-तरीन दिल उसी औरत का हो सकता है जो जिंदगी के हर इम्तिहान से गुजर चुकी हो...और ऐसा अक्सर तभी होता है जब वह तीस से ऊपर की हो चुकी हो. बावजूद इसके, वे कौन से हालात होते हैं जो एक बेटी को मां के बर अक्स ला खड़ा करते हैं...?

पिछली गरमियों तक नोनसिया हमारे मोहल्ले की जान थी. वह कुंजड़न थी और हमारे मोहल्ले की सबसे से सुंदर औरत. वह इतनी जिंदादिल, हंसमुख और गर्मजोश किस्म की औरत थी कि किसी भी तरह मे पति के साथ शांति से न रह पाती. उसके पति ने बहुत समय तक इस बात को नहीं समझा. वह स्वयं भी चीखता था. गाली-गलौच करता. अपने हाथ हिलाता और लोगों को चाकू दिखाकर डराता था. एक दिन उसने अपना चाकू किसी के पेट में घुसा ही दिया.

लेकिन कानून ऐसे गुंडे को कभी क्षमा नहीं करता. अतः स्टेफानो अपनी सजा की अवधि कारागार में बिताने के बाद अर्जेंटीना चला गया. गर्म स्वभाव लोगों के लिए जलवायु परिवर्तन उपयोगी साबित होता है. अतः वह वहां से फिर वापस न आया. तेईस साल की आयु में नोनसिया लगभग विधवा हो गयी और उसके पास एक पांच वर्षीय बच्ची, खच्चरों की एक जोड़ी, एक तरकारियों का खेत और एक छोटी-सी गाड़ी के सिवा अन्य कुछ न था. एक हंसमुख आदमी को अधिक धन-दौलत की जरूरत नहीं होती, इसलिए यही कुछ उसके लिए पर्याप्त था. वह काम करना जानती थी. और सदा बहुत-से लोग उसकी मदद करने के लिए सहर्ष तैयार रहते थे, और जब वह उनकी मेहनत का मुआवजा पैसों से न कर पाती, तो वह अपनी हंसी से, अपनी गीतों से और उन सभी मूल्यवान चीजों, जो रुपये-पैसे से कहीं अधिक कीमती होती हैं, उनकी मजदूरी चुका देती थी.

उसके मोहल्ले की औरतें उसके तौर-तरीकों को पसंद नहीं करती थीं. स्पष्ट है, मर्द भी उसके रहन-सहन से प्रसन्न नहीं थे, वह भी विवाहित मर्दों से कोई सरोकार नहीं रखती थी, यही नहीं, बल्कि वह प्रायः उनमें और उनकी बीवियों में सुलह-सफाई भी करा देती थी. जो आदमी किसी औरत से प्रेम करना छोड़ देता है, उसने वास्तव में प्रेम किया ही नहीं है.' वह कहा करती थी.

आरतोरो लानो एक मछेरा था. जिसने अपनी जवानी में एक धार्मिक

■ गोर्की की लघु रचनाएं

उपहार

उमसभरी दोपहर थी, कहीं पर अभी-अभी तोप दगी थी—धीमी, दबी-घुटी और ऐसी अजीब-सी आवाज करती हुई मानो कोई सड़ा हुआ, विराटकाय अंडा फट गया हो. तोप के धमाके से कांप उठनेवाली हवा में नगर की तीखी गंधें-जैतून के तेल, लहसुन, शराब और तपी हुई धूल की गंधें-अधिक तीव्रता से अनुभव होने लगी.

तोप के भारी धमाके से दब जानेवाला गर्म दक्षिणी नगर का कोलाहल, जो क्षण भर को सड़क के तपे हुए पत्थरों से चिपक गया था, फिर से सड़कों के ऊपर उठा और एक चौड़ी, धुंधली नदी के रूप में सागर की ओर बह चला.

धूल से लथपथ और पसीने से तर लोग खुशीभरी और ऊंची आवाजों में बातचीत करते हुए दिन का भोजन करने को भागे जा रहे थे. अनेक सागर-तट की ओर तेजी से कदम बढ़ा रहे थे और झटपट अपने धूसर कपड़े उतारकर पानी में कूद जाते थे. पानी में जाते ही उनके सांवले शरीर हंसी की हद तक ऐसे छोटे-छोटे हो जाते थे मानो शराब के बड़े जाम में मिट्टी के काले कण हों.

सड़क बनानेवाले चार मजदूर एक बड़े मकान की छाया में पटरी पर बैठे हुए दोपहर का भोजन करने की तैयारी कर रहे थे. वे पत्थरों की तरह ही भूरे, रूखे और सख्त जान थे. पके बालोंवाला बूढ़ा, जो धूल में ऐसे लथपथ था मानो उस पर राख छिड़क दी गयी हो, अपनी पैनी तीखी आंख को सिकोड़े हुए लंबी डबलरोटी को बहुत ध्यान से काट रहा था ताकि सभी टुकड़े बराबर हों. वह बुनी हुई फुंदनेवाली लाल टोपी सिर पर ओढ़े था. फुंदना बार-बार उसके चेहरे पर आ जाता था; बूढ़ा देवदूत जैसे अपने बड़े मस्तक को बार-बार आगे-पीछे झटकता था, तोते की चोंच जैसी उसकी नाक के नथुने फूल जाते और वह उन्हें सुड़सुड़ाता.

सांवले शरीर और बिल्कुल गुबरैले जैसे काले बालोंवाला एक तरुण उसकी बगल में गर्म पत्थरों पर चित लेटा था. डबलरोटी के कण उसके चेहरे पर गिर रहे थे. वह धीरे-धीरे आंखें मिचमिचाता-सिकोड़ता था और धीमे-धीमे ऐसे गाता था मानो नींद में गा रहा हो. दो अन्य मजदूर घर की सफेद दीवारों के साथ पीठ टिकाये हुए ऊंघ रहे थे.
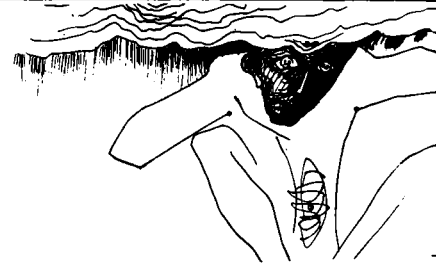
एक हाथ में शराब की बोतल और दूसरे में छोटा-सा बंडल लिये हुए एक छोकरा इनकी तरफ आ रहा था. वह सिर को पीछे की ओर करके पक्षी की भांति गूंजती आवाज में कुछ चिल्ला रहा था और यह नहीं देख रहा था कि पुआल में लिपटी बोतल में से रक्तमणि की भांति चमकती हुई शराब की गाढ़ी-गाढ़ी और भारी-भारी बूंदें नीचे गिर रही थीं.

बूढ़े ने यह देखा, डबलरोटी और छुरी को तरुण की छाती पर रखा और हाथ से इशारा करते हुए पुकारकर लड़के से कहा, "जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रे अंधे! देख तो शराब गिरी जा रही है!"

छोकरे ने बोतल को चेहरे तक ऊपर उठाया, घबराकर मुंह बा दिया और मजदूरों की तरफ तेजी से भाग चला. वे सभी फौरन सचेष्ट हो गये और बोतल को छूते हुए उत्तेजना से चिल्लाने लगे. इसी क्षण छोकरा तीर की तरह कहीं अहाते में भाग गया और ऐसी ही तेजी से एक बड़ी-सी, पीली रकाबी हाथों में लिये हुए वापस आ गया.

रकाबी को जमीन पर रख दिया गया और बूढ़ा बहुत ध्यान से उसमें लाल, सजीव पदार्थ को उंडेलने लगा. आठ आंखें बड़े प्यार से शराब को धूप में चमकते देख रही थीं और उनके सूखे होंठ ललचाये हुए हिल रहे थे.

हल्के आसमानी रंग का फ्राक पहने एक औरत चली जा रही थी. उसके काले बालों पर सुनहरे रंग का लेसवाला दुपट्टा था और उसके कत्थई रंग के जूतों की ऊंची एड़ियां जोर से बज रही थीं. वह घुंघराले बालोंवाली एक बालिका की उंगली पकड़े हुए उसे अपने साथ लिये जा रह थी. बालिका के दायें हाथ में लवंग के दो लाल फूल थे जिन्हें वह हिलाती जाती थी और निम्न पंक्ति गाते हुए डोलती थी—"ओ मां, ओ मां, ओ मेरी मां..."

बूढ़े मजदूर की पीठ के पीछे रुककर वह खामोश हो गयी, पंजों के बल उचकी और बूढ़े के कंधे पर से झुककर बड़ी गंभीरता से यह देखने लगी कि पीली रकाबी में शराब कैसे छलक रही है और छलकते हुए वैसी ही आवाज पैदा कर रही है मानो उसके गीत को जारी रख रही हो.

पाठशाला में शिक्षा पायी थी और उसे पादरी बनने के लिए तैयार किया जा रहा था, लेकिन बहुत समय से उसने इस धर्म-मार्ग को छोड़ दिया था. वह समुद्र एवं मदिरालय तथा अन्य प्रकार के सुखदायक मनोरंजनों में डूब चुका था. यह लानो, जो बेशरमी के गीत बनाने में माहिर था, एक बार नोनसिया से कहने लगा, "तुम्हें शायद पता नहीं है कि प्रेम धर्म जैसी जटिल विद्या है."

"मैं विद्या आदि के बारे तो कुछ जानती नहीं!" नोनसिया ने उत्तर दिया, "लेकिन तुम्हारे सारे गीत जानती हूं."

और इसी प्रकार दिन बिताती रही. बहुत-से लोगों के लिए हर्ष का कारण और सब के लिए सुखदायक, क्योंकि समय बीतने पर उसकी सहेलियों ने भी उसे क्षमा कर दिया. उन्होंने समझ लिया कि आदमी अपने चरित्र को बदल नहीं सकता. कोई दस वर्ष तक नोनसिया तारे की तरह चमकती रही. उसे एकमत से मुहल्ले की सुंदरतम स्त्री और सर्वोत्तम नर्तकी मान लिया गया यदि वह युवती होती तो उसे निश्चय ही सौंदर्य-सम्राज्ञी भी चुन लिया गया होता क्योंकि यह एक सत्य था कि सबकी नजरों में सौंदर्य-सम्राज्ञी वही थी.

यहां तक कि विदेशी लोगों का ध्यान भी उसकी ओर दिलाया जाता था और निश्चय ही वह उस से एकांत में प्यार-मोहब्बत की बहुत बड़ी कीमत भी चुकाने पर तैयार हो जाते थे. नोनसिया सदा इस बात पर और विदेशी लोगों की मूर्खतापूर्ण हरकतों पर दिल खोल कर हंस देती.

सुनहरे सिक्कों की भाषा में सम्मानित लोग उसे यकीन दिलाते थे, लेकिन वह जवाब देती, "अजनबियों के हाथ बेचने के लिए मेरे पास प्याज, लहसुन, और टमाटर के अलावा और कुछ नहीं है...."

कई बार उसके सच्चे शुभचिंतक उसे समझाने का प्रयत्न भी करते थे, "बस एकाध महीने की बात है. तुम बहुत दौलतमंद बन सकती हो. अच्छी तरह सोच लो...और यह याद रखो कि तुम्हारी एक लड़की भी है!"

"नहीं!" वह मजबूती से जवाब देती थी, "मुझे अपने शरीर से इतना प्रेम है कि मैं उसका अपमान नहीं कर सकती. मैं जानती हूं कि एक बार कोई काम इच्छा के विरुद्ध कर लिया जाये, तो सदा के लिए स्वाभिमान से हाथ
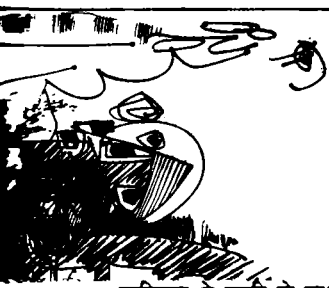
बालिका ने नारी के हाथ से अपना हाथ मुक्त किया, फूलों की पंखुड़ियां तोड़ीं और गौरेया के पंख जैसा सांवला तथा छोटा-सा हाथ ऊपर उठाकर शराब के प्याले में लाल फूल डाल दिये.

चारों आदमी चौंके, उन्होंने धूल सने सिर पुस्ते से ऊपर उठाये. बालिका तालियां बजा रही थी और अपने छोटे-छोटे पैरों को पटकते हुए हंस रही थी. परेशान मां उसका हाथ पकड़ने का प्रयास कर रही थी, ऊंची आवाज में झिड़क रही थी. छोकरा ठहाके लगाता हुआ दोहरा होता जा रहा था और फूलों की पंखुड़ियां छोटी-छोटी चुलबुली नावों की भांति प्याले में तैर रही थीं.

बूढ़े ने न जाने कहां से एक गिलास निकाला, पंखुड़ियों समेत ही शराब उसमें डाली, मुश्किल से उठा और गिलास को होंठों से लगाकर तसल्ली देते हुए संजीदगी से कहा, "कोई बात नहीं, श्रीमती जी! बच्चे द्वारा दिया गया उपहार भगवान का उपहार होता है...सुंदरी, आपकी सेहत का, और बिटिया तुम्हारी भी सेहत का जाम पीता हूं! कामना करता हूं कि तुम मां की तरह सुंदर और दुगनी सौभाग्यशालिनी बनो..."

इतना कहकर उसने अपनी सफेद मूंछें गिलास में घुसेड़ीं, आंखें सिकोड़ीं, होंठों से चपचप करते और टेढ़ी नाक को हिलाते-डुलाते हुए गहरे लाल रंग की शराब के छोटे-छोटे घूंट भरने लगा.

मां मुस्करायी, उसने इन लोगों को सिर झुकाया तथा बच्ची का हाथ थामकर आगे चल दी. बच्ची पत्थरों पर पांव रगड़ती, इधर-उधर झूमती-झामती और आंखें सिकोड़कर ऊंचे-ऊंचे यह गाती जा रही थी, "ओ मां, ओ मेरी मां..."

मजदूर धीरे-धीरे सिर घुमाकर कभी तो शराब और कभी बच्ची की ओर देखते तथा दक्षिणी लोगों की वेगवती भाषा में एक-दूसरे से मुस्कराकर कुछ कहते.

और गहरे लाल रंग के शराबवाले प्याले में फूलों की लाल पंखुड़ियां तैर रही थीं.

सागर गा रहा था, नगर गुनगुना रहा था और कथाओं का ताना-बाना बुनता हुआ सूरज खूब चमक रहा था. □

धोना पड़ता है!"

"लेकिन तुम दूसरों को तो इंकार नहीं करतीं?"

"नहीं. अपनी किस्म के लोगों को, और जब चाहती हूं तब इंकार नहीं करती."

"अपनी किस्म के लोगों से तुम्हारा क्या मतलब है?"

"जिन लोगों के बीच में पली-बढ़ी हूं और जो मुझे अच्छी तरह समझते हैं..." वह तड़ से जवाब देती थी. इसके बावजूद एक विदेशी के साथ उसका प्रेम-प्रसंग अवश्य चला. वह इंग्लैंड का रहने वाला था और व्यवसाय की दृष्टि से वन-संरक्षक था. वह एक अजीब-सा इंसान था. बहुत हंसमुख स्वभाव, हालांकि वह हमारी भाषा बोल लेता था. वह जवान था, लेकिन उसके बाल सफेद हो चुके थे, और उसके चेहरे पर जख्म का एक निशान भी था, और चेहरा एक हत्यारे जैसा लगता था, लेकिन आंखों में शांति का प्रतिबिंब झलकता था. कुछ लोगों का विचार था, कि वह पुस्तकें लिखता था और कइयों का कहना था कि वह एक जुआरी था. उसने यहां तक किया कि वह उसके साथ सिसली चली गयी, और जब वापस आयी, तो बहुत दुबली और थकी-थकी लगती थी. वह अमीर नहीं था, नोनसिया अपने साथ कोई रुपया-पैसा लेकर नहीं आयी, और न ही तोहफे. यहां आ कर वह फिर हम लोगों के साथ रहने-सहने लगी. सदा की तरह मनचली और हंसमुख.

लेकिन एक दिन, कोई त्यौहार का दिन था. जब लोग गिरजे से बाहर आ रहे थे, तो किसी ने विस्मय से कहा, "अरे देखो जरा! नीना तो हू-ब-हू अपनी मां की तसवीर बन गयी है."

यह सच था. मई महीने के एक उज्ज्वल दिन की तरह साफ. नोनसिया की नन्हीं लड़की अधखिली कली से खिला हुआ फूल बन गयी थी और अपनी मां की तरह चमकता हुआ तारा लगने लगी थी: वह अभी केवल चौदह वर्ष ही की थी, लेकिन उसका कद सरो की तरह लंबा था, और वह अपने सुंदर चमकीले, घने बालों और अभिमानी आंखों के कारण अपनी उम्र से अधिक लगती थी और यौवन की सीमाओं में प्रवेश करने के लिए बिलकुल पकी-पकाई तैयार.

नोनसिया स्वयं उसे देखकर विस्मय-विमूढ़ रह गयी.

"ओह पवित्र मरियम! नीना, क्या तुम मुझ से अधिक सुंदर बनने की इच्छुक हो?"

नीना मुस्करायी, "नहीं तो, तुम्हारी जितनी सुंदर...मेरे लिए इतना ही बहुत है."

जीवन में पहली बार उस हंसमुख स्त्री के चेहरे पर चिंता की एक परछाई नजर आयी और उस शाम उसने अपनी सहेलियों से कहा, "यह है जीवन! अभी आदमी अपने प्याले को पूरा पी भी नहीं पाता कि दूसरे उसे लेने के लिए हाथ बढ़ा देते हैं."

सच तो यह है कि शुरू में तो मां और बेटी के बीच स्पर्धा के कोई चिन्ह दिखाई नहीं देते थे. बेटी अपना नपा-तुला और लज्जापूर्ण अंदाज रखती थी. वह अपनी लंबी-लंबी पलकों के पीछे से दुनिया को देखती थी और मर्दों के सामने बहुत कम मुंह खोलती थी. नोनसिया पहले से अधिक आकर्षक अंदाज में गूंजने लगी थी और उसकी आंखें और अधिक लालसा के साथ दिलकश व करुणापूर्ण हो गयी थीं.

उसके सामने लोग उसी प्रकार लाल हो जाते थे, जैसे सूर्यास्त के समय बादल हो जाते हैं. बात वास्तव में यह है कि बहुत लोगों के लिए नोनसिया प्रेम की पहली किरण थी, और जब वह स्तून की तरह सीधी और नाजुक-सी अपनी छोटी-सी गाड़ी के साथ चलती थी. आवाज मकानों की छतों तक गूंजती थी तो बहुत से लोग मौन उत्सुकतापूर्ण नजरों के साथ उसे देखा करते थे. बाजार में भी जब वह अपनी शोख-रंग तरकारियों के ढेर के पास खड़ी हुई गिरजे की सफेद दीवार की पृष्ठभूमि में किसी महान चित्रकार की मास्टरपीस लगती थी. उस समय भी वह बड़ी सुंदर और आकर्षक दिखाई देती थी. उसकी विशिष्ट जगह 'सानम्या कोमो' गिरजा के बराबर सीढ़ियों के बायीं ओर दो-तीन कदम की दूरी पर थी. वह वहां खड़ी होती और अपने मजाक, हंसी और गीतों को, जो उसे हजारों की संख्या में याद थे, भीड़ के सिरों पर चमकती-दमकती चिंगारियों की तरह बरसाती हुई बड़ी ही आकर्षक लगती थी.

वह बड़ी सुघड़ स्त्री थी और लिबास को इस प्रकार पहनती थी कि उसकी सुंदरता जादू बन जाती. जिस प्रकार एक बिलोरी जाम में अच्छी शराब की खूबी दुगुनी हो जाती है. शीशा जितना साफ होता है, उतनी ही शराब अच्छी नजर आती है, क्योंकि रंग सदा मजे और खुशबू को बढ़ा देता है.

नोनसिया सूर्य की किरणों में नहायी हुई दिखाई देती थी, और अपने इर्द-गिर्द के लोगों के दिलों को उल्लासपूर्ण विचारों और अपनी प्रेम भरी नजरों से लाभान्वित करने का प्रयत्न करती रहती थी. जब एक सुंदर स्त्री निकट मौजूद हो, तो पुरुष पृष्ठभूमि में नहीं रहना पसंद नहीं करता. हर मर्द अधिक से अधिक स्वयं को प्रदर्शित करने का प्रयत्न करता है. नोनसिया इतनी खूबियों और गुणों का संग्रह थी कि उसने लोगों की बहुत-सी शक्तियों को जागृत किया था. उनमें जान डाल दी थी, क्योंकि खूब से खूबतर की इच्छा पैदा होना एक अनिवार्य बात है. और अब बेटी प्रायः मां की बगल में खड़ी हुई नजर आने लगी थी. एक म्यान में रखी हुई कटार. मर्द दोनों को

देखते और अपने तौर पर उन दोनों की सुंदरता और यौवन की तुलना करने लगते. समय बीतता जा रहा थ. अपने कदमों को तेजतर कर रहा था. नोनसिया के माथे पर अब प्राय: बल पड़ने लगे, जिसके कारण उसकी घनी भौंहे एक-दूसरे से मिल जातीं और कई बार वह अपने होंठ काटकर अपनी बेटी को इस नजर से देखती, जिस नजर से एक जुआरी यह मालूम करने के प्रयत्न में दूसरे जुआरी को देखता है कि उसके पास कौन-से पत्ते हैं.

एक वर्ष बीता. फिर एक वर्ष बीत गया और बेटी मां के करीब भी आती गयी और दूर भी हटती गयी. अब नवयुवकों के लिए यह निश्चय करना जटिल समस्या बन गयी थी, कि अपने प्रेम भरी नजरों का केंद्र किसे बनायें—मां या बेटी को!

और नोनसिया की सहेलियां, जो सब से अधिक घातक जख्म लगाना जानती थीं, उसे चिढ़ाने और छेड़ने लगीं, "क्यों नोनसिया, क्या बेटी के सामने तुम्हारी सुंदरता मंद पड़ जायेगी?"

नोनसिया मुस्कराने के प्रयत्न में उत्तर देती, "बड़े-बड़े सितारे उस समय भी नजर आते हैं, जब चांद निकला हुआ होता है."

मां की हैसियत से वह अपनी बेटी की सुंदरता पर गर्व करती थी, लेकिन नारी के रूप में वह नीना की जवानी पर रश्क किये बिना न रह सकती थी, क्योंकि नीना उसके और सूर्य के बीच आ गयी थी और नानसिया छाया में रहना पसंद नहीं करती थी.

सुनने में आ रहा था कि नीना ने कई बार अपनी मां से कहा था, "यदि तुम अधिक सचेत स्वभाव की होतीं, तो हम बेहतर जीवन बिता सकती थीं...."

और एक दिन वह भी आया, जब बेटी ने मां से कहा था, "मां, तुम मुझे जरूरत से ज्यादा पीछे रखती हो. मैं अब बच्चा नहीं रही हूं. मेरे सीने में भी जिंदा रहने की इच्छा है. तुमने अपने समय में खूब रंगरलियां मना ली हैं अब क्या जीवन में आनंदित होने के मेरे दिन नहीं हैं?"

"और क्या बात है?" मां ने पूछा, लेकिन उसने अपराधपूर्ण अंदाज से अपनी नज़रें झुका लीं, क्योंकि वह समझती थी कि क्या बात है. उन दिनों एक व्यक्ति अनरेको बोरबो आस्ट्रेलिया से वापस आया. वह उस विस्मयकारी देश में लकड़हारे का काम करता था, जहां हर आदमी के लिए दौलत बरसती थी. वह कुछ समय के लिए अपने देश के सूर्य की गर्मी पाने के लिए आया था और उसका इरादा था कि फिर उसी देश को लौट जाये, जहां का जीवन अपने देश के जीवन से अधिक स्वतंत्र था. वह एक छत्तीस वर्ष का हसमुख किस्म का आदमी था. उसके स्वभाव में जिंदादिली और चुलबुलापन था और घने जंगलों के जीवन और कारनामों के बारे में मजेदार और जादू भरे किस्से सुनाया करता था और हर व्यक्ति का खयाल था कि उसकी कहानियां मनघड़ंत होती हैं, लेकिन मां और बेटी उसकी सारी कहानियों को सच समझती थीं.

"मुझे साफ नजर आता है कि अनरेको मुझे पसंद करता है." नीना ने कहा.

"लेकिन तुम उससे नाज-नखरे से पेश आती हो, और इस कारण उसमें उच्छृंखलता आ जाती है, और यह मेरे हक में बुरा है."

"मैं समझती हूं." नोनसिया ने कहा.

और उसने उस व्यक्ति को छोड़ दिया, जो प्रत्येक व्यक्ति के विचारानुसार उसे सब से अधिक प्रिय था. लेकिन यह कहावत प्रसिद्ध है, कि आसानी से प्राप्त की हुई विजय आदमी का दिमाग खराब कर देती है और विशेष रूप से तब जबकि विजेता बहुत किशोराय का हो.

नीना अपनी मां से इस प्रकार संबोधित होने लगी, जिसका कभी नोनसिया को सपने तक में खयाल न था. सानग्या कामो के त्यौहार का दिन जबकि प्रत्येक व्यक्ति खुशियां मना रहा था. नोनसिया ने बहुत ही खूबसूरती से तारानेतला नृत्य खत्म किया ही था कि उसकी बेटी ने जोर से हर एक को सुनाने की खातिर कहा, "मां, तुम क्या जरूरत से ज्यादा नहीं नाच रही हो? तुम्हारी उम्र की औरतों के लिए यों नृत्य करना कोई अच्छी बात नहीं. यह दिल अब उसके योग्य नहीं रहा."

वह सब लोग, जिन्होंने नरम स्वर में कहे हुए यह गुस्ताखी भरे शब्द सुने थे, क्षण भर के लिए जड़वत हो गये और नोनसिया अपने कोमल कूल्हों पर हाथ रख कर गुस्से से चिल्लायी, "मेरा दिल....? तुम्हें मेरे दिल की चिंता है? अच्छा बच्ची, तुम्हरा धन्यवाद. लेकिन हम देखेंगे कि किसका दिल अधिक मजबूत है." और क्षण भर कुछ सोचने के बाद उसने प्रस्ताव पेश किया, "मैं यहां से लेकर फव्वारे तक तीन बार तुम्हारे साथ बिना बीच में कहीं रुके दौड़ लगाऊंगी."

बहुत से लोगों का खयाल था, कि पूरा किस्सा सिरे से ही बेतुका है. और उनमें से कई तो इस बात को बहुत लज्जाजनक समझ रहे थे, लेकिन अधिकतर लोगों ने नोनसिया की खातिर बनावटी संजीदगी के साथ उसके प्रस्ताव का अनुमोदन किया और आग्रह किया कि नीना अपनी मां के चैलेंज को स्वीकार करे. जज चुन लिये गये और दौड़ की सीमा तय कर दी गयी. इस प्रकार दौड़ के सभी नियमों पर कार्य किया गया. बहुत से मर्द और औरतें चाहते थे कि मां जीत जाये और वह पवित्र मरियम से प्रार्थना करने लगे कि वह उसे शक्ति प्रदान करे. उसे सफलता दे.

अब मां और बेटी दोनों साथ-साथ खड़ी थीं, और एक दूसरे की ओर नहीं देख रही थीं. घंटी बजी और वे सड़क पर दो बड़े-बड़े सफेद पंछियों की तरह चौक की ओर दौड़ने लगीं. मां के सिर पर एक लाल रूमाल बंधा और और बेटी के सिर पर हलके-नीले रंग का रूमाल था.

दौड़ के पहले ही मिनट से यह बात स्पष्ट हो गयी थी. मां बेटी की अपेक्षा अधिक मज़बूत भी है और अधिक तेजरफ्तार भी.

नोनसिया इतनी आसानी और खूबसूरती से दौड़ रही थी, जैसे स्वयं धरती उसे अपने आलिंगन में लिये जा रही हो. खिड़कियों में बैठे हुए लोग उसके कदमों पर फूल न्यौछावर कर के चीख-चीख कर उसकी हिम्मत बढ़ा रहे थे. दूसरी दौड़ में वह अपनी बेटी से चार मीटर आगे हो गयी और नीना जो अपनी पराजय के कारण परेशान और निराश हो गयी थी, हांफती हुई गिरजा की सीढ़ियों पर गिर पड़ी, और तीसरी बार उसमें दौड़ने की हिम्मत न रही. नोनसिया एक बिजली की तरह ताजादम उसके ऊपर झुकी और दूसरे के साथ मिलकर हंसने लगी.

"बच्ची." उसने लड़की के परेशान बालों को आपने मजबूत हाथ से थपकते हुए कहा, "तुम्हें जानना चाहिए कि खेल, काम और प्रेम-सब चीजों में मजबूत-तरीन दिल..उस औरत का दिल है, जो जिंदगी की हर परीक्षा से गुजर चुकी हो...और वह तीस से खासी ऊपर उम्र होने के बाद ही प्राप्त होता है। इसलिए कुढ़ो मत बच्ची..."

और दौड़ के बाद बिना आराम किये नोनसिया ने फिर नृत्य की धुन छेड़ने को कहा, "मेरे साथ कौन नाचता है?"

अनरेको आगे बढ़ा और उसने अपनी टोपी उतार कर उस विस्मयकारी स्त्री की सेवा में बहुत सम्मान से सिर झुकाकर अभिवादन किया.

सब वाद्ययंत्रों ने उसे अग्नेय नृत्य की तड़पती-फड़कती धुन छेड़ दी, जो पुरानी और पकी शराब की तरह उन्मादक थी. नोनसिया फिरकी की तरह घूमने, थिरकने और सांप की तरह बल खाने लगी. वह उस नृत्य को, जो उसके तीव्र भावनाओं का द्योतक था, अच्छी तरह समझती थी और उसके अपराजेय और गजब के सुंदर शरीर की लचकीली हरकतों का नजारा स्वर्ग से कम न था. वह बहुत देर तक नृत्य करती रही. बहुत लोगों के साथ नाची. साथ थक-थक गये, लेकिन वह थी कि संतुष्ट होने में न आती थी. आधी रात बीत चुकने के बाद उसने चिल्ला कर कहा, "ओ अनरेको, आखिरी बार और नृत्य हो जाये."

अब उसने धीरे-धीरे उसके साथ नाचना शुरू किया. उसकी आंखें फैल गयीं और उनमें प्रेम का प्रकाश झलकने लगा. फिर एकबारगी उसने एक हलकी-सी चीख मारी. अपनी बांहें ऊपर उठायीं और इस प्रकार जमीन पर जा पड़ी, मानों उसको किसी ने मार गिराया हो...

डाक्टर ने कहा कि उसकी मौत हृदय-गति बंद हो जाने के कारण हुई है...शायद.... □

■ प्रस्तुति : सुरजीत

मानव आत्मा का योद्धा शिल्पी

□ रमाकांत
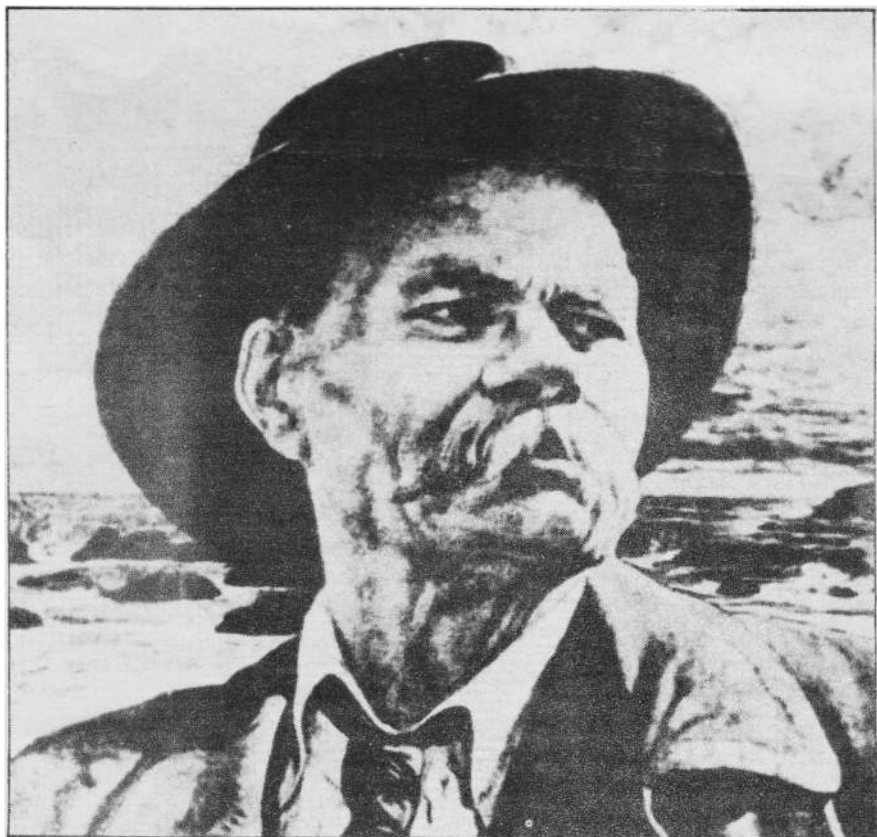
मनुष्य से साहित्य के रिश्ते को, और जीवन को बेहतर बनाने के संघर्ष में साहित्य की नयी भूमिका को निर्धारित करने की दिशा में गोर्की का लेखक अपने आप में एक संघर्षपूर्ण इतिहास है. सोवियत साहित्य के प्रमुख अध्येता रमाकांत की नजर में प्रस्तुत है गोर्की के लेखन का मूल्यांकन—

गोर्की का नाम एक ऐसे लेखक की छवि हमारी आंखों के सामने साकार कर देता है जो सिर्फ साहित्यकार या ऊंचे मंच से उपदेश देने वाला मसीहा नहीं था, पर उसने मनुष्य की शक्ति को गहन आस्था और दृढ़ संकल्प के साथ गरीबी, जहालत और गंदगी से निकाल कर एक ऐसे इंसान की रचना की थी जो सारी मनुष्यता का भाग्य बदल देने में सक्षम था.

यह नये युग का नायक था जिसने अपने समय के साहित्य में मानों विद्युत का संचार कर दिया था.

गोर्की ने 1925 में एक पुस्तक की भूमिका में लिखा : "मैं जिस संसार में रहता हूं वह लघु हैमलेटों, ओथलो, रोमियो, करामाजोव, डेविड कापरफील्ड, मदाम बावेरी, अन्ना कारेनिना जैसे लोगों की दुनिया है....इन्हीं नाचीज लोगों, हमारे जैसे मामूली लोगों से ही रचनाकारों ने महान चरित्रों की रचना कर उन्हें अमर बना दिया."

अमर पात्रों के इस संसार में एक और नाम शामिल कर गोर्की ने उसमें ऐसा कुछ जोड़ दिया जो पहले साहित्य में नहीं था.

वह 'मां' का नायक पावेल व्लासोव था...वह एक मामूली इंसान होते हुए भी मामूली नहीं था और न ही अपने किसी लघु संस्करण का, लेखक की कल्पना द्वारा गढ़ा गया वृहद प्रतिरूप था. वह एक जीता-जागता इंसान था जिसे गोर्की ने साहित्य में प्रतिष्ठित किया.

पावेल और उसकी मां निलोव्ना के बारे में स्वयं गोर्की का कहना है : "पावेल और निलोव्ना कोई दुर्लभ पात्र नहीं हैं निलोवना प्योत्र जालोमोव की मां का प्रतिरूप है. वह गुप्त संगठन में काम करती थी. तीर्थयात्री के वेश में क्रांतिकारी साहित्य ले जाती थी. पर वह अपने ढंग की अकेली नारी नहीं थीं. और **प्योत्र जालोमोव (जिस पर पावेल का चरित्र आधारित है) जैसे क्रांतिधर्मी नौजवानों ने ही तो बोल्शेविक पार्टी की नींव डाली थी.**" गोर्की के ये पात्र तलछट के स्तर पर जीने वाले मजदूर थे, परंतु वे एक बहुत बड़े रूपांतर से गुजरे थे.

पावेल सदियों से दुख झेलते, पशुवत जीवन बिताने वाले एक ऐसे मजदूर का बेटा था जो लगभग पचास की आयु में मर गया था और मां सिर्फ बयालीस की उम्र में बूढ़ी हो गयी थी. उसे विरासत में मिली थी पिता जैसी ही अंधेरी जिंदगी—मजदूरी और उसकी आदतें—हड्डीतोड़ श्रम के बाद शराब की लत और पिता का वही पाइप्र जिसमें फैक्टरी से आकर वह तंबाकू पीता था. अतीत को याद करती उसकी मां केवल अपने दुख और अपमान के बारे में सोच पाती है. उसकी सगाई तक उसके लिए किसी सुखद क्षण की याद नहीं है. उसने (पावेल के पिता ने) उसे एक अंधेरी ड्योढ़ी में दबोच

लिया था और उसके चेहरे पर शराब में डूबी अपनी गर्म सांसों के भभके छोड़ते हुए, भारी तनकती आवाज में ब्याह की बाबत पूछा था. अपमान से तिलमिलाती निलोवना अपने को उससे छुड़ाने का प्रयत्न करने लगी.... "सीधी खड़ी रहो", उसने भेड़िये जैसे दांत निकाल कर कहा था, "अगले इतवार को मैं तुम्हारे यहां किसी को सगाई के लिए भेजूंगा." और उसने भेजा भी...

वह जीवन भर अपने पति की कामुकता और लात घूंसे झेलती रही और उसकी मृत्यु के बाद उसे डर था कि उसका बेटा भी पिता के पद-चिह्नों पर चलेगा. यही तो सदियों से दबे कुचले लोगों के जीवन की नियति रही है. पावेल इसी रास्ते पर चलता भी है, लेकिन मां के आंसुओं और खुद अपनी जिंदगी के प्रति असंतोष के कारण अपने बारे में किसी और तरह सोचने लगता है. क्रांतिकारी साहित्य और क्रांतिकारियों के संपर्क में आकर वह अपनी जिंदगी को समझना और उसे एक नयी नजर से देखना सीखता है और अपने त्रासद अतीत को अलविदा कह क्रांतिकारी रास्ते पर चल पड़ता है. उसकी मां उसकी सहयोगिनी बनती है. जब निलोवना अपनी दुखभरी सगाई की बात सोच रही है तो घर में उसका बेटा पावेल अपने साथियों के साथ इस बात पर बहस कर रहा है कि "लोगों का जीवन कैसा होना चाहिए, न कि वह कैसा था." **फिलिस्टाइंस** (कूपमंडूक) शीर्षक कहानी का इंजन ड्राइवर नील और अनेक दूसरी कहानियों के पात्र भी पावेल की ही तरह भावी क्रांति की योजनाएं बनाते हैं. यह प्रतीक है उस रूपांतरण का जिससे उस समय रूस का समस्त युवा मजदूर वर्ग गुजर रहा था. गोर्की ने इस रूपांतरण को पहचाना और उसे साहित्य में प्रतिष्ठित किया. यह साहित्य को गोर्की की सबसे बड़ी देन है.

क्रांति और परिवर्तन की कामना पुश्किन और गोगोल से लेकर चेखव तक किसी न किसी रूप में 19वीं सदी के संपूर्ण रूसी कथा साहित्य में मौजूद रही है. साहित्य की यह अंतर्धारा रूस के सामाजिक विकास के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी. इस पर यूरोपीय नवजागरण के बाद पनपी मानवतावादी परंपरा का प्रभाव पड़ा था, लेकिन औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राज्यक्रांति के बाद बनने वाले उस बुर्जुआ समाज से इसका कोई खास मतलब न था जिसकी प्रारंभिक उदारतावादी मान्यताएं 19वीं सदी के प्रकृतिवाद और डिकेंस जैसे लेखकों के सुधारवाद को लांघकर साम्राज्यवाद के बढ़ाव के साथ-साथ व्यक्तिवाद में विकसित हो गयीं. 19वीं सदी में जब पश्चिम का मध्यवर्ग और कुछ अंशों में श्रमिक वर्ग भी साम्राज्यवादी दोहन में अपना हक मांग रहा था, रूस में मध्यवर्ग से निकला बुद्धिजीवी जारशाही से मुक्ति और भूदास प्रथा के उन्मूलन की लड़ाई लड़ रहा था. उसने जार के साम्राज्य विस्तार को भी माफ नहीं किया था. पुश्किन जार विरोधी दिसंबर विद्रोह में भाग लेकर निर्वासित हुए थे और दास्तोव्स्की ने समाजवादी गुप्त संगठन की गतिविधियों में भाग लेने के कारण साइबेरिया में निर्वासन झेला था.

गोर्की और भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य में गोर्की की दिलचस्पी 1895 में उस समय पैदा हुई जब उन्होंने 'सुत्र निपात' शीर्षक पुस्तक पढ़ी. उन्होंने यह पुस्तक अपने एक मित्र को उपहार रूप में दी थी. यह पुस्तक बौद्ध धर्म गीतों तथा शिक्षाओं का रूसी अनुवाद थी. सन् 1900-1902 की अवधि में गोर्की दो अन्य भारतीय पुस्तकों से परिचित हुए. यह थी रूसी में अनुदित 'बौद्ध सूत्र' और 'बौद्ध प्रश्नोत्तरी'. दिलचस्पी की बात यह है कि उनसे उक्त पुस्तकों में से दूसरी पुस्तक की सिफारिश करने वाले और कोई नहीं स्वयं लेव तालस्तोय थे. यह तथ्य भारतीय साहित्य में 19वीं और 20वीं सदी के दो महान रूसी लेखकों की दिलचस्पी का एक उदाहरण है. भारतीय साहित्य के प्रति गोर्की की प्रतिक्रिया सहानुभूति की थी और उस पर उन्होंने मौलिक और कभी-कभी, महत्वपूर्ण दृष्टिकोण पेश किया है. उदाहरण के लिए, बहुत समय पहले, 1896 में, गोर्की ने लेखक ए. कारेलिन के नाम अपने पत्र में कहा था, "आदर्श की खोज सबसे पहले भारत में हुई और यह खोज सैद्धांतिक धरातल पर सबसे अधिक वहीं उन्नत हुई."

गोर्की ने 20वीं सदी के आरंभ में ही बौद्ध मत का गंभीर अध्ययन किया था. वे महाकाव्य आस्तिक कथाओं, भारतीय नीति-कथाओं और सम्राट अशोक के असाधारण जीवन व कार्यों से परिचित हो गये थे. लेकिन इस सबके बावजूद उन्होंने बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया था. वे इसे गहन रूप से निराशावादी मानते थे. पर यह सच है कि गोर्की बौद्ध मत में निहित सत्य को पहचान गये थे. लेकिन वह सत्य उन ऐतिहासिक परिस्थितियों के लिए था, जिसमें वे पैदा हुए थे. पश्चिमी दुनिया की चर्चा न भी करें तो भी आधुनिक भारत के लिए यह दर्शन पूर्णतः अस्वीकार्य है. भारतीय विचारधारा में उनकी दिलचस्पी पंडिताऊ नहीं थी. बौद्ध मत में अंतर्विरोधों पर बल उस लड़ाई से संबंधित था जिसे गोर्की सक्रिय व्यक्तिगत तथा क्रांतिकारी कार्यों के लिए लड़ रहे थे. पारंपरिक भारतीय दर्शन शास्त्र में दिलचस्पी के लगभग साथ ही गोर्की की दिलचस्पी भारतीय मुक्ति संघर्ष में हो गयी थी. उनका विचार था कि "वह समय आ गया है जबकि भारतीयों को सामाजिक व राजनीतिक कार्य अपने हाथ में लेने होंगे और... कि बर्तानवी शासन गंगा के किनारे अपने समय से अधिक जी लिया है."

काप्री द्वीप में ठहरने के दौरान गोर्की ने भारतीय क्रांतिकारियों के एक दल के साथ अपने संपर्क बढ़ाये. सन् 1912 की शरद ऋतु में उन्होंने पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता श्रीमती बी.आर. कामा को इस प्रार्थना के साथ एक पत्र लिखा कि वे 'भारतीय नारी, उसकी मौजूदा स्थिति और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उसकी भूमिका' विषय पर रूसी प्रेस के लिए एक लेख लिखें. भारतीय क्रांतिकारियों की कठिनाइयों को जानते हुए गोर्की ने उनकी सहायता करने के कई तरीके खोजे. उन्होंने बर्तानवी शासन के खिलाफ लड़ाई से संबंधित उनकी पुस्तकें ही नहीं खरीदीं बल्कि अर्धकानूनी समाचारपत्र 'बंदे मातरम्' का चंदा भी दिया. इस पत्र को भारतीय क्रांतिकारी विदेश में छापते थे. यह पत्र उन्हें श्रीमती बी.आर. कामा ने ही भेजा था. एक अन्य सामाजिक कार्यकर्त्ता श्यामजी कृष्णवर्मा पेरिस से प्रकाशित अपने अखबार 'इंडियन सोशियोलाजिस्ट' की प्रतियां गोर्की को नियमित रूप से भेजा करते थे. गोर्की को अपने एक पत्र में कृष्णवर्मा ने लिखा, "मैं अत्यंत प्रसन्न हूं कि यूरोप में, कम से कम कुछ, ऐसे लोग हैं जो राजनीतिक स्वतंत्रता से वस्तुतः प्यार करते हैं और जो सिर्फ अपनी ही नहीं, बल्कि दुनिया के समस्त पीड़ित जनगण की स्वतंत्रता की कामना करते हैं." भारतीय क्रांतिकारियों से गोर्की को जो सामग्री मिलती थी, उन्होंने उसका काफी भाग अपनी पत्रिका 'सामयिक' में प्रकाशित किया. इस तरह उन्होंने रूसी पाठकों को भारतीय देशभक्त वी.डी. सावरकर के विरुद्ध सरकारी मुकदमे के बारे में सूचित किया. सावरकर को बर्तानवी उपनिवेशवादियों ने 48 साल की सजा दी थी. गोर्की ने इस भारतीय स्वतंत्रता सेनानी के भाग्य की तुलना रूसी जारशाही के खिलाफ लड़ने वाले उत्साही संघर्षकर्त्ता एन.जी. चेर्नीशेव्स्की से की. □

● उदयनारायण सिंह

तोल्सतोय ने एक जनरल के तमगों में हजारों नरहत्याओं का पुरस्कार देखा और जार के जार्जिया अभियान के विरुद्ध **हाजी मुरात** जैसी कहानियां लिख कर जीवन भर जार तथा चर्च के कोपभाजन रहे. तुर्गनेव की मृत्यु पर शोकसभा नहीं होने दी गयी और चेखव का शव मछली ढोने वाली मालगाड़ी में लाकर किसी को पता नहीं लगने दिया गया. उन्नीसवीं सदी के छठे-सातवें दशकों में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी आंदोलन में मार्क्स और बाकुनिन के बीच तुमुल संघर्ष चल रहा था, लेकिन रूसी बुद्धिजीवी अपने देशवासी बाकुनिन की अपेक्षा मार्क्स के विचारों से अधिक निकटता महसूस करता था. गोर्की ने भी अपने महान पूर्व-वर्तियों की संघर्षशील परंपरा को आत्मसात किया था.

संघर्ष की यह परंपरा अकेली आत्माओं की चीख नहीं बल्कि सामाजिक न्याय के लिए जनता के संगठित संघर्ष के साथ प्रतिबद्धता की परंपरा रही है, जिसके गोर्की सबसे बड़े प्रवक्ता हैं.

गोर्की ने अपनी पहली कहानी 'मकर चुद्रा' 1892 में लिखी थी जब वे सिर्फ 24 वर्ष के थे. इस अल्प-आयु में भी अधिकांश—लगभग 18 वर्ष कठोर यातनापूर्ण श्रम के वर्ष थे. इस दौरान उन्हें इतनी कड़वाहटें पीनी पड़ीं कि अलक्सेई पेश्कोव ने अपना नाम मैक्सिम गोर्की रख लिया जिसका अर्थ ही कड़वाहट होता है. मजदूरी करते हुए 16 वर्ष की आयु में वे ऊंची शिक्षा की आकांक्षा लिये हुए कजान गये. लेकिन कजान विश्वविद्यालय में प्रवेश की जगह वे उस दूसरे विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए विवश हुए जिसे खुद उन्होंने 'जीवन का विश्वविद्यालय' कहा है.

यह जीवन था आवारा तलछटी लोगों का, गंदी बस्तियों में रहने वालों और अंधेरे तहखाने में स्थित सेम्योनोव बेकरी के मजदूरों का जिनके बीच रहकर वे बुद्धिजीवियों के एक दल द्वारा संचालित एक क्रांतिकारी अध्ययन मंडल के भी सदस्य बन गये. वहां उन्होंने मार्क्सवाद तथा दर्शन और अर्थशास्त्र के बुनियादी सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त की. इस प्रकार उनका अपना जीवन भी रूस के समस्त मजदूर वर्ग के बौद्धिक विकास को प्रतिबिंबित करता है. यहां के लगभग सात वर्ष के जीवन में, और बाद में मेहनत मजदूरी करते हुए समस्त रूस की यात्रा के दौरान उन्हें तत्कालीन रूस के साधारण आदमी की जिंदगी को नजदीक से देखने का अवसर मिला. यहीं उन्होंने उसके असंतोष का, परिवर्तन और आजादी की उसकी लालसा, तथा इसके लिए क्रांति की आवश्यकता का प्रत्यक्ष अनुभव किया जो उनके भावी साहित्य का प्रधान और ऊर्जस्वी स्वर बना. इसी के साथ उनमें 'दमड़ी के गुलाम' आत्मसंतुष्ट कूपमंडूकों के प्रति घृणा की भावना भी विकसित हुई जो परिवर्तन के विरोधी थे और जिनकी रुचि साहित्य में कलावादी बाजीगरी और विदूषक वृत्ति को प्रश्रय देती थी. ये वे लोग थे जिनका गोर्की 'फिलिस्टाइन' कहकर मखौल उड़ाते थे.

उस साल की उनकी प्रारंभिक कहानियों में उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में रूस के जीवन का व्यापक, वैविध्यपूर्ण चित्र मिलता है. इनमें वे केवल किस्सागो नहीं हैं बल्कि मनुष्य की अस्मिता की तलाश करते हैं. यहां केवल तथ्यांकन नहीं बल्कि मनुष्य की स्वतंत्रता की उद्दाम आकांक्षा के दर्शन होते हैं. रोमांटिक आदर्शवाद या प्रतीकवादी रोमानियत से भिन्न यहां गोर्की का रोमांटिक यथार्थवाद ऐसे सपनों से अनुप्राणित है जो आज की यथार्थता को बेधकर आगामी कल की यथार्थता को देखते हैं. यही गोर्की का मूल स्वर है जो आगे चलकर समाजवादी यथार्थवाद के रूप में विकसित हुआ—अर्थात जो उसका यथातथ्य अंकन ही नहीं बल्कि यह भी कि उन्हें कैसा होना चाहिए. **'मकरचुद्रा', 'बूढ़ी इजरगिल', 'उकाब का गीत', 'तूफान का अग्रदूत', 'दांको का दिल'** आदि कहानियों में मनुष्य की आजादी की उद्दाम लालसा का स्वर ही प्रबल है. इनमें स्वतंत्रता और संघर्ष की गर्बीली ललकार क्रांतिकारी आह्वान की भांति गूंजती है. इन कहानियों ने न सिर्फ रूस के पाठकों को बल्कि दुनिया भर के स्वतंत्रता प्रेमियों को अनुप्राणित किया है. बहुत कम लोगों को मालूम है कि यूरोप में रहते हुए भारतीय क्रांतिकारी लाला हरदयाल और मैडम कामा जैसे लोग भी उन्हें पढ़कर अभिभूत हुए थे.

दूसरी ओर इसी दौर की **'खाली पंछी क्या करे', 'स्कूल मास्टर कोर्जिक', 'चेल्काश', 'कोनोवालोव' और 'ओर्लोव दंपती'** जैसी कहानियों में जीवन के गतिरोध, मध्यवर्गीय संकीर्णता, आत्मिक दैन्य और क्रूरता तथा उदासीनता का निर्मम चित्रण करते हुए मनुष्य जीवन को विकृत बनाने वाली प्रवृत्तियों को उद्घाटित किया गया है. रोमांटिक यथार्थवादी कहानियों के बाद बुर्जुवा समाज से निष्कासित निचली गहराइयों में रहने वाले तलछट के लोगों से संबंधित रचनाओं का गोर्की के प्रारंभिक लेखन में प्रमुख स्थान है. इनमें एक ओर स्कूल मास्टर कोर्जिक जैसे लोग हैं, जो अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण न तो जीवन को बेहतर बनाने में कोई योगदान करते हैं और न ही अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार रह पाते हैं. दूसरी ओर चैलकाश, कोनोवालोव और ओर्लोव दंपती जैसे लोग हैं जो बुर्जुवा जीवन प्रणाली से घृणा तो करते हैं, लेकिन उसकी कोई दिशा न होने के कारण सामाजिक संगठन के सभी रूपों से, और अंततः मिल्कियत के प्रति अपनी घृणा के चलते श्रम से ही घृणा करने लगते हैं. ये अच्छे लोग हैं, आजादी से प्रेम करते हैं और जीवन में सार्थकता की तलाश करते हैं. लेकिन जैसा कि नेक आदमी और अच्छे कारीगर कोनोवालोव के साथ होता है, एक सजग, सोद्देश्य क्रियाशीलता के अभाव में उसकी नेक भावनाएं टिक नहीं पातीं.

इन्हीं के साथ—**'नमक की दलदल'** और **'उत्पाती'** शीर्षक कहानियों को भी रखा जा सकता है जो मनुष्य पर अमानवीय श्रम के दुष्प्रभाव और क्षणिक आवेश में आकर दुस्साहसिक क्रांतिकारिता की निरर्थकता की ओर संकेत करती हैं. 'नमक की दलदल' में मजदूर अपने ही एक साथी के साथ क्रूर मजाक करते हैं और 'उत्पाती' में कंपोजिटर ग्वेज्दनोव संपादकीय अग्रलेख के शब्दों को बदल देता है.

लेकिन ये नकारात्मक पात्र नहीं हैं और न ही ये कहानियां उनका निंदाख्यान हैं. इनमें मनुष्य के पूर्ण रचनात्मक जीवन के लिए गोर्की का सरोकार स्पष्ट है, साथ ही ये उस समाज व्यवस्था की गहरी आलोचना भी करती हैं जो मनुष्य को सम्मानपूर्ण मानवोचित जीवन से वंचित रखती है.

अपने इन पात्रों के बारे में गोर्की ने 1928 में अपने एक लेख में कहा था, "यद्यपि उनका जीवन दैन्यग्रस्त था, वे आराम की जिंदगी बितानेवालों से बेहतर मिट्टी के बने थे, वे यह जानते थे, और उन्हें इसका गर्व था...यदि मुझे 'पवित्रता' जैसी किसी चीज की बात करनी पड़े तो मैं कहूंगा कि अपने आप के प्रति असंतोष से, जो है उससे बेहतर बनने की आकांक्षा से अधिक पवित्र मानता हूं जो वह जीवन को असुंदर बनाने वाले हर कचरे के प्रति जिसे खुद उसी ने जन्म दिया है, महसूस करता है, साथ ही द्वेष, लालच, अपराध, रोग, युद्ध तथा दुनिया के लोगों के बीच शत्रुता को खत्म करने की उसकी आकांक्षा को, और मनुष्य के श्रम को पवित्र मानता हूं."

गोर्की के ये पात्र उनके इन्हीं विचारों के वाहक हैं. साथ ही यही वह कलात्मक तथा वैचारिक आधार है जिस पर आगे बढ़ते हुए उन्होंने समाजवादी यथार्थवाद की धारणा का प्रतिपादन किया. यह कोई रूढ़ सैद्धांतिक नारा नहीं बल्कि मनुष्य से साहित्य के रिश्ते को, और जीवन को बेहतर बनाने के संघर्ष में साहित्य की भूमिका को निर्धारित करने की एक सकारात्मक दृष्टि है.

यह साहित्य की एक नयी भूमिका थी और इसके लिए गोर्की को अपने समय के यथातथ्यवादियों, भविष्यवादियों, कलावादियों और प्रतीकवादियों से निरंतर संघर्ष करना पड़ा था. सब कुछ मनुष्य, और मनुष्य की गरिमा के लिए, गोर्की ने कहा था, क्योंकि वह इस धरती की सबसे बड़ी रचना और सबसे बड़ा रचनाकार है. यदि विज्ञान केवल विज्ञान के लिए नहीं हो सकता तो कला सिर्फ कला के लिए या साहित्य सिर्फ साहित्य के लिए क्यों हो सकता है? **आज साहित्य के धरातल पर ये प्रश्न सदा के लिए तय हो चुके हैं. आज सामाजिक यथार्थबोध किसी भी साहित्य की जीवन शक्ति और केंद्रीय सरोकार है, और इसके लिए रचनाकार अन्य किसी की अपेक्षा मैक्सिम गोर्की का, उस लेखक का ऋणी है जिसने अपनी महान रचनाओं से विश्व साहित्य की धारा को बदल दिया था, और वह धारा आज भी उसी दिशा में गतिमान है.** □

बंधन

नरेंद्र कोहली

अब तक आप पढ़ चुके हैं

शिकार खेलने गये सम्राट शांतनु, निषाद राज की पुत्री सत्यवती को देखकर उसके सौंदर्य से इतने अभिभूत हो गये कि उन्होंने स्वयं को महल में कैद कर लिया, क्योंकि सत्यवती से विवाह करने के लिए निषादराज की शर्त थी कि उस स्थिति में सत्यवती का पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा. राजा यह वचन नहीं दे पाये. राजा की पूर्व पत्नी गंगा जो हर प्रसव के बाद अपनी संतान को नदी में बहा देती थी, अपने अंतिम पुत्र देवव्रत को नदी में न बहा पाने के कारण राजा को त्याग कर जा चुकी थी. अब युवावस्था में पहुंचा युवराज देवव्रत ही राज्य का उत्तराधिकारी था. देवव्रत से पिता की कामपीड़ित स्थिति देखी नहीं गयी और वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने पिता के सुख के लिए सत्यवती को लिवा लाया. रास्ते में सत्यवती को याद आया कि किस प्रकार पाराशर से उसका मिलन हुआ. फिर वह एक बेटे की मां बनी और उसे पाराशर के सुपुर्द करके अपने बाबा के साथ लौट आयी...

शांतनु ने देवव्रत का नया नामकरण किया—भीष्म. सत्यवती से प्रथम मिलन में शांतनु को काम सुख तो मिला मगर उसकी बातचीत, उसके ज्ञान की सीमाओं ने सम्राट को चिंतित भी किया. शांतनु चकित रह गये कि उन्होंने वास्तव में क्या मांगा था और क्या पाया? ...सत्यवती से दो राजपुत्र पाने पर वे उतने प्रसन्न न हो सके जितने इस सूचना को पाकर चिंतित हुए कि भीष्म गंगा किनारे एक कुटिया बनाकर वहीं रहने लगा है...
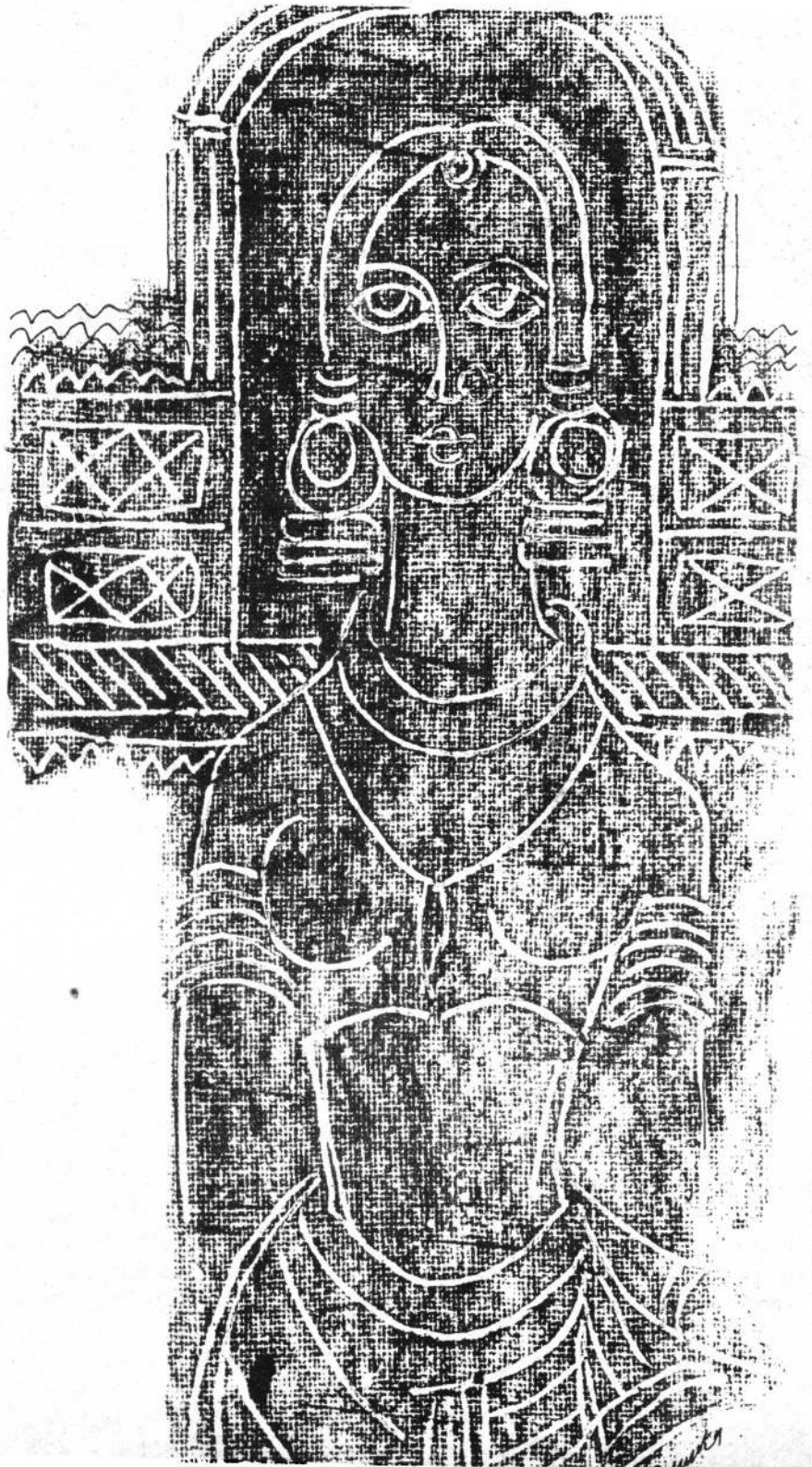
''**तो** क्या सत्यवती भी जानती है?'' शांतनु ने मन-ही-मन सोचा! किंतु पूछा, ''कौन-सी सूचना?''

''जिसे सुनकर इस समय आप यहां चले आये हैं.'' शांतनु को लगा, सत्यवती का स्वर कुछ ऊंचा ही नहीं, अशिष्ट भी हो गया है. पर उनका मन कह रहा था कि सत्यवती का यह व्यवहार भीष्म के वानप्रस्थ के कारण नहीं हो सकता.

''क्या हुआ है सत्या?'' शांतनु का स्वर अनपेक्षित रूप से शांत था, ''तुम कुछ क्षुब्ध लग रही हो.''

''आपको मंत्री विष्णुदत्त ने कुछ नहीं कहा?''

''नहीं तो!'' और शांतनु मन-ही-मन चकित होते हुए सोच रहे थे कि विष्णुदत्त से संबंधित ऐसी कौन-सी बात थी, जिसके कारण सत्यवती इतनी क्रुद्ध है और विष्णुदत्त ने न केवल उसकी चर्चा ही नहीं की, उल्टे वह शांतनु के स्वास्थ्य के विषय में अपनी चिंता प्रकट करता रहा.

''आज युवराज भ्रमण के लिए गये थे...''

''कौन?'' शांतनु अनायास ही पूछ बैठे....'भ्रमण के लिए कौन गया' वे सोच रहे थे, 'भीष्म तो गंगा-तट पर कुटिया बनाये बैठा है...'

''युवराज चित्रांगद!'' सत्यवती ने एक-एक शब्द बलपूर्वक कहा.

ओह...यह उस दस बरस के छोकरे की चर्चा भी नाम से नहीं 'युवराज' पद से करती है...जैसे हर क्षण अपने-आपको भी याद दिलाती रहती होऔर उन्हें भी कि युवराज भीष्म नहीं, चित्रांगद है....लगता है, अभी भी इसे आठों प्रहर एक ही आशंका खाये जा रही है कि भीष्म, चित्रांगद से उसका 'युवराज' पद छीन न ले.

''तो क्या हुआ?'' शांतनु ने पूछा, ''चित्रांगद का भ्रमण करने जाना कोई ऐसी घटना तो नहीं, जिसकी सूचना राजा को अवश्य दी जाये.''

''एक वाटिका के बाहर जाकर सारथि ने रथ रोक दिया. युवराज ने कारण पूछा तो सारथि ने बताया कि वह राजोद्यान है. भीतर पदाति ही जाया जा सकता है—रथ के लिए मार्ग नहीं है. युवराज ने उससे कहा कि राजोद्यान उनकी निजी संपत्ति है. यदि वे चाहते हैं कि रथ भीतर जाये तो सारथि का कर्तव्य है कि वह रथ को भीतर ले जाय. किंतु सारथि ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया. उसे इस अपराध के लिए दंडित करने हेतु, युवराज ने उसे कशा से पीटा...''

शांतनु को लगा, कशा सारथि की पीठ पर नहीं, उनकी अपनी पीठ पर पड़ा हो. दस वर्षों का यह उद्दंड छोकरा अपने-आपको युवराज समझता है, इसलिए वह जिस-तिस को अपराधी मानकर दंडित करने के लिए कशा से पीटता है...ये सारथि, परिचारक तथा अन्य राजकर्मचारी, वय में उससे बहुत बड़े हैं. वे राजपरिवार की मर्यादा और प्रासाद के विधि-विधान को जानते हैं. उनका दायित्व है कि वे राजकुमार को राजकुल की मर्यादा से परिचित करा दें...और इस शिक्षा के लिए अनुगृहीत होने के स्थान पर, वह उनको दंडित करता है...यह शील-शिष्टाचार सिखाया है, सत्यवती द्वारा नियुक्त अध्यापकों और आचार्यों ने उसे?

किंतु अपने मन के बवंडर को उन्होंने अपने तक ही रोके रखा. पूछा, ''फिर क्या हुआ?''

''होना क्या था,'' सत्यवती बोली, ''कुछ होता, इससे पहले ही आपका वह बूढ़ा विष्णुदत्त वहां आ पहुंचा; और इस प्रकार पूछताछ करने लगा, जैसे वह युवराज से भी अधिक अधिकार संपन्न कोई राज-कर्मचारी हो. युवराज ने उसे बताया कि सारथि उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है, तो सारथि को प्रताड़ित करने के स्थान पर, आपका वह विष्णुदत्त युवराज को ही समझाने लगा कि सारथि ठीक कह रहा है. राजोद्यान के भीतर रथ ले जाने का नियम नहीं है. युवराज को क्रोध तो बहुत आया; किंतु मंत्री की वृद्धावस्था का विचार कर, उन्होंने उस पर कशा का प्रहार नहीं किया. अपने नन्हे-से हाथ का एक चांटा भर मार कर, वे यह कहकर लौट आये कि वे महाराज के सम्मुख मंत्री और सारथि पर अभियोग प्रस्तुत करेंगे...''

सहसा शांतनु के मन में सत्यवती के लिए दया उमड़ आयी : यह बेचारी अपने पुत्र की ममता और उसके युवराजत्व के महत्व से ऐसी त्रस्त है कि उसका विवेक जैसे मर ही गया है. वह समझ नहीं पा रही कि उन तीनों में अपराधी यदि कोई है तो स्वयं चित्रांगद है. दंड मिलना चाहिए, तो चित्रांगद को ही मिलना चाहिए. दस वर्षों का यह छोकरा अपने युवराजत्व में ही इतना मदांध हो गया है कि वह अपने अधिकार की कोई सीमा ही नहीं समझता. नियम, मर्यादा और धर्म को भी नहीं समझता.....कल, जब यह मदांध राजकुमार, राजा के रूप में हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा, तो इसका अहंकार आज की तुलना में कहीं अधिक स्फीत हो चुका होगा. तो क्या वह राजसभा में बैठा, अपने हाथों, राजदंड से लोगों को पीटा करेगा? क्या वह इस बात को समझ पायेगा कि वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति अपने ही पाप को भोगता है; किंतु राजा का पाप शतगुणित होकर, लौटकर फिर उसी पर पड़ता है...

शांतनु को चुप देख, सत्यवती पुनः बोली, ''क्या विष्णुदत्त ने आपसे चर्चा की?''

''नहीं!'' शांतनु बोले, ''किंतु तुम्हें चित्रांगद को समझाना चाहिए कि राजकुमारों की भी कोई मर्यादा होती है.''

सत्यवती की आंखें आश्चर्य और क्रोध से फैल गयीं. वह अवाक् बैठी शांतनु को देखती रही.

—कर्म का फल इच्छा से संचालित होता है या सृष्टि के नियमों के अधीन है?...कर्म-बंधन कितना बांधता है और कितना मुक्त करता है...सम्राट शांतनु ने वृद्धावस्था में निषाद षोडशी से विवाह की इच्छा कर और देवव्रत ने इस विवाह के लिए आजीवन विवाह न करने की भीष्म प्रतिज्ञा कर कर्म के किस बंधन को चुनौती दी और कर्म के किस फल को इच्छा से संचालित किया अथवा सृष्टि के नियमों के अधीन होकर माना?

प्रस्तुत है...राम कथा पर आधारित उपन्यासों के बहुचर्चित कथाकार द्वारा महाभारत पर आधारित उपन्यासों की श्रृंखला में उनका प्रथम उपन्यास...

शांतनु के मन में आया कि कहें, 'युवराज की मां की भी मर्यादा होती है ...'

पर उन्होंने कहा नहीं. उठकर चुपचाप कक्ष से बाहर चले गये. अब भीष्म की चर्चा व्यर्थ थी.

भीष्म को कुछ नयी अनुभूतियां हो रही थीं.

प्रासाद का जीवन भिन्न ही प्रकार का जीवन था. ऐसा कभी नहीं होता था कि किसी दूसरे राजा के प्रासाद को देखकर यह तुलना मन में न जागे कि उसका प्रासाद सुंदर है या मेरा; उसका प्रासाद विस्तृत है या मेरा? कुटिया में आने के बाद से उन्होंने कभी तुलना नहीं की कि किसी और की कुटिया उनसे छोटी है या बड़ी? इसका क्या अर्थ है?... क्या सचमुच भौतिक सुख-सुविधाओं का कोई अंतर नहीं है? सारा प्रपंच मन का ही है? मन मान जाये कि बड़ा वह है, जो सब से अधिक अर्जित करता है, तो दूसरों को वंचित करके भी वह तुष्ट होता है. उसे तनिक भी पीड़ा नहीं होती कि उसके ग्रहण के लिए, कितने लोगों को त्याग करना पड़ा. और मन यह मान ले कि जो

सबसे अधिक त्याग करे, वही सब से बड़ा है, तो सब कुछ छोड़-छाड़कर भी वही अपने को श्रेष्ठ, उत्तम और महान् मानता है. मुख्य तो 'अहंकार' है. अहं तुष्ट हो जाये, तो व्यक्ति सुखी हो जाता है. चाहे भूखा रह ले, चाहे अफर कर खा ले...अहंकार भी तो अनेक प्रकार का हो सकता है...धन का, बल का, बुद्धि का, चरित्र का, त्याग का...यहां तक कि निर्धनता का भी...पर अहंकार तो पतन के मार्ग पर ही ले जायेगा...तो अहंकार से ही मुक्ति पानी होगी....

पर अहंकार तो तभी गलेगा, जब मन में तुलना न हो. और तुलना का नाश करने के लिए तृष्णा का नाश करना पड़ेगा. लोभ से पीछा छुड़ाना पड़ेगा....

भीष्म का मन मुक्त होकर विचार-क्षेत्र में विचरण करने लगा : राजा के पास सब कुछ होता है, शांति नहीं होती. वह अपनी व्याकुलता में युद्ध करता है, आखेट करता है, द्यूत खेलता है, विवाह रचाता है...और एक तपस्वी है कि अपने पास कुछ न होते हुए भी, उसे भूमि पर अधिकार की इच्छा नहीं होती; वन में रहते हुए भी आखेट की कामना उसे नहीं सताती; धन का पूर्ण अभाव होने पर भी वह द्यूत की ओर अग्रसर नहीं होता; स्त्री-विहीन होते हुए भी वह स्त्री की कामना नहीं करता...क्यों? जिसके पास है, वह और अधिक पाने की कामना करता है; और जिसके पास नहीं है, उसे अपना अभाव सालता ही नहीं है...क्या इसलिए कि राजा के पास सब कुछ है तथा उसे और अधिक मिलने की पूरी संभावनाएं हैं? क्या प्राप्ति की संभावना होने पर मन का लोभ और अधिक जागता है? क्या इसीलिए राजा नगरों का निर्माण करता है और तपस्वी नगरों से भागकर वनों में चला जाता है...जहां न तुलना है, न संभावना, न लोभ, न तृष्णा....

यदि भीष्म कुरु-राज्य के युवराज होते, तो उनके सामने राजा बनने की संभावना होती, चक्रवती होने का लोभ होता. वे राजसूय और अश्वमेघ युद्धों की बात सोचते. सेना का संगठन करते. युद्धों की तैयारी करते...किंतु जब राज्य ही नहीं है, तो उसका विस्तार कैसा?...कैसे सुखी हैं भीष्म! वे वचन-बद्ध हैं. किसी प्रकार की संभावना नहीं है, तो फिर लोभ कैसा...

किसी की आहट से उनकी विचार-श्रृंखला टूटी.

सिर उठाकर देखा : महाराज का सारथि सामने खड़ा था. उसने हाथ जोड़कर प्रणाम

"आओ अश्वसेन!" भीष्म ने उसका स्वागत किया, "कैसे आये, महाराज प्रसन्न हैं न?"

"महाराज ने आपको स्मरण किया है." अश्वसेन बोला, "मैं रथ लाया हूं."

भीष्म का मन बुझ-सा गया....फिर रथ, सारथि, नगर, प्रासाद, राजा, अधिकार...वे उस संसार में नहीं लौटना चाहते...किंतु पिता की आज्ञा...

निर्णय करने में उन्हें कुछ ही क्षण लगे : पिताजी ने बुलाया है, तो जाना ही होगा. अपने मन की शांति से, पिता का सुख बड़ा है....

"चलो!" उन्होंने अपना उत्तरीय संभाला और उठ खड़े हुए.

शांतनु ने भीष्म का स्वागत किया, "आओ प्रभु! अब तो तुम से भेंट तभी हो सकेगी, जब विशेष रूप से तुम्हें बुलाया जाये."

भीष्म को पिता के स्वर में उपालंभ की गंध आयी. वैसे पिता का उपालंभ अपने स्थान पर ठीक ही था. भीष्म बहुत दिनों से इधर नहीं आये थे. अब भी पिता न बुलाते, तो शायद वे न ही आते...पिता कह सकते हैं कि भीष्म के मन में उनके लिए अब कोई कोई नहीं रहा : क्या कहें भीष्म? ऐसे उपालंभ का उत्तर भी तो नहीं दिया जा सकता. यदि वे कहें कि सचमुच पिता के प्रति उनके मन में कोई मोह नहीं रहा, तो न तो यह सत्य होगा, न शालीन!...यदि वे कहें कि उनके मन में तो पिता के लिए प्यार भी है और दायित्वबोध भी; उन्हें पिता की हल्की-सी पीड़ा भी बहुत गहरे में जाकर चुभती है और वे पिता को उस पीड़ा से बचाने के लिए कछ भी कर सकते हैं...तो पिता पुनः पूछेंगे कि ऐसी स्थिति में वे उनसे मिलने क्यों नहीं आते? उनसे दूर क्यों भागते हैं?...तो क्या वे पिता को सच बता पायेंगे? क्या पिता नहीं जानते कि माता सत्यवती के निकट जाते ही भीष्म को आभास होने लगता है कि उन्हें वहां पसंद नहीं किया जाता. और भीष्म को अपनी अवज्ञा नहीं लगती. क्या भीष्म पिता को बता पायेंगे कि वे उनके और माता सत्यवती के बीच नहीं आना चाहते. वे नहीं चाहते कि उनके कारण पिता को माता की ओर से कुछ ऐसा सुनना या सहना पड़े, जो उनके लिए दुखद हो. और उनकी यह दूसरी गृहस्थी भी उनके लिए प्रसन्नतादायिनी न रह जाये....पिता को इन छोटी-छोटी असुविधाओं से बचाने के लिए, उनके जीवन को और अधिक सुखद और विघ्नरहित बनाने के लिए ही तो भीष्म अपने-आप को पिता से ही नहीं, संपूर्ण राज-परिवार से...और क्रमशः इस राज-समाज से काटने का प्रयत्न कर रहे हैं...

यदि भीष्म ने ऐसा कुछ भी कहा तो पिता यह मानेंकि कि वे उनसे रुष्ट हैं; और उस रोष के कारण वे उनसे दूर हटने का प्रयत्न कर रहे हैं. कोई बड़ी बात नहीं, यदि वे यह मान लें कि माता सत्यवती और उनके पुत्रों, चित्रांगद और विचित्रवीर्य से पाये गये अपमान का प्रतिशोध भीष्म अपने पिता से ले रहे हैं. इस वृद्धावस्था में पिता को यह सब अच्छा नहीं लगेगा कि उनका वयस्क और समर्थ पुत्र उनका प्रतिस्पर्धी हो गया है; और उनको वह वही देना चाहता है, जो कुछ उसने उनसे पाया है...

भीष्म अच्छी तरह जानते हैं कि यह सत्य नहीं है. पिता ने अपना जीवन अपने लिए जिया है. वे भीष्म के जनक हैं और उन्होंने उन्हें माता गंगा के हाथों जीवन-मुक्त होने से बचाया अवश्य है; किंतु उसके बाद से उनके जीवन में, भीष्म के लिए कोई भी स्थान नहीं रहा है....पर भीष्म अपना सारा जीवन उनके लिए बिता रहे हैं, उनकी प्रसन्नता के लिए, उनकी सुख-सुविधा के लिए!

जाने क्यों आज तक भीष्म के मन में अपने पिता के विरुद्ध कोई भी स्थायी शिकायत नहीं जन्मी...उनके मन में पिता के प्रति अनुराग है या दया. उन्हें लगता है कि उनके पिता का जीवन भाग्य के हाथों का खिलौना रहा है. राजा शांतनु राजा होकर भी कभी सुखी नहीं हुए. अपनी क्षमताओं ने उन्हें कोई सुख नहीं दिया. उनकी उपलब्धियां उनके लिए क्लेशकारी ही हुईं। ...इस वृद्धावस्था में सत्यवती जैसी असाधारण सुंदरी को पत्नी के रूप में पाकर भी, उससे जो सुख उन्हें मिला है, वह इस विवाह से प्राप्त असुविधाओं और झंझटों के सामने बहुत छोटा है. उन्हें इस वार्द्धक्य में दो-दो पुत्र मिले; पर दे पुत्र उनके लिए चिंता के ही विषय हो गये हैं, हर्ष और उल्लास के नहीं....

"मैंने सोचा, आप अपने राज-काज में व्यस्त होंगे." अंत में भीष्म बोले, "मेरी मनस्थिति भी इधर बहुत बदली है. मुझे एकांत कुछ अधिक ही प्रिय लगने लगा है. तपस्वियों, मुनियों और मनीषियों से वार्तालाप अधिक सुखद लगने लगा है..."

"मुझे कुछ ऐसी सूचनाएं मिली हैं पुत्र!" शांतनु बोले, "इनसे मुझे प्रसन्नता भी होनी चाहिए थी...."

भीष्म ने पिता की ओर देखा : क्या कहना चाह रहे हैं पिता? उन्हें क्यों प्रसन्नता होनी चाहिए थी?

"पहली बात तो यह है कि तुमने मेरी इच्छा के अनुकूल मेरे विवाह में सहयोग ही नहीं किया, नयी गृहस्थी दी और स्वयं मेरे मार्ग में से कुछ इस प्रकार हट गये कि न मेरे मन में तुम्हें लेकर कोई दायित्व जागे, न अपराध-बोध. दूसरे, तुम अपने आध्यात्मिक उत्थान की ओर बढ़ रहे हो, अधिक समर्थ बन रहे हो..."

"कैसे पिताजी?" भीष्म पूछे बिना नहीं रह सके.

"ग्रहण से त्याग बड़ा होता है पुत्र!" शांतनु बोले, "ग्रहण करने वाले से त्याग करने वाला अधिक समर्थ है...इस वय में तुम सेनाएं लेकर दिग्विजय कर रहे होते, तो भी तुम समर्थ माने जाते; किंतु अपनी वीरता-शूरता, अपने शस्त्र-ज्ञान और अपने युद्ध-कौशल को पूर्णतः विस्मृत कर, अपने समस्त रजस-तत्वों का दमन कर—अपने जिस व्यक्तित्व का विकास तुम कर रहे हो, वह अधिक समर्थ व्यक्ति का रूप है. पर पुत्र!"

शांतनु रुक गये.

भीष्म उन्हें देखते रहे : क्या है पिता के मन में? पता नहीं पिता के मन में भाव स्पष्ट नहीं थे, या वे उपयुक्त शब्दों की प्रतीक्षा में थे.

"मैंने तुमसे कहा था कि अकेले पुत्र का पिता निःसंतान व्यक्ति से भी अधिक दुखी होता है." कुछ क्षणों के बाद शांतनु बोले, "अब तुम्हारे अतिरिक्त मेरे दो पुत्र और हैं. यदि सच-सच कहूं, तो अब मैं अनुभव कर रहा हूं कि तुम अकेले थे तो मैं न केवल पुत्रवान था, वरन् सौ पुत्रों वाले पिता के समान पुत्रवान था....चित्रांगद और विचित्र वीर्य को मैंने पाया तो है पुत्र! पर तुम्हें खोकर ही...."

"ऐसा क्यों कहते हैं पिताजी!" भीष्म बोले, "मैं जीवित हूं. आपके पास हूं. आप आदेश करें."

"नहीं! तुम्हें आदेश नहीं दूंगा." शांतनु बोले, "मैं स्वीकार करता हूं कि तुम्हारे और मेरे बीच चित्रांगद और विचित्रवीर्य खड़े हैं. मैं तुम तक पहुंचना चाहूं तो मुझे उन दोनों को बीच में से हटाना होगा...."

"नहीं! पिताजी! उसकी कोई आवश्यकता नहीं है."

"वह मुझ पर छोड़ दो." शांतनु बोले, "मैं तो यह कह रहा हूं, कि तुम्हारे बदले मैंने दो पुत्र पाये हैं. और वे दोनों पुत्र ऐसे हैं कि जिन्हें पाकर पिता निःसंतान हो जाता है..."

भीष्म कुछ नहीं बोले. चुपचाप पिता की ओर देखते रहे.

"तुमने भी सुना ही होगा." शांतनु पुनः बोले, "चित्रांगद अत्यंत उद्दंड और क्रोधी किशोर के रूप में प्रसिद्धि पा रहा है. किसी का भी अपमान कर देना, या किसी को भी पीड़ित या प्रताड़ित करना, उसके लिए सहज सामान्य है. अभी चौदह वर्षों का हुआ है और धनुषबाण हाथ में लिये युद्ध-आह्वान उच्चारित करता फिरता है. तुम योद्धा हो पुत्र. किंतु तुमने लोगों को युद्ध के लिए उकसाया नहीं. तुम युद्ध-प्रिय नहीं थे. वह योद्धा भी नहीं है...और युद्ध नहीं, क्रूरता और हिंसा उसका व्यवसाय हो गया है....मैं अनवरत रूप से इस आशंका के दंश को अपने हृदय में अनुभव कर रहा हूं कि किसी दिन वह द्वंद्व-युद्ध में मारा जायेगा...."

भीष्म का मन उमड़ कर आया कि पिता को सांत्वना दें : भला पुत्र की मृत्यु की आशंका से भयभीत और दुखी पिता से बढ़कर भी कोई पीड़ित हो सकता है...किंतु वे रुक गये. कुछ सोचते रहे और फिर बोले, "पिताजी! माता सत्यवती के साथ विवाह से पूर्व, आप इसी प्रकार की आशंका मेरे लिए पाल रहे थे. ऐसा क्यों है कि हस्तिनापुर के कुरु-सम्राट चक्रवर्ती राजा शांतनु सदा अपने पुत्रों की भावी मृत्यु की आशंका से पीड़ित रहते हैं. कहीं ऐसा न हो कि आप अपनी इन आशंकाओं को मानसिक रोग बना लें."

शांतनु कुछ संकुचित हुए; पर फिर सायास मुस्कराये, "ऐसा नहीं है पुत्र! आज मुझे सच बोलने दो. तुम्हारे विषय में मेरी आशंका वास्तविक नहीं थी...उसका प्रयोजन मात्र इतना था कि मुझे सत्यवती से विवाह करने का एक व्यावहारिक आधार मिल सके....किंतु चित्रांगद के विषय में यह पूर्णतः सत्य है. जिस प्रकार वह अपनी क्षमता और दूसरे की शक्ति का मूल्यांकन किये बिना जिस-तिस से उलझता फिरता है, उसका परिणाम कभी भी शुभ नहीं हो सकता. वह किसी भी दिन..."

"ऐसा नहीं होगा पिताजी!" भीष्म बीच में बोले, "और यदि ऐसा होगा भी तो क्षत्रियों के लिए वीरगति पाना सौभाग्य का लक्षण माना गया है."

"यह वीरगति नहीं होगी." शांतनु दुखी स्वर में बोले, "न्याय के पक्ष में अत्याचार का दमन करते हुए युद्ध में वीरगति पाना गौरव का ही लक्षण है किंतु व्यर्थ रक्तपात करते हुए अपने अपराधों के दंडस्वरूप प्राण गंवाना, दस्यु की मृत्यु है. मुझे इसी का भय है भीष्म!" शांतनु रुके नहीं, "और दूसरा है विचित्रवीर्य! वह बारह वर्षों का हुआ है, और कामुकता की ओर उसके चरण जिस गति से बढ़ रहे हैं, वह भयंकर है..."

"आप उन्हें रोकते क्यों नहीं?"

"रोक नहीं सकता पुत्र!"

भीष्म ने चकित दृष्टि से पिता को देखा.

"उन्हें रोकने का मुझे अधिकार नहीं है."

"क्यों?" भीष्म के स्वर में हल्का-सा आवेश था, "पर क्यों?"

शांतनु असहाय भाव से हंसे, "यह भी मेरे साथ नियति का परिहास है पुत्र! गंगा के पुत्र भी गंगा के ही रहे; सिवाय तुम्हारे उनमें से कोई भी शांतनु का पुत्र न हो पाया. ...वही स्थिति अब सत्यवती के पुत्रों की है...वे सत्यवती के ही पुत्र हैं, शांतनु के नहीं! उनके प्रति शांतनु के सैकड़ों दायित्व और कर्तव्य हैं, पर उसे अधिकार एक भी नहीं है..."

"आप क्या कह रहे हैं पिताजी?" यह सब भीष्म के लिए इतना आकस्मिक था कि वे समझ ही नहीं पा रहे थे कि वे क्या कहें.

"यही सत्य है पुत्र." शांतनु बोले, "मैं उन दोनों में से किसी को भी अनुशासित करने का प्रयत्न करूं तो सत्यवती उनके आड़े आ जाती है. वह तुरंत मुझे समझाने लगती है कि वे राजकुमार हैं, उनका इस प्रकार दमन नहीं किया जाना चाहिए! ....इस प्रकार उनका तेज नष्ट हो जायेगा. ...चित्रांगद को कुछ कहूं तो वह मुझे समझाने लगती है कि वह युवराज है. युवराज का अहंकार तो पुष्ट होना ही चाहिए. उसके मन में यह दृढ़-बद्ध धारणा होनी ही चाहिए कि वह अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ है. उसको अधिकार है कि वह किसी को भी दंडित करे, अपमानित करे... मैं यदि उसे समझाऊं कि राजकुमार या युवराज की भी कोई मर्यादा होती है, तो वह इस प्रकार तड़पने लगती है, जैसे मैं चित्रांगद का युवराजत्व छीन रहा हूं...."

उनको आप पर विश्वास नहीं है?"

"तनिक भी नहीं! उसे यह कहने में भी संकोच नहीं है कि वह मेरे किसी वचन का विश्वास नहीं करती. मैं आश्वासन के रूप में, समझाने के लिए जो

शांतनु जितना खुलते जा रहे थे, भीष्म का असमंजस उतना ही बढ़ता जा रहा था. कहां वे समझते थे कि उनके पिता-सरीखा कोई सुखी नहीं है और कहां... पिता तो मानो हृदय में ज्वालामुखी छिपाये फिर रहे थे.

कुछ कहता हूं, उसे वह मेरा पाखंड मानती है. इसलिए मैं जितना ही अपना स्नेह जताना हूं, जितना ही अधिक उसे विश्वास दिलाता हूं, वह उतनी ही प्रचंड हो जाती है..." शांतनु अत्यंत हताश स्वर में बोले, "उस समय वह जो कुछ मेरे विषय में कहती है, वह यदि कोई सुन ले, तो वह सहज रूप में यही विश्वास करेगा कि मुझ जैसा कोई पापी नहीं है, और उस जैसी दु:खिनी नारी इस सारी सृष्टि में नहीं है."

'शांतनु जितना खुलते जा रहे थे, भीष्म का असमंजस उतना ही बढ़ता जा रहा था. कहां वे समझते थे कि उनके पिता-सरीखा कोई सुखी नहीं है और कहां...पिता तो मानों हृदय में ज्वालामुखी छिपाये फिर रहे थे. उनके लिए भी अब यह सब असह्य हो गया था, तभी तो वे पुत्र के सम्मुख इस प्रकार खुल पड़े थे.

"क्या उन्हें कुछ भी समझाया नहीं जा सकता?" अंततः भीष्म ने पूछा.

"मैं जितना अधिक समझाने का प्रयत्न करता हूं, वह मुझसे उतनी ही रुष्ट होती जाती है. उसके मन में मेरे प्रति दृढ़-बद्ध धारणाएं हैं कि...मैं झूठा हूं, पाखंडी हूं, कामुक और अत्याचारी हूं. मैं अपनी मधुर वाणी से उसका सर्वस्व हरण कर उसे गलियों की भिखारिणी बना देना चाहता हूं. जब मैं अपने प्रेम और अपनी सद्भावना के प्रमाण प्रस्तुत करता हूं तो वह हंसकर मुझे टाल देती है, "तुम शब्दों से मेरी भावना को झुठला नहीं सकते. तुम्हारे तर्क कुछ भी प्रमाणित करें, पर सत्य क्या है मैं जानती हूं."

भीष्म पिता की ओर देख रहे थे : क्या चक्रवर्ती शांतनु इतने असहाय हो गये हैं?

"तुम्हें विचित्र लगेगा. वत्स, यदि मैं तुम्हें बताऊं कि मैं उससे किस सीमा तक डरने लगा हूं." शांतनु बोले, "मैं यह मानने लगा हूं कि वह निर्धन परिवार से राजमहल में आयी है, इसलिए निर्धनता का प्रेत उसका पीछा नहीं छोड़ रहा. पुनः अपनी पहली स्थिति में लौट जाने का भय उसे इतना सताने लगा है कि वह सहज नहीं रह पाती! तनिक–सी बात में उसे लगने लगता है कि मैं उससे मुक्त होने का बहाना ढूंढ रहा हूं. उसके मन से यह बात जाती ही नहीं कि मैं अंततः कोई-न-कोई षड्यंत्र रच कर उसके पुत्र के हाथों से अधिकार छीन लूंगा...वह स्पष्ट शब्दों में, अभिधा में कहती है कि वह निर्धन परिवार की बेटी है, उसकी पीठ पर कोई राजपरिवार नहीं है, इसलिए मैं उस पर अत्याचार कर रहा हूं...वह तो यहां तक कहती है कि मैं इतना अहंकारी तथा कामुक हूं कि कोई भी स्त्री मेरे साथ रह ही नहीं सकती. गंगा को भी मैंने ही घर से निकाल दिया था और उसके विषय में एक झूठी कथा प्रचलित कर दी थी कि वह मुझे छोड़ गयी है..."

"पिताजी!"

"हां भीष्म." शांतनु बोले, "उसे यदि बिलख-बिलखकर यह सब कहते हुए सुनो, तो तुम भी विश्वास कर लोगे कि तुम्हारा पिता उतना ही दुष्ट है, जितना वह कह रही है...."

"इतनी अमानवीय है वह?"

"रुग्ण है. उसके मनोविकारों ने उसके चिंतन को विकृत कर दिया है. कुछ बद्धमूल धारणाओं के कारण, उसकी दृष्टि बदल गयी है. अब जिस विकृत दृष्टि से वह जीवन को देखती है...उसके लिए प्रमाण जुटाने कठिन नहीं हैं. रस्सी पड़ी हो तो भी मनोविकारों या दृष्टिदोष के कारण वह सांप ही दिखायी देगा."

"पर मुझे तो कभी ऐसा नहीं लगा." भीष्म कुछ सोचते हुए बोले, "किसी और ने भी कभी इस प्रकार चर्चा नहीं की."

"नहीं! किसी तीसरे के सामने उसका कभी ऐसा व्यवहार नहीं होता." शांतनु का स्वर धीमा पड़ गया, जैसे अपने-आप से बातें कर रहे हों, "मैं ही उसका सबसे अधिक आत्मीय हूं. मैं ही सबसे अधिक प्रेम देता हूं उसे...और वह मेरे ही प्रति इतनी क्रूर है. मुझ पर ही उसका सबसे अधिक अविश्वास है. ...तंग आकर कई बार सोच चुका हूं कि उसे त्याग दूं, या स्वयं ही कहीं चला जाऊं..."

भीष्म ने चौंक कर पिता की ओर देखा.

"पर वह भी तो कर नहीं पाता मैं." वे बोले, "अभी तो कभी कुछ अनुचित किया नहीं मैंने, तो वह इतने आरोप लगाती है मुझ पर. यदि उसे त्याग दिया, या स्वयं कहीं चला गया, तो क्या कुछ नहीं कहेगी वह. हस्तिनापुर की वीथियों और पंथों पर वह मुझे अत्यंत क्रूर और अत्याचारी सिद्ध करती फिरेगी....और कौन विश्वास नहीं करेगा उसका? प्रजा कहेगी, शांतनु है ही ऐसा. उसने पहले गंगा को भी त्याग दिया था....उसे रोते-चिल्लाते देखकर, मेरी प्रजा मुझे उसी दृष्टि से देखेगी, जिस दृष्टि से आज मुझे चित्रांगद और विचित्रवीर्य देखते हैं..."

भीष्म ने पूछा कुछ नहीं; किंतु इतना जानने को वे अत्यंत उत्सुक थे कि चित्रांगद और विचित्रवीर्य अपनी माता के व्यवहार के विषय में क्या सोचते हैं.

"जब वह अपनी आशंकाओं से दुखी होकर, रोती-चिल्लाती है और मुझ पर अनेक प्रकार के आरोप लगाती है", शांतनु स्वयं ही बोले, "तो मेरे वे दोनों पुत्र शब्दों में तो कुछ नहीं कहते; किंतु उनकी जो आंखें मेरी ओर उठती हैं, वे बहुत कुछ कह जाती हैं. वे मुझसे पूछती हैं कि आखिर उनकी मां को परेशान क्यों करता हूं? और मेरी इच्छा होती है कि या तो अपना सिर प्रासाद की दीवारों से दे मारूं या अपने बाल नोच लूं..."

शांतनु चुप हो गये. भीष्म तो जैसे पिता का इतना दुख सुन कर अवाक् ही रह गये थे. वे क्या कहते...एक ओर भीष्म का मन जैसे कह रहा था, 'नारी का मोह ऐसा ही होता है. पिता ने अपने पहले अनुभव से कुछ नहीं सीखा, तो यह तो होना ही था...' पर दूसरी ओर भीतर ही भीतर उनका अपना मन ही उन्हें धिक्कारने लगा था'...तू तो आज तक समझे बैठा था कि तूने पिता को

सुखी करने के लिए इतना बड़ा त्याग किया है. तेरा अहंकार स्फीत होकर आकाश को छूने लगा था कि आज तक अपने पिता को सुखी करनेवाला, तेरे जैसा कोई सुपुत्र ही पैदा नहीं हुआ है... पर क्या सुख दिया तूने पिता को? उनके जीवन को तूने नरक बना दिया है...उन्होंने सत्यवती को चाहा था...किंतु तुझसे कुछ मांगा तो नहीं था. तुझसे मांगा इसलिए नहीं था, क्योंकि उसके अनौचित्य को उनका विवेक देख रहा था—तूने उनके अनौचित्य को नहीं देखा; और सत्यवती को लाकर उनके सम्मुख खड़ा कर दिया. कैसा पापी है तू....'

"आप अपने अपयश के भय से इस यातना को कब तक ढोयेंगे पिताजी?" भीष्म को यह कहने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ा.

"अपयश की ही बात होती, तो शायद मैं किसी और ढंग से सोचता." शांतनु बोले, "वस्तुतः सत्यवती से अलग होकर शायद मैं तो मुक्त हो जाऊंगा, किंतु वैसी स्थिति में चित्रांगद और विचित्रवीर्य पूर्णतः उसके अधिकार में होंगे. उनके विषय में सारे निर्णय वह करेगी. वे पूर्णतः उसके संरक्षण में होंगे. उसकी इच्छा के अनुसार उन्हें जीवन व्यतीत करना होगा...और जैसे भी हैं, वे मेरे पुत्र हैं वत्स!" शांतनु की आंखें भर आयीं, "मैं उन्हें पूर्णतः उस स्त्री के भरोसे कैसे छोड़ दूं, जो इतने मनोविकारों से ग्रस्त है. वह उनका भी जीवन नरक बना सकती है और अपने असंतुलित क्षणों में उनके लिए वही निर्णय ले सकती है, जो गंगा ने अपने पुत्रों के विषय में ले लिया था...." उन्होंने रुक कर भीष्म की ओर देखा, "और भी एक बात है भीष्म!"

"क्या पिताजी?"

"वह स्वस्थ होती, ठीक ढंग से सोच-समझ सकती और उसका व्यवहार दूषित होता....तो कदाचित् मैं कब से उसका त्याग कर चुका होता. पर वह रुग्ण है. उसकी चिंतन-प्रक्रिया विकृत है. वह ठीक से सोच नहीं पाती है...उसका त्याग मैं कैसे कर सकता हूं पुत्र। रोगी की सेवा की जाती है, उसे त्यागा नहीं जाता. उसे त्याग देने पर उसे जो शारीरिक और मानसिक कष्ट होगा, उसके लिए मैं स्वयं को कैसे क्षमा कर पाऊंगा..."

"तो मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है पिताजी?"

"नहीं! कोई मार्ग नहीं है." शांतनु बोले, "प्रकृति सर्वोच्च न्यायाधीश है; और न्याय करने वाला कठोर भी होता है वत्स! प्रत्येक व्यक्ति अपने पाप को भुगतना ही है. मैं भी अपने पाप को भुगत रहा हूं..."

भीष्म के मन में वैसी ही टीस उठी, जैसी सत्यवती को देखकर लौटे हुए पीड़ित पिता को देखकर उनके मन में उठी थी. उनका मन तड़प उठा : क्या करें भीष्म? उन्होंने पिता के सुख के लिए सब कुछ त्यागा था. पिता सुखी रहें, इसलिए उन्होंने स्वयं को पिता से दूर कर लिया था...और पिता यह सब भोगते रहे...

"क्या मैं कुछ भी नहीं कर सकता पिताजी?"

"क्यों नहीं कर सकते?" शांतनु के स्वर में कुछ उत्साह जागा. "तुम कुछ करो, इसके लिए ही तुम्हें बुलाया है."

"आदेश करें पिताजी!"

"पितृवत् प्रजा का पालन करने के लिए कुछ उदार होना पड़ता है पुत्र! उसके सुख-दुख में, उसके साथ चलना पड़ता है. समृद्धि के समय उससे कर उगाहा जाता है तो विपत्ति के समय उस पर व्यय भी किया जाता है. वैसे भी राजा का धन अपने भोग के लिए कम, प्रजा के सुख के लिए अधिक होता है पुत्र!"

भीष्म कुछ नहीं बोले. वे इस भूमिका के पश्चात् आने वाले मुख्य वक्तव्य को सुनने को उत्सुक थे.

"भीष्म! सत्यवती को मेरी उदारता प्रिय नहीं है." शांतनु बोले, "प्रजा के लिए व्यय करने का मेरा प्रत्येक प्रस्ताव उसको पीड़ित करने लगता है. वह यह मान लेती है कि हस्तिनापुर के राजकोष में जो कुछ है, वह उसके पुत्रों की संपत्ति है. यदि उस संपत्ति में मैं उनके लिए प्रासाद बनवाता हूं, दास-दासियों का क्रय करता हूं, भोजों का आयोजन करता हूं, मणि-माणिक्य खरीदता हूं—सत्यवती और उसके पुत्रों के लिए भोग-विलास की सामग्री उपलब्ध

कराता हूं, तो उनकी दृष्टि से मैं उचित ही करता हूं. मुझे यही करना चाहिए. यह मेरा दायित्व ही नहीं, धर्म भी है. किंतु, यदि मैं प्रजा के सुख के लिए, एक छोटी-सी राशि भी व्यय करता हूं, तो वह सोचकर अत्यंत व्याकुल हो जाती है कि मैं उसके पुत्रों की संपत्ति का अपव्यय ही नहीं कर रहा, जानबूझकर उसके पुत्रों के मार्ग में कंटक बोने का षड्यंत्र कर रहा हूं. वह मान लेती है कि मैं अपने जीवन में सारा राजकोष लुटा दूंगा और जब मैं मरूंगा तो उसके और उसके पुत्रों के लिए कुछ भी बचा नहीं रहेगा और वे कंगालों की भांति वीथियों और पंथों पर मारे-मारे फिरेंगे, या उसके अपने संबंधियों के समान गंगा के किसी घाट पर मछलियां पकड़-पकड़कर अपना जीवन-यापन करेंगे...इस कल्पना को वह इतना घनीभूत कर लेती है कि वह उसके लिए, जीवन का सबसे बड़ा सत्य हो जाता है; और वह उस संभावित काल्पनिक स्थिति से बचने के लिए, वर्तमान में मुझसे वास्तविक युद्ध छेड़ देती है....''

''क्या?'' भीष्म के मुख से अनायास ही निकल गया.

''हां! पुत्र!'' शांतनु बोले, ''ये मेरे निजी जीवन के कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जिनकी मैं किसी के सामने चर्चा भी नहीं कर सकता. किसी से बांटकर अपना बोझ हल्का नहीं कर सकता...अपनी और अपने वंश की अपयश से रक्षा करने के लिए, मैं प्रत्येक क्षण उससे डरता रहता हूं. चक्रवर्ती शांतनु अपनी पत्नी के भय से पीला पड़ जाता है कि कहीं वह अपने कुल में चली आयी पूज्य-पूजन की परंपरा को खंडित न कर दे, कहीं वह किसी आदरणीय का अपमान न कर दे, कहीं वह अपने सार्वजनिक प्रलाप से इस भरत वंश की कीर्ति को कलुषित न कर दे...''

''पुत्र! इच्छा होते हुए भी मैं तुम्हें युवराज नहीं बना सकता. यह जानते हुए भी कि कुरु साम्राज्य की रक्षा करने, उसे शक्तिशाली और समृद्ध बनाने, भरतवंश की कीर्ति को बढ़ाने में एकमात्र तुम ही समर्थ हो...मैं राज्य तुम्हें नहीं सौंप सकता.''

भीष्म चुपचाप अपने पिता को देखते रहे.

''इस भरत वंश का भविष्य मुझे बहुत उज्ज्वल नहीं दीखता वत्स! मैं जीवित रहते, अपनी प्रजा का समुचित पालन नहीं कर सकता...और मेरे पश्चात् चित्रांगद और विचित्रवीर्य अपनी इस मां की सहायता से हस्तिनापुर को नाश के मार्ग पर ही ले जायेंगे. स्वयं भी नष्ट हो जायेंगे, और प्रजा का भी विनाश करेंगे!....''

भीष्म के मन में उत्सुकता फन काढ़ खड़ी हो गयी : क्या चाहते हो पिता? इस पूर्व पीठिका का उत्तर खंड?

''इस राज्य को नष्ट होने से बचाने के लिए, भरत वंश की ख्याति की रक्षा के लिए, हमें कुछ करना होगा पुत्र!'' शांतनु बोले, ''अन्यथा...''

भीष्म का मन कह रहा था, 'या तो ऐसा कुछ होगा नहीं!...संभव है कि यह पिता के वृद्ध और दुर्बल स्नायु-तंत्र की आशंकाओं की ही माया हो...या यदि ऐसा ही कुछ हो गया. कुरु-साम्राज्य ध्वस्त हो ही गया. इस साम्राज्य का नाम बदल गया...शांतनु के बाद हस्तिनापुर के सिंहासन पर कोई तो दूसरा पुरुष बैठेगा ही, यदि वह पुरुष कुरु कुल का अंश न हुआ....तो क्या अंतर आ जायेगा!...धरती तो यही रहेगी, प्रजा भी यही रहेगी...ईश्वर की सृष्टि में क्या परिवर्तन हो जायेगा?....'

पर यह सब कुछ वे अपने पिता से नहीं कह सकते थे. पिता राजा थे, और राजाओं के समान सोचते थे. भीष्म के समान तटस्थ होकर वे अपने राज्य के विषय में कैसे सोचते?

''आपकी क्या इच्छा है पिताजी?''

''पुत्र! इच्छा होते हुए भी मैं तुम्हें युवराज नहीं बना सकता. यह जानते हुए भी कि कुरु साम्राज्य की रक्षा करने, उसे शक्तिशाली और समृद्ध बनाने; भरत वंश की कीर्ति को बढ़ाने में एकमात्र तुम ही समर्थ हो—मैं राज्य तुम्हें नहीं सौंप सकता.''

''मुझे कुरु साम्राज्य नहीं चाहिए पिताजी! मुझे राज्य नहीं चाहिए....''

''जानता हूं पुत्र! तुम्हें कुछ नहीं चाहिए.'' शांतनु बोले, ''पर यह भी तो जानना हूं कि आज कुरु वंश और कुरु साम्राज्य को तुम्हारी आवश्यकता हैं.'' उन्होंने अपनी दृष्टि को पूरी तन्मयता से भीष्म के चेहरे पर टिका दिया, ''तुम युवा हो, शक्तिशाली हो, समर्थ हो, शस्त्र-विद्या और रणनीति में दक्ष हो, सैनिकों, सेनापतियों और कुरु प्रमुखों के प्रिय हो...तुम बलात् यह राज्य हस्तगत कर लो पुत्र!...''

''पिताजी!'' प्रस्ताव की अप्रत्याशितता से जैसे भीष्म बौखला उठे, ''आप क्या कह रहे हैं पिताजी! यह संभव नहीं है.''

''तो कुरु साम्राज्य का अक्षुण्ण रहना भी संभव नहीं है.''

भीष्म कुछ शांत हुए, ''मैंने प्रतिज्ञापूर्वक राज्य त्यागा है. अब उसके लिए मैं बल-प्रयोग करूं? जिन कारणों से मैं प्रजा का प्रिय हूं, उन कारणों का आधार नष्ट कर दूं. अपनी जिस प्रतिज्ञा पर मैं गर्व करता हूं—उसे स्वयं भंग कर दूं? यह असंभव है पिताजी!''

''यदि मैं ऐसी आज्ञा दूं तो?''

''आपकी आज्ञा धर्म-विरुद्ध होगी.''

''तुम अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ोगे, चाहे तुम्हारे पिता टूट जायें.''

भीष्म ने पिता को देखा. कुछ देर जैसे साहस संचित किया और बोले, ''प्रतिज्ञा तोड़ी तो न केवल भीष्म टूटेगा, वरन भरत वंश का कीर्ति-कलश भी टूट कर गिर जायेगा....आप मुझे इसके लिए बाध्य न करें.'' वे उठ खड़े हुए, ''मुझे खेद है कि मैं आज्ञाकारी पुत्र होने का यश अक्षुण्ण नहीं रख सका.''

पिता को प्रणाम कर भीष्म द्वार की ओर चल पड़े.

शांतनु अपने स्थान पर बैठे, भीष्म को जाते हुए देखते रहे, जैसे कुरु साम्राज्य के उत्कर्ष को राजप्रासाद से दूर होते हुए देख रहे हों.

''भीष्म आपके पास क्यों आया था?''

''मैंने उसे बुलाया था.'' शांतनु सहज रूप में कह गये; और तब उनका ध्यान सत्यवती की ओर गया. उसकी वाणी में उसका विरोध बहुत मुखर होकर आया था...उसने जब भीष्म के चित्रांगद और विचित्रवीर्य के साथ मिलने पर आपत्ति की थी, शांतनु को तब भी पीड़ा हुई थी. बहुत प्रयत्न करने पर भी वे सत्यवती को समझा नहीं पाये थे कि भीष्म के प्रति इस प्रकार का द्वेष सत्यवती के लिए लाभदायक नहीं होगा. भीष्म का उससे क्या बिगड़ेगा...और तब से उन्होंने मान लिया था कि भीष्म उन्हीं का पुत्र है, सत्यवती का नहीं; और यदि वह सत्यवती का पुत्र नहीं है तो वह चित्रांगद और विचित्रवीर्य का भी भाई नहीं है... पर सत्यवती यह चाहती है कि वह उनका भी पुत्र न रहे....

''क्यों बुलाया था उसे?''

शांतनु की इच्छा हुई कि एक बार पूरी कठोरता से सत्यवती को डपट दें. वे राजा हैं, पिता हैं... उनकी इच्छा होगी तो वे जिसे चाहेंगे, उसे बुलायेंगे, मिलेंगे. वह किस अधिकार से भीष्म को उनसे और उनको भीष्म से मिलने से रोकना चाहती है?...पर दूसरे ही क्षण जैसे वे चेत गये....यहां वे न राजा हैं, न पिता. यहां वे पति हैं, और पति-पत्नी का संबंध अपने ही नियमों से परिचालित होता है...सत्यवती भीतर-ही-भीतर उफन रही है. यदि उन्होंने उसकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ कह दिया और वह अपना संतुलन खो बैठी तो वह कुहराम मचा देगी. उनका पारिवारिक झगड़ा खुलकर सामने आ जायेगा. राजा और रानी का पारस्परिक विरोध...भीष्म के प्रति सत्यवती की दुर्भावना—सब कुछ प्रकाशित हो जायेगा. हस्तिनापुर के घर-घर में चर्चा होगी और आसपास के अनेक विद्रोह जन-प्रमुख इस गृह-कलह का लाभ

उठाने के विषय में सोचने लगेंगे. उनकी सीमा से लगे हुए राज्यों के क्षत्रिय राजा अपनी सेनाएं सजाने लगेंगे. पारिवारिक-कलह, राजनीतिक कलह का रूप धारण कर लेगी...

वे सत्यवती से झूठ बोलकर उसे टाल भी सकते थे...किंतु सामान्यतः वे झूठ बोलते नहीं थे...और फिर यदि सत्यवती को उनके अपने प्रासाद से यह सूचना मिल सकती है कि भीष्म उनसे मिलने आया था, तो यह सूचना भी मिल सकती है कि पिता-पुत्र में क्या बातें हुई थीं. बहुत संभव है कि सत्यवती का कोई गुप्तचर उनके निजी सेवकों में हो...ऐसे में उनका झूठ खुलते एक क्षण नहीं लगेगा....रोष में सत्यवती असंतुलित हो जाती है...और असंतुलन किसी मर्यादा को नहीं जानता. ऐसी स्थिति में अपने दास-दासियों के सामने जो कुछ शांतनु को सुनना पड़ेगा, वह शोभनीय नहीं होगा....और यदि झूठ न भी खुला...तो भी वे उसके खुलने के भय से सदा आतंकित रहेंगे...

"सत्यवती!" शांतनु का स्वय नियंत्रित था, "मेरा वार्द्धक्य अपनी शक्ति दिखा रहा है. मैं दिन-प्रति-दिन अक्षम होता जा रहा हूं. मेरी मानसिक और शारीरिक शक्तियां क्षीण हो रही हैं..."

"तो राजवैद्य को बुलाया होता," सत्यवती बोली, "भीष्म क्या कर सकता है इसमें? वह क्या पुरु के समान अपना यौवन आपको दे देगा?"

"क्या उसने पहले ही अपना यौवन मुझे दे नहीं दिया?" शांतनु के स्वर में खीझ थी, "तुम्हारे पिता ने उससे जीवन का प्रत्येक सुखभोग, हंसी-खुशी, आशा-उल्लास...सब कुछ छीन नहीं लिया? क्या चाहती हो तुम उससे?"

सत्यवती भी कुछ उग्र हुई, "मैंने या मेरे पिता ने कुछ नहीं छीना है उससे! उसने स्वेच्छा से सब कुछ त्यागा है. और किसी ने उससे कुछ छीना ही है, तो छीनने वाले आप हैं, आप! छीना भी आपने ही, और दोषारोपण भी आप ही कर रहे हैं...."

"हां! मैंने ही सब कुछ छीना है." शांतनु का स्वर अवरोह पर था, "पापी तो मैं ही हूं. मैंने ही पिशाच बनकर अपने पुत्र का रक्त पी डाला है."

"जब रक्त पी ही डाला है, तो अब किसलिए बुलाया था उसे? अब उस रक्तहीन लोथ को दूर कहीं फेंक क्यों नहीं देते?"

"नहीं!...." शांतनु जैसे किसी प्रेत लोक से बोल रहे थे, "अभी उसके पास हड्डियां हैं, मांस है...अभी से कैसे छोड़ दूं उसे?"

शांतनु की स्थिति देखकर सत्यवती सहम उठी...पहली बार उसके मन में विचार आया...'राजा स्वस्थ नहीं लग रहे, कहीं उन्हें कुछ हो गया तो? ....उनकी आंखों में जो यह प्रेत-लोथ की छाया है, यह कोई मनोविकार है या मृत्यु का आभास?....'

"क्या हो गया है आपको?" सत्यवती का स्वर कुछ कोमल हुआ, "मैं तो केवल इतना ही पूछ रही थी कि क्यों बुलाया था भीष्म को? क्या काम था आपको उससे?...." और सत्यवती जैसे डगमगा गयी, "आप न बताना चाहें, तो न बतायें."

अपनी उस उद्विग्नता में भी शांतनु की दृष्टि से यह छिपा नहीं रह सका कि उनकी असहजावस्था को देखकर सत्यवती कुछ विचलित हो गयी थी....क्याहै सत्यवती के मन में? कहीं ऐसा तो नहीं कि वह उन पर इस प्रकार अपना पूर्णाधिकार चाहती है कि जो कुछ शांतनु के पास है, वह उसका हो जाये. उनके माध्यम से वह कुरु कुल पर, कुरु साम्राज्य पर, अपना अक्षुण्ण अधिकार स्थापित कर लेना चाहती है. इसीलिए चाहती है कि शांतनु का किसी के साथ कोई संबंध न रहें, कोई संपर्क न रहे, उन पर किसी का कोई अधिकार न रहें. शांतनु रहे, पूर्णतः स्वस्थ, समर्थ और शक्तिशाली रहें...और उन पर एकछत्र अधिकार रहे सत्यवती का...वे सत्यवती की सत्ता के उपकरण मात्र रहें...पर उपकरण का अस्तित्व आवश्यक है, उसका समर्थ रहना, कार्य-सक्षम रहना अनिवार्य है, अन्यथा...सत्यवती का अधिकार-सूत्र शिथिल ही नहीं होगा, टूट भी सकता है...

"सत्य जानना चाहती हो?"

सत्यवती ने सहमति में सिर हिलाया.

"जब अपने शरीर को असमर्थ होता देखता हूं, शक्ति को क्षीण होता

हुआ पाता हूं, तो मैं डर जाता हूं.'' उन्होंने सत्यवती की ओर देखा.

सत्यवती कुछ नहीं बोली. चुपचाप उनकी ओर देखती रही.

''मुझे लगता है कि मेरी आयु अब शेष होने जा रही है. मैं अधिक समय तक जीवित नहीं रहूंगा...'' वे कुछ रुके और फिर बोले. ''मुझे अपनी कोई चिंता नहीं है. जीवन में जो कुछ पाया और खोया है, उसके बाद ऐसा कुछ नहीं रहा, जिसे पाने या भोगने के लिए और जीवित रहना चाहूं....'' उन्होंने रुक कर सत्यवती को देखा, ''तुम्हारी भी चिंता नहीं है मुझे! तुम पर्याप्त समर्थ हो...किंतु चिंता मुझे अपने इन पुत्रों की है—चित्रांगद और विचित्रवीर्य की.''

''क्यों? इनकी क्या चिंता है आपको?'' सत्यवती का स्वर पर्याप्त शुष्क था, ''चित्रांगद सिंहासनासीन होगा और हमारा पालन करेगा.''

''यही तो चिंता है मुझे.'' शांतनु बोले, ''राजपुत्र समर्थ होता है तो सिंहासनासीन होता है. वह राजा, सम्राट और चक्रवर्ती बनता है...किंतु...''

''किंतु क्या?'' सत्यवती का भय इन दो शब्दों के पीछे से भी बोल रहा था.

''किंतु यदि राजपुत्र समर्थ नहीं हुआ तो उसका जीवित रहना भी कठिन हो जाता है!....''

''क्या कहना चाहते हैं आप?'' सत्यवती का भय प्रकट हो गया.

''पड़ोसी राजा ही नहीं, उसके अपने अमात्य, सेनापति और जन-प्रमुख, दुर्बल राजा के शत्रु होते हैं. वे उसे जीवित नहीं रहने देना चाहते, क्योंकि राजपुत्र के जीवन में उसका अधिकार भी अक्षुण्ण बना रहता है.''

सत्यवती के चेहरे पर उसका भय जैसे घनीभूत हो गया, ''नहीं!....''

''तुम्हारे नकार देने से प्रकृति के सत्य तो नहीं बदल जायेंगे.'' शांतनु बोले, ''अपनी क्षमता भर मुझे अपने इन पुत्रों के समर्थ होने तक की व्यवस्था, उनकी रक्षा का प्रबंध करना है.''

सत्यवती ने आंखों में प्रश्न भर कर शांतनु की ओर देखा; किंतु शांतनु स्पष्ट देख रहे थे कि उसकी आंखों में उत्सुकता और जिज्ञासा से अधिक अविश्वास और विरोध है....सत्यवती का यह अविश्वास शांतनु को तोड़ देने के लिए पर्याप्त था. न केवल उनका सारा उत्साह ही जाता रहा; उन्हें लगा, उनके शरीर से जैसे प्राण ही निकल गये हों. उनकी बोलने की इच्छा ही चुक गयी...

प्रतीक्षा सत्यवती के लिए असह्य थी : जाने शांतनु किस प्रकार की व्यस्था की बात सोच रहे हैं.

''कैसा प्रबंध करना चाह रहे हैं आप?'' सत्यवती को पूछना ही पड़ा.

''मैं चाहता हूं....'' शांतनु फिर रुक गये, जैसे या तो उन्हें शब्द ही न मिल रहे हों, या फिर अब भी उनके मन में द्वंद्व था कि बतायें या न बतायें?

''कैसा प्रबंध करना चाह रहे हैं आप?'' सत्यवती ने फिर पूछा.

''यदि मैं न रहूं, तो भी कोई ऐसा हो, जो बाहरी और भीतरी विरोधों, षड्यंत्रों और आक्रमणों से चित्रांगद और विचित्रवीर्य की रक्षा करता रहे...''

''कौन है वह—भीष्म?'' सत्यवती ने तड़पकर पूछा.

शांतनु ने देखा, क्षण भर पहले की दुर्बल, डरी और सहमी हुई सत्यवती, एक ही क्षण में जैसे सिंहनी बन गयी थी.

उन्होंने बड़ी बाध्यता में सिर हिलाया, ''हां!''

और सिंहनी ने न केवल गर्जना ही की, उसने उन पर छलांग लगा दी, उसके सारे दांत, उसके बीसों नख, उसकी दृष्टि, उसकी ध्वनि...सब कुछ मिलकर, जैसे शांतनु के चिथड़े-चिथड़े कर देना चाहते थे..., ''इस पृथ्वी पर अब धर्म नहीं रह गया है. नरक हो गयी है यह पृथ्वी. कोई किसी का विश्वास कैसे करेगा. इससे तो अच्छा है कि पृथ्वी फट जाये. आकाश टूट पड़े. सागर लील लें, या इस पृथ्वी को अग्नि ही जला दे. महाश्मशान हो जाये यह सारा...मृत्यु, मृत्यु...!''

शांतनु को लगा, सत्यवती पागल हो गयी है. संभव है कि अपनी इस मानसिक स्थिति में वह अपने वस्त्र फाड़ दे और श्मशान की डाकिनी-पिशाचिनी के समान उछल-उछलकर नाचने लगे और शांतनु के ही शरीर में कहीं अपने दांत गड़ा दे...मृत्यु...मृत्यु...मृत्यु...!

''सत्यवती!'' शांतनु ने उसे बांहों में पकड़ा, ''सत्यवती! क्या हो गया है तुम्हें?''

''क्या हो गया है.'' सत्यवती ने झटके से अपनी बांह छुड़ा ली, ''भरत वंश का चक्रवर्ती अपनी पत्नी को दिये गये वचनों को भूल गया है. भूल ही नहीं गया, जान-बूझकर उन वरदानों को वापस ले रहा है. सत्य, धर्म, न्याय....''

शांतनु और धैर्य नहीं रख सके. कुछ उग्र होकर बोले, ''मुख से शब्द निकालने से पहले कुछ सोच लेना चाहिए, पहली बात तो यह है कि मैंने तुम्हें न कोई वचन दिया है, न वरदान...!''

सत्यवती क्रुद्ध नागिन के समान फुफकारी, ''झूठ बोल लो. सब कुछ अस्वीकार कर दो. अब कह दो कि तुमने मुझसे विवाह भी नहीं किया है. चित्रांगद और विचित्रवीर्य तुम्हारे पुत्र भी नहीं हैं....''

शांतनु को लगा, उनका संयम अब टूट जायेगा और बहुत संभव है कि उनका हाथ सत्यवती पर उठ जाये.

उन्होंने स्वयं को संभाला और यथासंभव संयत स्वर में बोले, ''प्रतिज्ञाएं भीष्म ने की हैं; और वह आज भी उन पर अटल है तथा भविष्य में भी रहेगा....''

''वह भी अटल है और तुम भी अटल हो. तुम जैसे धूर्त्त तो मैंने देखे ही नहीं.'' सत्यवती वैसे ही चिल्लाती रही, ''वह युवराज नहीं बनेगा. मेरे पुत्रों का अभिभावक बनेगा. वह चक्रवर्ती नहीं बनेगा, चक्रवर्ती का नियंता बनेगा. वह राजा नहीं होगा, पर राजसत्ता उसकी होगी. वह प्रजा पर शासन नहीं करेगा, मेरे पुत्र पर शासन करेगा. मेरा पुत्र राजसिंहासन पर बैठेगा, पर तुम्हारे उस देवव्रत भीष्म का चाकर रहेगा...''

सत्यवती खड़ी हांफ रही थी.

शांतनु सत्यवती की ओर देखते रहे : शायद वह कुछ और बोले; किंतु वह कुछ नहीं बोली.

अंततः शांतनु ही बोले, ''विष-वमन हो चुका हो तो अब मेरी बात सुनो. न मैं तुम्हारे पुत्रों को राज्य से वंचित कर रहा हूं, न भीष्म उनका राज्य लेना चाहता है. मैं तो उस बेचारे पर एक अतिरिक्त बोझ डालने जा रहा था, ताकि मेरी मृत्यु के पश्चात् तुम लोग—तुम और तुम्हारे पुत्र—सुखी और सुरक्षित रह सको. पर लगता है कि यह विधाता की इच्छा के अनुकूल नहीं है...आज तक तो नहीं दिया, किंतु आज तुम्हें अपनी ओर से एक वरदान दे रहा हूं...तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रों के विषय में मैं अपनी ओर से कोई निर्णय नहीं लूंगा...और चेतावनी के रूप में कह रहा हूं कि मेरी मृत्यु के पश्चात् भी तुमने भीष्म से शत्रुता निभायी तो अपने, अपने पुत्रों और हस्तिनापुर के राज्य के नाश के लिए तुम उत्तरदायी होगी—केवल तुम!''

शांतनु को लगा, उनका वक्ष जैसे खोखला हो गया है; और वे हांफ रहे हैं...

वे जाने के लिए उठ खड़े हुए....

अगले अंक में

क्या हुआ शांतनु का....? क्या वे अपने जीते-जी अपनी इच्छा पूरी कर सके?...कौन बना फिर हस्तिनापुर का सम्राट...? शांतनु ने किसे क्या दिया...? क्या जिसे जो मिला वह उसे अपना बनाये रख सका...?

काव्योत्सव : युवा रचनाकार का सम्मान
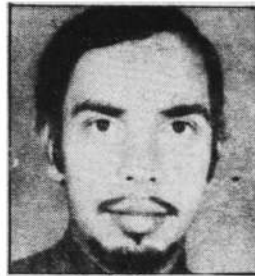
● विनोद दास

"गुप्त जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर अनेक प्रकार के आयोजन हो रहे हैं और होने जा रहे हैं. हमारे आयोजन की विशेषता यह है कि इस अवसर पर वट-वृक्ष का स्मरण करते हुए हम एक होनहार बिरवे का सम्मान कर रहे हैं..." नयी प्रतिभाओं की खोज के संदर्भ में ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित काव्य-प्रतियोगिता के विजेता विनोद दास के सम्मान में आयोजित समारोह में यह वक्तव्य भारतीय ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी और टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक कुमार जैन ने दिया.

तीन सत्रों के इस 'काव्योत्सव' में समूचा त्रिवेणी सभागर श्रोताओं से भरा रहा. नयी पीढ़ी के लिए आयोजित काव्य-प्रतियोगिता में विजेता कवि विनोद दास का सम्मान वरिष्ठ कवि गिरिजा कुमार माथुर की अध्यक्षना में किया गया. श्री अशोक कुमार जैन ने माल्यार्पण और शौल उढ़ाकर युवा कवि विनोद दास को सम्मानित तो किया ही, उन्हें अग्रिम रायल्टी स्वरूप 5100 रु. का एक चेक भी भेंट किया. श्री जैन ने आगामी प्रतियोगिता की विधा की घोषणा करते हुए कहा कि यह प्रतियोगिता व्यंग्य-लेखन पर आधारित होगी.

इस सत्र का सचालन बाल स्वरूप राही ने किया. सत्र के अध्यक्ष गिरिजा कुमार माथुर ने विनोद दास की कविताओं को नयी प्रतिभाओं के बीच अलग पहचान बनाये रखनेवाली कविताएं बताया.

ज्ञानपीठ के सलाहकार लक्ष्मी चद्र जैन के धन्यवाद ज्ञापन के बाद दूसरे सत्र में 'राष्ट्रीय कविता की परंपरा और आज की कविता' विषय पर विचारोत्तेजक परिचर्चा बाबू गंगाशरण सिंह की अध्यक्षता और नवभारत टाइम्स के संपादक राजेंद्र माथुर के संचालन में संपन्न हुई. इस परिचर्चा में जहां उड़िया रचनाकार जगन्नाथ प्रसाद दास का मानना था कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय उड़िया लेखन में राष्ट्रीय चेतना पूरी तरह विद्यमान थी पर आज इसकी आवश्यकता दुबारा से महसूस की जा रही है...वहीं हिंदी के विख्यात कवि कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल का कथन था कि यद्यपि आज की कविता में छंदहीनता की वजह से कोटेबिलिटी नहीं रह गयी है, फिर भी आज जो व्यंग्यपरक कविता-रचना हो रही है उसके मूल में निश्चय ही राष्ट्रीय पीड़ा विद्यमान है. आज की कविता को वे 'सोची-सोची, रची-रची-सी अहसास रहित रचना' कहने पर मजबूर दिखाई दिये.

तेलुगू के दाशरथि आज की कविता में से राष्ट्रीय भावना के चुक जाने पर क्षुब्ध थे.

हिंदी के युवा आलोचकों ने जहां श्रोताओं को उत्तेजित किया वहीं राष्ट्रीयता को सही तौर पर परिभाषित किये जाने की जरूरत को भी रेखांकित किया. राजेंद्र माथुर की आपत्ति थी कि वे देश को वैज्ञानिक नहीं फीलिंग की चीज मानते हैं. अरुण साधू, मराठी के चर्चित रचनाकार, अंचल जी और डा. राजकुमार शर्मा के विचारों से सहमत लगे.

डा. नगेंद्र ने परिचर्चा का समाहार करते हुए कहा कि यह सही है कि धर्माधारित राष्ट्रीयता आधुनिक अर्थों में राष्ट्रीयता नहीं है...आज वह संकीर्ण और सांप्रदायिक हो सकता है.

अध्यक्ष बाबू गंगाशरण सिंह को राष्ट्रीय आंदोलन के समय की कविताओं की भावना-प्रधान धारा का स्मरण कराना पड़ा.

विनोद दास को उनके कविता संग्रह 'खिलाफ हवा से गुजरते हुए' हर ज्ञानपीठ द्वारा सम्मानित किया गया. 'सारिका' से उनकी बातचीत कुछ इस तरह से हुई—

अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में कविता के चयन का कारण?

□ **यूं तो मैं कहानियां भी लिखता हूं, आप तो जानते ही हैं. 'सारिका' ने मेरी कहानी 'जनखा' प्रकाशित की थी. मुझे लगता है, कविता से मेरा संबंध ज्यादा सरल और सहज है. एक कारण शायद समय का अभाव भी है. कहानी अधिक समय और श्रम चाहती है.**

आपके पसंदीदा कवि?

□ **सबसे ज्यादा केदार नाथ सिंह, कुंअर नारायण, नागार्जुन, शमशेर और केदार नाथ अग्रवाल. नये कवियों में अरुण कमल, राजेश जोशी, आलोक धन्वा और मंगलेश डबराल. मुझे लगता है कि इनकी कविताओं में जीवन से रिश्ता अधिक आत्मीय है.**

पुरस्कार मिलने पर प्रतिक्रिया!

□ **खुशी. मैं मानता हूं कि यदि आप अच्छा लिखते हैं तो साहित्य में आपकी पहचान निश्चित रूप से बनेगी. उसके लिए न हथकंडे जरूरी हैं, न गिरोहबंदी, न दलबंदी. लेखक संघों का सदस्य बनना चाहिए, उससे वैचारिक ऊर्जा मिलती है.**

आपकी प्रतिबद्धता की जड़ें?

□ **मैं जनता के साथ हूं. मेरी जड़ें गांव में हैं. मेरी कविताओं में गांव की सांस सुनायी देगी...**

रचना प्रक्रिया?

□ **कोई विचार या अनुभव आता है, तो सोचता हूं कि इसके अनुरूप फॉर्म क्या रहेगा. फिर लिखता हूं. अनुभव का कैनवस कभी बड़ा हुआ तो उपन्यास भी लिखूंगा.**

उनका कहना था कि स्वतंत्रता आंदोलन के वक्त जिस तरह से 'आजादी' को परिभाषित नहीं किया था ठीक उसी तरह आज 'राष्ट्रीयता' को भी परिभाषित नहीं किया गया है.

शोभना नारायण की मोहक नृत्य-वंदना से प्रारंभ इस 'काव्योत्सव' का अंतिम सत्र राष्ट्रीय कविताओं की प्रस्तुति के साथ संपन्न हुआ.

समारोह के अंत में टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के कार्यकारी निदेशक श्री रमेश चंद्र ने आभार ज्ञापित किया. □

(बाएं से बाएं) काव्योत्सव समारोह में पुरस्कृत युवा विनोददास, उनके पहले कविता संग्रह 'खिलाफ हवा से गुजरते हुए' का विमोचन करते हुए श्री गिरिजाकुमार माथुर, ज्ञानपीठ के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री अशोक जैन और समारोह के संयोजक श्री बालस्वरूप राही.

■ छाया: धर्मवीर जवनर